सत्यार्थप्रकाश

ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

भूमिका

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था, उस समय और उस से पूर्व संस्कृतभाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है। कहीं-कहीं शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था, क्योंकि इसके भेद किए विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हाँ, जो प्रथम छपने में कहीं-कहीं भूल रही थी, वह निकाल शोधकर ठीक-ठीक कर दी गई है। यह ग्रन्थ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें १० दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ चार उत्तरार्द्ध में बने हैं, परन्तु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे, अब वे भी छपवा दिये हैं।

१४- चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।
और चौदह समुल्लासों के अन्त में आर्यों के सनातन वेदविहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथावत् मानता हूँ। मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्याऽसत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयम् अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं भूल-चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल-चूक रह जाय, उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायेगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शंका वा खण्डन मण्डन करेगा, उस पर ध्यान न दिया जायेगा। हाँ, जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उस को सत्य-सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई

सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु **'सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।'** अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करने से नहीं हटते। यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि **'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।'** यह गीता का वचन है। इसका अभिप्राय यह है कि जो-जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जान कर यथेष्ट करें। इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो-जो सब मतों में सत्य-सत्य बातें हैं, वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो-जो मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन-उन का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवें।

यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मत वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ। **जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है।** क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् हो कर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

अब आर्य्यावर्त्तीयों के विषय में विशेष कर ११ ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है, वह वेदोक्त होने से

मुझ को सर्वथा मन्तव्य है और जो नवीन पुराण तन्त्रदि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है, वे त्यक्तव्य हैं।

यद्यपि जो १२ बारहवें समुल्लास में चारवाक का मत, इस समय क्षीणाऽस्त सा है और यह चारवाक सब से बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है, क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसार में बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जायें।

१३वें समुल्लास में ईसाइयों का मत लिखा है। ये लोग बायबिल को अपना धर्म-पुस्तक मानते हैं। इन का विशेष समाचार उसी १३ तेरहवें समुल्लास में देखिए और १४ चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत-विषय में लिखा है। ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४वें समुल्लास में देखिए और इस के आगे वैदिकमत के विषय में लिखा है।

जो कोई इस ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा, क्योंकि वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं- आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर, जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है, तब उस को ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है-

'आकाङ्क्षा' किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है।

'योग्यता' वह कहाती है कि जिस से जो हो सके, जैसे जल से सींचना।

'आसत्ति' जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसी के समीप उस पद को बोलना वा लिखना।

'तात्पर्य' जिस के लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो, उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना। बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूं, वैसा सबको करना योग्य है।

इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किए हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्याऽसत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ होवें, क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध

बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है।
यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे, तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इस का अभिप्राय समझेंगे, इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूँ। इस को देख-दिखला के मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करके मुझ वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है।
सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।
।। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु ।।
।। इति भूमिका ।।
स्थान महाराणा जी का उदयपुर **(स्वामी) दयानन्द सरस्वती**
भाद्रपद, शुक्लपक्ष संवत् १९३९
।। ओ३म्।।

अथ सत्यार्थप्रकाशः

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ।।
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं बह्म्र वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु।
अवतु माम् अवतु वक्तारम् । ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ।।१।।

अर्थ-(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं जैसे-अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रें में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

(प्रश्न) परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं? ब्रह्माण्ड, पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यकशास्त्र में शुण्ठ्यादि ओषधियों के भी ये नाम हैं, वा नहीं ?

(उत्तर) हैं, परन्तु परमात्मा के भी हैं।

(प्रश्न) केवल देवों का ग्रहण इन नामों से करते हो वा नहीं?

(उत्तर) आपके ग्रहण करने में क्या प्रमाण है?

(प्रश्न) देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं, इससे मैं उनका ग्रहण करता हूँ।

(उत्तर) क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है? पुनः ये नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानते? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध और उसके तुल्य भी कोई नहीं तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा। इससे आपका यह कहना सत्य नहीं। क्योंकि आपके इस कहने में बहुत से दोष भी आते हैं, जैसे-**'उपस्थितं परित्यज्याऽनुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः'** किसी ने किसी के लिए भोजन का पदार्थ रख के कहा कि आप भोजन कीजिए और वह जो उसको छोड़ के अप्राप्त भोजन के लिए जहाँ-तहाँ भ्रमण करे उसको बुद्धिमान् न जानना चाहिए, क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थ को छोड़ के

अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिए श्रम करता है। इसलिए जैसा वह पुरुष बुद्धिमान् नहीं वैसा ही आपका कथन हुआ। क्योंकि आप उन विराट् आदि नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर और ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थों का परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादि के ग्रहण में श्रम करते हैं, इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं। जो आप ऐसा कहें कि जहाँ जिस का प्रकरण है वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हे भृत्य ! त्वं सैन्धवमानय' अर्थात् तू सैन्धव को ले आ। तब उस को समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है, क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है; एक घोड़े और दूसरा लवण का। जो स्वस्वामी का गमन समय हो तो घोड़े और भोजन का काल हो तो लवण को ले आना उचित है और जो गमन समय में लवण और भोजन-समय में घोड़े को ले आवे तो उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है। गमनसमय में लवण और भोजनकाल में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था? तू प्रकरणवित् नहीं है, नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिए था उसी को लाता। जो तुझ को प्रकरण का विचार करना आवश्यक था वह तूने नहीं किया, इस से तू मूर्ख है, मेरे पास से चला जा। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित हो वहाँ उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिए तो ऐसा ही हम और आप सब लोगों को मानना और करना भी चाहिए।

अथ मन्त्रर्थः

ओं खम्ब्रह्म ।।१।। यजुः अ० ४० । मं० १७

देखिए वेदों में ऐसे-ऐसे प्रकरणों में 'ओम्' आदि परमेश्वर के नाम हैं।

ओमित्येतदक्षरमुमत्रथमुपासीत।।२।। -छान्दोग्य उपनिषत् ।

ओमित्येतदक्षरमिदँ० सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।।३।।-माण्डूक्य।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।४।।
-कठोपनिषत्, वल्ली २। मं० १५।।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।।५।।
एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।६।।
-मनुस्मृति अध्याय १२। श्लोक १२२, १२३।

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्।
स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः।।७।। -कैवल्य उपनिषत्।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।८।।
- ऋग्वेद मं० १। सूक्त १६४। मन्त्र ४६।।

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृँ्ह पृथिवीं मा हिँ्सीः ।।९।।
यजुः अ० १३ । मं० १८

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्य्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ।।१०।।
-सामवेद प्रपाठक ७। त्रिक ८। मन्त्र २।।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।११।।
-अथर्ववेद काण्ड ११। प्रपाठक २४। अ० २। मन्त्र ८।।

अर्थ-यहाँ इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य यही है कि जो ऐसे-ऐसे प्रमाणों में ओंकारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है लिख आये तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं।

'ओम्' आदि नाम सार्थक हैं-जैसे **(ओं खं०) 'अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म'** रक्षा करने से **(ओम्),** आकाशवत् व्यापक होने से **(खम्)**, सब से बड़ा होने से ईश्वर का नाम **(ब्रह्म)** है।।१।।

(ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं।।२।।

(ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम **'ओ३म्'** को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं।।३।।

(सर्वे वेदा०) क्योंकि सब वेद सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य्याश्रम करते हैं, उसका नाम **'ओ३म्'** है।।४।।

(प्रशासिता०) जो सब को शिक्षा देनेहारा, सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्वप्रकाशस्वरूप, समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है, उसको परम पुरुष जानना चाहिए।।५।।
और स्वप्रकाश होने से **'अग्नि'** विज्ञानस्वरूप होने से **'मनु'** और सब का पालन करने से **'प्रजापति'** और परमैश्वर्य्यवान् होने से **'इन्द्र'** सब का जीवनमूल होने से **'प्राण'** और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम **'ब्रह्म'** है।।६।।
(स ब्रह्मा स विष्णुः०) सब जगत् के बनाने से **'ब्रह्मा'**, सर्वत्र व्यापक होने से **'विष्णु'**, दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से **'रुद्र'**, मंगलमय और सब का कल्याणकर्त्ता होने से **'शिव'**, **'यः सर्वमश्नुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम्'**
'यः स्वयं राजते स स्वराट्' 'योऽग्निरिव कालः कलयिता प्रलयकर्त्ता स कालाग्निरीश्वरः' (अक्षर) जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, **(स्वराट्)** स्वयं प्रकाशस्वरूप और **(कालाग्नि०)** प्रलय में सब का काल और काल का भी काल है, इसलिए परमे श्वर का नाम **'कालाग्नि'** है।।७।।
(इन्द्रं मित्रं) जो एक अद्वितीय सत्यब्रह्म वस्तु है, उसी के इन्द्रादि सब नाम हैं। **'द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः', 'शोभनानि पर्णानि पालनानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः', 'यो गुर्वात्मा स गरुत्मान्', 'यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् स मातरिश्वा'**, **(दिव्य)** जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त, **(सुपर्ण)** जिसके उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं, **(गरुत्मान्)** जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है, **(मातरिश्वा)** जो वायु के समान अनन्त बलवान् है, इसलिए परमात्मा के **'दिव्य', 'सुपर्ण', 'गरुत्मान्'** और **'मातरिश्वा'** ये नाम हैं। शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे।।८।।
(भूमिरसि०) 'भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः' जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं, इसलिए ईश्वर का नाम 'भूमि' है। शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे।।९।।
(इन्द्रो मह्ना०) इस मन्त्र में 'इन्द्र' परमेश्वर ही का नाम है, इसलिए यह प्रमाण लिखा है।।१०।।
(प्राणाय) जैसे प्राण के वश सब शरीर इन्द्रियाँ होती हैं वैसे परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है।।११।।
इत्यादि प्रमाणों के ठीक-ठीक अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। क्योंकि **'ओ३म्'** और अग्न्यादि नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। जैसा कि व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रदि ऋषि मुनियों के व्याख्यानों से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है, वैसा ग्रहण करना सब को योग्य है, परन्तु **'ओ३म्'** यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है

और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं-वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है। और जहाँ-जहाँ ऐसे प्रकरण हैं कि-

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरु षः ।
श्रोत्रद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।
तेन देवा अयजन्त । पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।। यजुः अ० ३१

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। -यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है। ऐसे प्रमाणों में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं, क्योंकि जहाँ-जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों, वहाँ-वहाँ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक़ हैं और उपरोक्त मन्त्रें में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं, इसी से यहाँ विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न हो के संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु जहाँ-जहाँ सर्वज्ञादि विशेषण हों, वहीं-वहीं परमात्मा और जहाँ-जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों, वहाँ-वहाँ जीव का ग्रहण होता है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर का जन्म-मरण कभी नहीं होता, इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है, परमेश्वर का नहीं। अब जिस प्रकार विराट् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है, वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणे जानो।

अथ ओंकारार्थः

१- 'वि' उपसर्गपूर्वक **(राजृ दीप्तौ)** इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से 'विराट्' शब्द सिद्ध होता है। **'यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्'** विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे, इससे **'विराट्'** नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है।

२- (अञ्चु गतिपूजनयोः) (अग, अगि, इण् गत्यर्थक) धातु हैं, इनसे 'अग्नि' शब्द सिद्ध होता है। **'गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः।' 'योऽञ्चति, अच्यतेऽगत्यंगत्येति सोऽयमग्निः'** जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'अग्नि'** है।

३- **(विश प्रवेशने)** इस धातु से **'विश्व'** शब्द सिद्ध होता है। **'विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् । यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः'** जिस में आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इन में व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'विश्व'** है, इत्यादि नामों का ग्रहण अकारमात्र से होता है।

४- **'ज्योतिर्वै हिरण्यं, तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेयशतपथब्राह्मणे' 'यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः'** जिसमें सूर्य्यादि तेज वाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम, (उत्पत्ति) और निवासस्थान है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'हिरण्यगर्भ'** है। इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण-

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधमे ।।

इत्यादि स्थलों में 'हिरण्यगर्भ' से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है।

५- **(वा गतिगन्धनयोः)** इस धातु से 'वायु' शब्द सिद्ध होता है। **(गन्धनं हिसनम्) 'यो वाति चराऽचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः'** जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब बलवानों से बलवान् है, इससे उस ईश्वर का नाम **'वायु'** है।

६- **(तिज निशाने)** इस धातु से 'तेजः' और इससे तद्धित करने से 'तैजस' शब्द सिद्ध होता है। जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्य्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है, इससे ईश्वर का नाम **'तैजस'** है। इत्यादि नामार्थ उकारमात्र से ग्रहण होते हैं।

७- **(ईश ऐश्वर्ये)** इस धातु से 'ईश्वर' शब्द सिद्ध होता है। **'य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरःं'** जिस का सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम **'ईश्वर'** है।

८, ९- **(दो अवखण्डने)** इस धातु से 'अदिति' और इससे तद्धित करने से 'आदित्य' शब्द सिद्ध होता है। **'न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः, अदितिरेव आदित्यः'** जिसका विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की **'आदित्य'** संज्ञा है।

१०,११- **(ज्ञा अवबोधने)** 'प्र' पूर्वक इस धातु से 'प्रज्ञ' और इससे तद्धित करने से 'प्राज्ञ' शब्द सिद्ध होता है। **'यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः'** जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराऽचर जगत् के

व्यवहार को यथावत् जानता है, इससे ईश्वर का नाम **'प्राज्ञ'** है। इत्यादि नामार्थ मकार से गृहीत होते हैं। जैसे एक-एक मात्र से तीन-तीन अर्थ यहाँ व्याख्यात किये हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं। जो **(शन्नो मित्रः शं व०)** इस मन्त्र में मित्रदि नाम हैं वे भी परमेश्वर के हैं, क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव और सत्य-सत्य व्यवहारों में सब से अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उस को परमेश्वर कहते हैं। जिस के तुल्य न कोई हुआ, न है और न होगा। जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है? जैसे परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं, वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है, उस के गुण, कर्म्म, स्वभाव भी सत्य ही होते हैं। इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करी, उससे भिन्न की नहीं की। वैसे हम सब को करना योग्य है। इस का विशेष विचार मुक्ति और उपासना के विषय में किया जायगा।

(प्रश्न) मित्रदि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिए।

(उत्तर) यहाँ उन का ग्रहण करना योग्य नहीं, क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है, वही अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता, किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इस से भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता। इसलिये परमात्मा ही का ग्रहण यहाँ होता है। हाँ, गौण अर्थ में मित्रदि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है।

१२- **(ञिमिदा स्नेहने)** इस धातु से औणादिक 'क्त्र' प्रत्यय के होने से 'मित्र' शब्द सिद्ध होता है। **'मेद्यति, स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः'** जो सब से स्नेह करके और सब को प्रीति करने योग्य है, इस से उस परमेश्वर का नाम **'मित्र'** है।

१३- **(वृञ्०ा० वरणे, वर ईप्सायाम्)** इन धातुओं से उणादि 'उनन्' प्रत्यय होने से 'वरुण' शब्द सिद्ध होता है। **'यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्व्रियते वर्य्यते वा स वरुणः परमेश्वरः'** जो आत्मयोगी, विद्वान्, मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकारकर्त्ता, अथवा जो शिष्ट मुमुक्षु मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर 'वरुण' संज्ञक है। अथवा 'वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः' जिसलिए परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है, इसीलिए उस का नाम **'वरुण'** है।

१४- **(ऋ गतिप्रापणयोः)** इस धातु से 'यत्' प्रत्यय करने से 'अर्य्य' शब्द सिद्ध होता है और 'अर्य्य' पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से 'कनिन्' प्रत्यय होने से 'अर्य्यमा' शब्द सिद्ध होता है। **'योऽर्य्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सोऽर्यमा'** जो सत्य न्याय के करनेहारे मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य-सत्य नियमकर्ता है, इसी से उस परमेश्वर का नाम **'अर्य्यमा'** है।

१५- **(इदि परमैश्वर्ये)** इस धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से 'इन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। **'य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः'** जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है, इस से उस परमात्मा का नाम **'इन्द्र'** है।

१६- 'बृहत्' शब्दपूर्वक **(पा रक्षणे)** इस धातु से 'डति' प्रत्यय, बृहत् के तकार का लोप और सुडागम होने से **'बृहस्पति'** शब्द सिद्ध होता है। **'यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः'** जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है, इस से उस परमेश्वर का नाम **'बृहस्पति'** है।

१७- **(विष्लृ व्याप्तौ)** इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है। **'वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः'** चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम **'विष्णु'** है।

१८- **'उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः'** अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा का नाम **'उरुक्रम'** है। जो परमात्मा (उरुक्रमः) महापराक्रमयुक्त (मित्रः) सब का सुहृत् अविरोधी है, वह (शम्) सुखकारक, वह (वरुणः) सर्वोत्तम (शम्) सुखस्वरूप, वह (अर्यमा) (शम्) सुखप्रचारक, वह (इन्द्रः) (शम्) सकल ऐश्वर्यदायक, वह (बृहस्पतिः) सब का अधिष्ठाता (शम्) विद्याप्रद और (विष्णुः) जो सब में व्यापक परमेश्वर है, वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो।

१९- (वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से **'ब्रह्म'** शब्द सिद्ध हुआ है। जो सब के ऊपर विराजमान, सब से बड़ा, अनन्तबलयुक्त परमात्मा है, उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं। हे परमेश्वर ! **(त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि)** आप ही अन्तर्यामिरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो **(त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि)** मैं आप ही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, क्योंकि आप सब जगह में व्याप्त होके सब को नित्य ही प्राप्त हैं **(ऋतं वदिष्यामि)** जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसी को मैं सब के लिए उपदेश और आचरण भी करूँगा, **(सत्यं वदिष्यामि)** सत्य बोलूँ, सत्य मानूं और सत्य ही करूँगा **(तन्मामवतु)** सो आप मेरी रक्षा कीजिए

(तद्वक्तारमवतु) सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिए कि जिस से आप की आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर, विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आपकी आज्ञा है, वही धर्म और जो विरुद्ध, वही अधर्म है। **'अवतु मामवतु वक्तारम्'** यह दूसरी वार पाठ अधिकार्थ के लिये है। जैसे 'कश्चित् कश्चित् प्रति वदति त्वं ग्रामं गच्छ गच्छ' इसमें दो वार क्रिया के उच्चारण से तू शीघ्र ही ग्राम को जा ऐसा सिद्ध होता है। ऐसे ही यहाँ कि आप मेरी अवश्य रक्षा करो अर्थात् धर्म में सुनिश्चित और अधर्म से घृणा सदा करूँ, ऐसी कृपा मुझ पर कीजिए। मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगा।

(ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः) इस में तीन वार शान्तिपाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविध ताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं-एक **'आध्यात्मिक'** जो आत्मा शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा **'आधिभौतिक'** जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा **'आधिदैविक'** अर्थात् जो अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है। इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिए। क्योंकि आप ही कल्याणस्वरूप, सब संसार के कल्याणकर्त्ता और धार्मिक मुमुक्षुओं को कल्याण के दाता हैं। इसलिए आप स्वयम् अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिए कि जिस से सब जीव धर्म का आचरण और अधर्म को छोड़के परमानन्द को प्राप्त हों और दुःखों से पृथक़ रहैं ।

'सूय्यर्◌्◌ा आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

२०- इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी, चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते-फिरते हैं, **'तस्थुषः'** अप्राणी अर्थात् **स्थावर जड़** अर्थात् **पृथिवी** आदि

हैं, उन सब के आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सब के प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम **'सूर्य्य'** है।

२१, २२- **(अत सातत्यगमने)** इस धातु से 'आत्मा' शब्द सिद्ध होता है। **'योऽतति व्याप्नोति स आत्मा'** जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक हो रहा है। **'परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा'** जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव, प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है, इस से ईश्वर का नाम **'परमात्मा'** है। २३- सामर्थ्यवाले का नाम ईश्वर है। **'य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः'** जो ईश्वरों अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिस के तुल्य कोई भी न हो, उस का नाम **'परमेश्वर'** है।

२४- **(षुञ्०ा० अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने)** इन धातुओं से 'सविता' शब्द सिद्ध होता है। **'अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः'** जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'सविता'** है।

२५- **(दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु)** इस वमातु से 'देव' शब्द सिद्ध होता है। (क्रीडा) जो शुद्ध जगत् को क्रीडा कराने (विजिगीषा) वमार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त (व्यवहार) सब चेष्टा के साधनोप- साधनों का दाता (द्युति) स्वयंप्रकाशस्वरूप, सब का प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा (मद) मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा (स्वप्न) सब के शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा (कान्ति) कामना के योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'देव' है। अथवा **'यो दीव्यति क्रीडति स देवः'** जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीडा करे अथवा किसी के सहाय के विना क्रीडावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीडाओं का आधार है। **'विजिगीषते स देवः'** जो सब का जीतनेहारा, स्वयम् अजेय अर्थात् जिस को कोई भी न जीत सके। **'व्यवहारयति स देवः'** जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जनाने और उपदेष्टा।' **'यश्चराचरं जगत् द्योतयति'** जो सब का प्रकाशक। **'यः स्तूयते स देवः'** जो सब मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य और निन्दा के योग्य न हो। **'यो मोदयति स देवः'** जो स्वयम् आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द कराता, जिस को दुःख का लेश भी न हो। **'यो माद्यति स देवः'** जो सदा हर्षित, शोक रहित और दूसरों को हर्षित करने और दुःखों से पृथक़्

रखनेवाला। **'यः स्वापयति स देवः'** जो प्रलय समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता। **'यः कामयते काम्यते वा स देवः'** जिस के सब सत्य काम और जिस की प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं। **'यो गच्छति गम्यते वा स देवः'** जो सब में व्याप्त और जानने के योग्य है, इस से उस परमेश्वर का नाम **'देव'** है।
२६- (कुबि आच्छादने) इस धातु से 'कुबेर' शब्द सिद्ध होता है। **'यः सर्वं कुम्बति स्वव्याप्त्याच्छादयति स कुबेरो जगदीश्वरः'** जो अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करे, इस से उस परमेश्वर का नाम **'कुबेर'** है।
२७- (पृथु विस्तारे) इस धातु से 'पृथिवी' शब्द सिद्ध होता है।' **'यः पर्थति सर्वं जगद्विस्तृणाति तस्मात् स पृथिवी'** जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करने वाला है, इसलिए उस ईश्वर का नाम **'पृथिवी'** है।
२८- (जल घातने) इस धातु से 'जल' शब्द सिद्ध होता है, **'जलति घातयति दुष्टान् सघांतयति अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जलम्'** जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है, वह परमात्मा **'जल'** संज्ञक कहाता है।
२९- (काशृ दीप्तौ) इस धातु से 'आकाश' शब्द सिद्ध होता है, **'यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः'** जो सब ओर से सब जगत् का प्रकाशक है, इसलिए उस परमात्मा का नाम **'आकाश'** है।
३०,३१,३२- (अद् भक्षणे) इस धातु से **'अन्न'** शब्द सिद्ध होता है।
अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्।
अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः।। तैत्ति० उपनि०।
अत्ता चराऽचरग्रहणात्।। यह व्यासमुनिकृत शारीरक सूत्र है।
जो सब को भीतर रखने, सब को ग्रहण करने योग्य, चराऽचर जगत् का ग्रहण करने वाला है, इस से ईश्वर के **'अन्न', 'अन्नाद'** और **'अत्ता'** नाम हैं। और जो इस में तीन वार पाठ है सो आदर के लिए है। जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके उसी में रहते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है।
३३- (वस निवासे) इस धातु से 'वसु' शब्द सिद्ध हुआ है। **'वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु वसति स वसुरीश्वरः'** जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सब में वास कर रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'वसु'** है।

३४- (रुदिर् अश्रुविमोचने) इस धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है। **'यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः'** जो दुष्ट कर्म करनेहारों को रुलाता है, इससे परमेश्वर का नाम **'रुद्र'** है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति
यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।। यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है।
जीव जिस का मन से ध्यान करता उस को वाणी से बोलता, जिस को वाणी से बोलता उस को कर्म से करता, जिस को कर्म से करता उसी को प्राप्त होता है। इस से क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते, तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उन को रुलाता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'रुद्र'** है।

३५- आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।। -मनुन अ० १। श्लोक १०।।
जल और जीवों का नाम नारा है, वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं, जिसका इसलिए सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम **'नारायण'** है।

३६- (चदि आह्लादे) इस धातु से 'चन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। **'यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः'** जो आनन्दस्वरूप और सब को आनन्द देनेवाला है, इसलिए ईश्वर का नाम **'चन्द्र'** है।

३७- (मगि गत्यर्थक) धातु से **'मंगेरलच्'** इस सूत्र से 'मंगल' शब्द सिद्ध होता है। **'यो मंगति मंगयति वा स मंगलः'** जो आप मंगलस्वरूप और सब जीवों के मंगल का कारण है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'मंगल'** है।

३८- (बुध अवगमने) इस धातु से 'बुध' शब्द सिद्ध होता है। **'यो बुध्यते बोध्यते वा स बुधः'** जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है। इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'बुध'** है। 'बृहस्पति' शब्द का अर्थ कह दिया ।

३९- (ईशुचिर् पूतीभावे) इस धातु से 'शुक्र' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः'** जो अत्यन्त पवित्र और जिसके संग से जीव भी पवित्र हो जाता है, इसलिये ईश्वर का नाम **'शुक्र'** है।

४०- (चर गतिभक्षणयोः) इस धातु से 'शनैस्' अव्यय उपपद होने से 'शनैश्चर' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शनैश्चरति स शनैश्चरः'** जो सब में सहज से प्राप्त धैर्यवान् है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'शनैश्चर'** है।

४१- **(रह त्यागे)** इस धातु से 'राहु' शब्द सिद्ध होता है। **'यो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति स राहुरीश्वरः'।** जो एकान्तस्वरूप जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं, जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ाने हारा है, इससे परमेश्वर का नाम **'राहु'** है।

४२- **(कित निवासे रोगापनयने च)** इस धातु से 'केतु' शब्द सिद्ध होता है। **'यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः'** जो सब जगत् का निवासस्थान, सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से छुड़ाता है, इसलिए उस परमात्मा का नाम **'केतु'** है।

४३- **(यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु)** इस धातु से 'यज्ञ' शब्द सिद्ध होता है। **'यज्ञो वै विष्णुः'** यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है। **'यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः'** जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है, और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है, क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

४४- **(हुदानाऽदनयोः, आदाने चेत्येके)** इस धातु से 'होता' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यो जुहोति स होता'** जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है, इससे उस ईश्वर का नाम **'होता'** है।

४५- **(बन्ध बन्धने)** इससे 'बन्धु' शब्द सिद्ध होता है। **'यः स्वस्मिन् चराचरं जगद् बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्त्तते स बन्धुः'** जिस ने अपने में सब लोकलोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खे और सहोदर के समान सहायक है, इसी से अपनी-अपनी परिधि वा नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाइयों का सहायकारी होता है, वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण, रक्षण और सुख देने से **'बन्धु'** संज्ञक है।

४६- **(पा रक्षणे)** इस धातु से 'पिता' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः पाति सर्वान् स पिता'** जो सब का रक्षक जैसा पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उन की उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इस से उस का नाम **'पिता'** है।

४७- **'यः पितॄणां पिता स पितामहः'** जो पिताओं का भी पिता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'पितामहः'** है।

४८- **'यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः'** जो पिताओं के पितरों का पिता है इससे परमेश्वर का नाम **'प्रपितामह'** है।

४९- 'यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता' जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है, वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इस से परमेश्वर का नाम **'माता'** है।

५०- (चर गतिभक्षणयोः) आङ्पूर्वक इस धातु से 'आचार्य्य' शब्द सिद्ध होता है। **'य आचारं ग्राहयति, सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः'** जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है, इससे परमेश्वर का नाम **'आचार्य'** है।

५१- (गॄ शब्दे) इस धातु से 'गुरु' शब्द बना है। **'यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः' 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'।** योग०। जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'गुरु'** है।

५२- (अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओं से 'अज' शब्द बनता है। **'योऽजति सृष्टि प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति, जानाति, जनयति च कदाचिन्न जायते सोऽजः'** जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता, जानता, शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता, इससे उस ईश्वर का नाम **'अज'** है।

५३- (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से 'ब्रह्मा' शब्द सिद्ध होता है। **'योऽखिलं जगन्निर्माणेन बर्हति वर्द्धयति स ब्रह्मा'** जो सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'ब्रह्मा'** है।

५४, ५५, ५६- 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है। **'सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम्। यज्जानाति चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तो- ऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म'** जो पदार्थ हों उनको सत् कहते हैं, उनमें साधु होने से परमेश्वर का नाम 'सत्य' है। जो जाननेवाला है, इससे परमेश्वर का नाम 'ज्ञान' है। जिसका अन्त अवधि मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा, बड़ा है, ऐसा परिमाण नहीं है, इसलिए परमेश्वर के नाम **'सत्य', 'ज्ञान' और 'अनन्त'** हैं।

५७- (डुदाञ्‌ दाने) आङ्पूर्वक इस धातु से 'आदि' शब्द और नञ्पूर्वक 'अनादि' शब्द सिद्ध होता है। **'यस्मात् पूर्वं नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते।', 'न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः'** जिसके पूर्व

कुछ न हो और परे हो, उसको आदि कहते हैं, जिस का आदि कारण कोई भी नहीं है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'अनादि'** है।

५८- (टुनदि समृद्धौ) आङ्पूर्वक इस धातु से 'आनन्द' शब्द बनता है। **'आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः'** जो आनन्दस्वरूप, जिस में सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है, इससे ईश्वर का नाम **'आनन्द'** है।

५९- (अस भुवि) इस धातु से 'सत्' शब्द सिद्ध होता है। **'यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाधते तत्सद् ब्रह्म'** जो सदा वर्त्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालों में जिसका बाध न हो, उस परमेश्वर को **'सत्'** कहते हैं।

६०, ६१- (चिती संज्ञाने) इस धातु से 'चित्' शब्द सिद्ध होता है। **'यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म'** जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहारा है, इसलिए उस परमात्मा का नाम **'चित्'** है। इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को **'सच्चिदानन्दस्वरूप'** कहते हैं।

६२- 'यो नित्यध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः।' जो निश्चल अविनाशी है, सो **'नित्य'** शब्दवाच्य ईश्वर है।

६३- (शुन्ध शुद्धौ) इस से 'शुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। **'यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः'** जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथव्फ़ और सब को शुद्ध करने वाला है, इससे ईश्वर का नाम **'शुद्ध'** है।

६४- (बुध अवगमने) इस धातु से 'क्त' प्रत्यय होने से 'बुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। **'यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः'** जो सदा सब को जाननेहारा है इससे ईश्वर का नाम **'बुद्ध'** है।

६५- (मुच्लृ मोचने) इस धातु से 'मुक्त' शब्द सिद्ध होता है। **'यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून् स मुक्तो जगदीश्वरः'** जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है, इसलिए परमात्मा का नाम **'मुक्त'** है।

६६- 'अत एव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः' इसी कारण से परमेश्वर का स्वभाव **नित्यशुद्धबुद्धमुक्त** है।

६७- निर् और आङ्पूर्वक **(डुकृञ्०।०् करणे)** इस धातु से 'निराकार' शब्द सिद्ध होता है। **'निर्गत आकारात्स निराकारः'** जिस का आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर-धारण करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'निराकार'** है।

६८- (अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु) इस धातु से 'अञ्जन' शब्द और 'निर्' उपसर्ग के योग से 'निरञ्जन' शब्द सिद्ध होता है। **'अञ्जनं व्यक्तिर्म्लक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः'** जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना और चक्षुरादि इन्द्रियों के विषयों के पथ से पृथक् है, इससे ईश्वर का नाम **'निरञ्जन'** है।

६९, ७०- (गण संख्याने) इस धातु से 'गण' शब्द सिद्ध होता है, इसके आगे 'ईश' वा 'पति' शब्द रखने से 'गणेश' और 'गणपति शब्द' सिद्ध होते हैं। **'ये प्रकृत्यादयो जडा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा'** जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करनेहारा है, इससे उस ईश्वर का नाम **'गणेश'** वा **'गणपति'** है।

७१- 'यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः' जो संसार का अधिष्ठाता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'विश्वेश्वर'** है।

७२- 'यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः' जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होके भी किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता, इससे परमेश्वर का नाम **'कूटस्थ'** है।

७३, ७४- जितने 'देव' शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही 'देवी' शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिंगों में नाम हैं। जैसे-**'ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति'**। जब ईश्वर का विशेषण होगा तब 'देव' जब **चिति** का होगा तब 'देवी', इससे ईश्वर का नाम **'देवी'** है।

७५- (शक्लृ शक्तौ) इस धातु से 'शक्ति' शब्द बनता है। 'यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः' जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'शक्ति'** है।

७६- (श्रिञ्०ा० सेवायाम्) इस धातु से 'श्री' शब्द सिद्ध होता है। **'यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः'।** जिस का सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं, उस परमात्मा का नाम **'श्री'** है।

७७- (लक्ष दर्शनांकनयोः) इस धातु से 'लक्ष्मी' शब्द सिद्ध होता है। **'यो लक्षयति पश्यत्यंकते चिह्नयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः'** जो सब चराचर जगत् को देखता, चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिकादि और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सब को देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादिशास्त्र वा

धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'लक्ष्मी'** है।

७८- **(सृ गतौ)** इस धातु से 'सरस्' उस से मतुप् और ङीप् प्रत्यय होने से 'सरस्वती' शब्द सिद्ध होता है। **'सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती'** जिस को विविध विज्ञान अर्थात् शब्द, अर्थ, सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे, इससे उस परमेश्वर का नाम **'सरस्वती'** है।

७९- **'सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः'** जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है, इसलिए उस परमात्मा का नाम **'सर्वशक्तिमान्'** है।

८०- **(णीञ्० प्रापणे)** इस धातु से 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है। **'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः।'** यह वचन न्यायसूत्रें के ऊपर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य का है। **'पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः'** जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य-सत्य सिद्ध हो तथा पक्षपातरहित धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है। **'न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः'** जिस का न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है, इससे उस ईश्वर का नाम **'न्यायकारी'** है।

८१- **(दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु)** इस धातु से 'दया' शब्द सिद्ध होता है। **'दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया, बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः'** जो अभय का दाता, सत्याऽसत्य सर्व विद्याओं का जानने, सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देनेवाला है, इस से परमात्मा का नाम **'दयालु'** है।

८२- **'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तदद्वैतम्।** अर्थात् **'सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म'** दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत से रहित है। सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जातिवाला वृक्ष, पाषाणादि। स्वगत अर्थात् जैसे शरीर में आँख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है, वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है, इस से परमात्मा का नाम **'अद्वैत'** है।

८३- **'गण्यन्ते ये ते गुणा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः'** जितने सत्त्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड़ के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उन से जो पृथक् है। इन में **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्'** इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है, इससे परमात्मा का नाम **'निर्गुण'** है।

८४- **'यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः'** जो सब का ज्ञान, सर्वसुख, पवित्रता, अनन्त बलादि गुणों से युक्त है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'सगुण'** है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से 'सगुण' और इच्छादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' है, वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर 'निर्गुण' और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से 'सगुण' है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने सगुण, वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिए।

८५- **'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी'** जो सब प्राणी और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'अन्तर्यामी'** है।

८६- **'यो धर्म्मे राजते स धर्मराजः'** जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित, धर्म ही का प्रकाश करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'धर्म्मराज'** है।

८७- **(यमु उपरमे)** इस धातु से 'यम' शब्द सिद्ध होता है। **'य सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः'** जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है, इसलिए परमात्मा का नाम **'यम'** है।

८८- **(भज सेवायाम्)** इस धातु से 'भग' इससे मतुप् होने से 'भगवान्' शब्द सिद्ध होता है। **'भगः सकलैश्वर्य्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्'** जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है, इसीलिए उस ईश्वर का नाम **'भगवान्'** है।

८९- **(मन ज्ञाने)** इस धातु से 'मनु' शब्द बनता है। **'यो मन्यते स मनुः'** जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है, इसलिये उस ईश्वर का नाम **'मनु'** है।

९०- **(पॄ पालनपूरणयोः)** इस धातु से 'पुरुष' शब्द सिद्ध हुआ है **'यः स्वव्याप्त्या चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः'** जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'पुरुष'** है।

९१- (डुभृञ्०ा० धारणपोषणयोः) 'विश्व' पूर्वक इस धातु से 'विश्वम्भर' शब्द सिद्ध होता है। **'यो विश्वं बिभर्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वरः'** जो जगत् का धारण और पोषण करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'विश्वम्भर'** है।

९२- (कल संख्याने) इस धातु से 'काल' शब्द बना है। **'कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः'** जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'काल'** है।

९३- (शिष्लृ विशेषणे) इस धातु से 'शेष' शब्द सिद्ध होता है। **'यः शिष्यते स शेषः'** जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहा है, इसलिए उस परमात्मा का नाम **'शेष'** है।

९४- (आप्लृ व्याप्तौ) इस धातु से 'आप्त' शब्द सिद्ध होता है। **'यः सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सवैर्धर्मात्मभिराप्यते छलादिरहितः स आप्तः'** जो सत्योप- देशक, सकल विद्यायुक्त, सब धर्मात्माओं को प्राप्त होता है और धर्मात्माओं से प्राप्त होने योग्य छल-कपटादि से रहित है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'आप्त'** है।

९५- (डुकृञ्०ा० करणे) 'शम्' पूर्वक इस धातु से 'शंकर' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शंकल्याणं सुखं करोति स शंकरः'** जो कल्याण अर्थात् सुख का करनेहारा है, इससे उस ईश्वर का नाम **'शंकर'** है।

९६- 'महत्' शब्द पूर्वक 'देव' शब्द से 'महादेव' सिद्ध होता है। **'यो महतां देवः स महादेवः'** जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है, इसलिए उस परमात्मा का नाम **'महादेव'** है।

९७- (प्रीञ्०ा० तर्पणे कान्तौ च) इस धातु से 'प्रिय' शब्द सिद्ध होता है। **'यः पृणाति प्रीयते वा स प्रियः'** जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सब को कामना के योग्य है, इसलिए उस ईश्वर का नाम **'प्रिय'** है।

९८- (भू सत्तायाम्) 'स्वयं' पूर्वक इस धातु से 'स्वयम्भू' शब्द सिद्ध होता है। **'यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः'** जो आप से आप ही है, किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ, इस से उस परमात्मा का नाम **'स्वयम्भू'** है।

९९- (कु शब्दे) इस धातु से 'कवि' शब्द सिद्ध होता है। **'यः कौति शब्दयति सर्वा विद्याः स कविरीश्वरः'** जो वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'कवि'** है।

१००- (शिवु कल्याणे) इस धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है। **'बहुलमेतन्निदर्शनम्।'** इससे शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करनेहारा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'शिव'** है। ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं। परन्तु इन से भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं, वैसे उस के अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म्म और स्वभाव का एक-एक नाम है। इस से ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने विन्दुवत् हैं। क्योंकि वेदादि शास्त्रें में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उनके पढ़ने पढ़ाने से बोध हो सकता है। और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा-पूरा हो सकता है, जो वेदादिशास्त्रें को पढ़ते हैं।

यह किञ्चित्मात्र ईश्वर के विषय में लिखा, अब इस के आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित ईश्वरनामविषये
प्रथमः समुल्लासः सम्पूर्णः।।१।।

अथ द्वितीयसमुल्लासारम्भः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उन का हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता । इसीलिए (मातृमान्) अर्थात् **'प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्'** धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे। माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस् वीर्य्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हो। जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजोदर्शन के पांचवें दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन, उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़ के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शन के दिन से लेके १६वीं रात्रि को पश्चात् न समागम करना। पुनः जब तक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तब तक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों। जब दोनों के शरीर में आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकार का शोक न हो। जैसा चरक और सुश्रुत में भोजन छादन का विधान और मनुस्मृति में स्त्री पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है उसी प्रकार करें और वर्तें। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिए। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का संग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करते रहै कि जब तक सन्तान का जन्म न हो।

जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जल से बालक को स्नान, नाड़ीछेदन करके सुगन्धियुक्त घृतादि का होम[१] और स्त्री के भी स्नान भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिस से बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाय।

ऐसा पदार्थ उस की माता वा धायी खावे कि जिस से दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों।

जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान जहाँ का वायु शुद्ध हो वहां रक्खें सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस देश में भ्रमण कराना उचित है कि जहां का वायु शुद्ध हो और जैसा उचित समझें वैसा करें। इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम बल, पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक हों। बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की िंजह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना; ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर स्वर, अक्षर, मात्र, पद, वाक्य, संहिता अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिस से कहीं उन का अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीडा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय से स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्यभाषण शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें।

जब पांच-पांच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिन से अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्त्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें। जिन से सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो-जो विद्या, धर्मविरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उन का भी उपदेश कर दें जिस से भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो ।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति।। मनु०।।

अर्थ-जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतकशरीर जिस का नाम प्रेत है उस का दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है। और जब उस शरीर का दाह हो चुका तब उस का नाम भूत होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हों, वर्त्तमान में आ के न रहें वे भूतस्थ होने से उन का नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है परन्तु जिस को शंका, कुसंग, कुसंस्कार होता है उस को भय और शंकारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं। देखो! जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख दुःख के पफ़ल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है?

अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उन का औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार से ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र, यन्त्र बांधते-बंधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुःख देते फिरते हैं। जब आंख के अन्वमे और गांठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि-'महाराज ! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है? ' तब वे बोलते हैं कि 'इस के शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है, जब तक तुम इस का उपाय न करोगे तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो तो मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इन को निकाल दें। तब वे अन्धे और उन के सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज ! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ परन्तु इन को अच्छा कर दीजिए।' तब तो उन की बन पड़ती है। वे धूर्त्त कहते हैं-'अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेंट और ग्रहदान कराओ।' भफ़ांभफ़, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उन में से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच कूद के कहता है-'मैं इसका प्राण ही ले लूँगा।' तब वे अन्धे उस भंगी चमार

आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं-'आप चाहें सो लीजिये इस को बचाइये।' तब वह धूर्त्त बोलता है मैं हनुमान् हूँ, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट। मैं देवी वा भैरव हूं, लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र।' जब वे कहते हैं कि-'जो चाहो सो लो' तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट 'पांच जूता, दण्डा वा चपेटा, लातें मारें' तो उसके हनुमान्, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं। क्योंकि वह उन का केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है।

और जब किसी ग्रहग्रस्त ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं-'हे महाराज! इस को क्या है? ' तब वे कहते हैं कि-'इस पर सूर्य्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इन की शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इस को सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं।'

(उत्तर) कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं, वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें?

(प्रश्न) क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुःखी हो रहे हैं यह ग्रहों का पफ़ल नहीं है?

(उत्तर) नहीं, ये सब पाप पुण्यों के पफ़ल हैं।

(प्रश्न) तो क्या ज्योातिषशास्त्र झूठा है?

(उत्तर) नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो पफ़ल की लीला है वह सब झूठी है।

(प्रश्न) क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्पफ़ल है।

(उत्तर) हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र' रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सब को आनन्द होता है। परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का पफ़ल न सुने। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उस के माता, पिता पुरोहित से कहते हैं-'महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये' जो धनाढ्य हों तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है। तब उसके मां बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं-'इस का जन्मपत्र अच्छा तो है? ' ज्योतिषी कहता है-'जो है सो सुना देता हूं। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिन

का पफ़ल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इस का तेज पड़ेगा। शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा।' इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं-'वाह वाह ज्योतिषी जी! आप बहुत अच्छे हो।' ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है-'ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् पफ़लाने-पफ़लाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इस का मृत्युयोग है।' इस को सुन के माता पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोकसागर में डूब कर ज्योतिषी से कहते हैं कि 'महाराज जी! अब हम क्या करें? ' तब ज्योतिषी जी कहते हैं-'उपाय करो'। गृहस्थ पूछे 'क्या उपाय करें।' ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि 'ऐसा-ऐसा दान करो। ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे।' अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायेगा तो कहेंगे हम क्या करें परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है। हम ने तो बहुत सा यत्न किया और तुम ने कराया, उस के कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते है कि देखो-हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है? तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहिये और बच जाय तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि 'इस के कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं ।' वैसे गृहस्थ भी कहें कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं' और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान करा के आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

अब रह गई शीतला और मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं। कोई कहता है कि 'जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र, यन्त्र के प्रताप से उस को कोई विघ्न नहीं होने देते।' उन को वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मपफ़ल से भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त्त जान लेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी। इस से इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सब को विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं,

इस काम को कभी न छोड़ना चाहिये। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उन को भी महापामर समझना चाहिये।

इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिस से स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःखप्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे- 'देखो जिस के शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उस को आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिस को प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुम को विद्या-ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।' इसी प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें।

इसीलिए 'मातृमान् पितृमान्' शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है अर्थात् जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ वर्ष से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और ९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें।

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है-

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।।

अर्थ-जो माता, पिता और आचार्य, सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो

सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें।

जैसे अन्य शिक्षा की वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों को छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। क्योंकि जिस पुरुष ने जिसके सामने एक वार चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि कर्म किया उस की प्रतिष्ठा उस के सामने मृत्युपर्य्यन्त नहीं होती। जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इस से जिस के साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उस के साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'मैं तुम को वा तुम मुझ से अमुक समय में मिलूँगा वा मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुम को मैं दूँगा ।' इस को वैसे ही पूरी करे नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा, इसलिये सदा सत्यभाषण और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सब को होना चाहिये। किसी को अभिमान करना योग्य नहीं, क्योंकि **'अभिमानः श्रियं हन्ति'** यह विदुरनीति का वचन है। जो अभिमान अर्थात् अहंकार है वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इस वास्ते अभिमान करना न चाहिये। छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये। छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। 'कृतघ्नता' उस को कहते हैं कि किसी के किए हुए उपकार को न मानना। क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ों को मान्य दे, उन के सामने उठ कर जा के उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न करे। सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रक्खें। सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन और धनादि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करें।

यान्यस्माकँ्‌ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।। यह तैत्ति०।
इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उन का ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। जो-जो सत्य जाने उन-उन का प्रकाश और प्रचार करे। किसी पाखण्डी दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस-जिस उत्तम कर्म के लिये माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवें उस-उस का यथेष्ट पालन करो। जैसे माता, पिता ने धर्म, विद्या, अच्छे आचरण के श्लोक 'निघण्टु' 'निरुक्त' 'अष्टाध्यायी' अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों उन-उन का पुनः अर्थ विद्यार्थियों को विदित करावें। जैसे प्रथम समुल्लास में परमेश्वर का व्याख्यान किया है उसी प्रकार मान के उस की उपासना करें। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उस से कुछ न्यून भोजन करे। मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें। अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तरना न जाने तो डूब ही जा सकता है। **'नाविज्ञाते जलाशये'** यह मनु का वचन। अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करें।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्।। मनु०।।
अर्थ-नीचे दृष्टि कर ऊँचे नीचे स्थान को देख के चले, वस्त्र से छान कर जल पिये, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे।
माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ।।
यह किसी कवि का वचन है।
वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उन को विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।
यह बालशिक्षा में थोड़ा सा लिखा, इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते बालशिक्षाविषये
द्वितीयः समुल्लासः सम्पूर्णः।।२।।

अथ तृतीयसमुल्लासारम्भः

अथाऽध्ययनाऽध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने का प्रकार लिखते हैं। सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।।

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शील स्वभाव युक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त और अभिमान अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की शाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उन से शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं।

द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य्य कुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहेंं। स्त्रियांेें की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा बह्मचारिणी रहें तब तक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्परक्रीडा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें और अध्यापक लोग उन

को इन बातों से बचावें। जिस से उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा के बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।

पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोश दूर ग्राम वा नगर रहे। सब को तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये। उन के माता पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिस से संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें। जब भ्रमण करने को जायें तब उनके साथ अध्यापक रहैं, जिस से किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्।। मनु०।।

इसका अभिप्राय यह है कि इस में राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में ही हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य्यकुल में हो।

पिता माता वा अध्यापक अपने लड़का लड़कियों को अर्थसहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें। वह मन्त्र-

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

इस मन्त्र में जो प्रथम (ओ३म्) है उस का अर्थ प्रथमसमुल्लास में कर दिया है, वहीं से जान लेना। अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं-**'भूरिति वै प्राणः' 'यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः'** जो सब जगत् के जीवन का आवमार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का वाचक होके 'भूः' परमेश्वर का नाम है। **'भुवरित्यपानः' 'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः'** जो सब दुःखों से रहित, जिस के संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। **'स्वरिति व्यानः' 'यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः'**। जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक के हैं। (सवितुः) **'यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य'**। जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है। (देवस्य) **'यो दीव्यति दीव्यते वा स**

देवः'। जो सर्वसुखों का देनेहारा और जिस की प्राप्ति की कामना सब करते हैं। उस परमात्मा का जो **(वरेण्यम्) 'वर्त्तुमर्हम्'** स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ **(भर्गः) 'शुद्धस्वरूपम्'** शुद्धस्वरूप और पवित्र करने वाला चेतन ब्रह्म स्वरूप है **(तत्)** उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग **(धीमहि) 'धरेमहि'** धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि **(यः) 'जगदीश्वरः'** जो सविता देव परमात्मा **(नः) 'अस्माकम्'** हमारी **(धियः) 'बुद्धीः'** बुद्धियों को (प्रचोदयात्) **'प्रेरयेत्'** प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

'हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार जगत्पते सकलजगदुत्पादक! हे अनादे! विश्वम्भर सर्वव्यापिन्! हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि ध्यायेम वा कस्मै प्रयोजना-येत्यत्रह। हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरो भवान्नस्माकं धियः प्रचोदयात् स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कश्चित् कदाचिन्मन्यामहे।

हे मनुष्यो! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्तस्वभाव वाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय का करनेहारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकाररहित, सब के घट-घट का जानने वाला, सब का धर्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामीस्वरूप हम को दुष्टाचार अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्य मार्ग में चलावें, उस को छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्यांेकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है। इस प्रकार गायत्री मन्त्र का उपदेश करके **सन्ध्योपासन की जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया हैं सिखलावें।** प्रथम स्नान इसलिए है कि जिस से शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं। इस में प्रमाण-

अद्भिर्गात्रणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

यह मनुस्मृति का श्लोक है।

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म ही के अनुष्ठान करने से जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़-निश्चय पवित्र होता है। इस से स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना। दूसरा प्राणायाम, इसमें प्रमाण-

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।।

-यह योगशास्त्र का सूत्र है।

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

यह मनुस्मृति का श्लोक है।

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। प्राणायाम की विधि-

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य। योगसूत्र।

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर पफ़ेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच के वायु को बाहर पफ़ेंक दे। जब तक मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब गभराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को ले के फिर भी वैसे ही े करता जाय जितना सामर्थ्य और इच्छा हो और मन में (ओ३म्) इस का जप करता जाय इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।

एक 'बाह्यविषय' अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा 'आभ्यन्तर' अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोक के। तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही वार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध उस को न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन और

इन्द्रियाँ भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इस से मनुष्य शरीर में वीर्य्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर, बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रें को थोड़े ही े काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे। भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने, बड़े छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें। **सन्ध्योपासन** जिसको **ब्रह्मयज्ञ** भी कहते हैं। **'आचमन'** उतने जल को हथेली में ले के उस के मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुंचे, न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। पश्चात् 'मार्जन' अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रदि अंगों पर जल छिड़के, उस से आलस्य दूर होता है जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे। पुनः समन्त्रक **प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान,** पीछे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति शिखलावे। पश्चात् 'अघमर्षण' अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे। यह सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करे।

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः।। यह मनुस्मृति का वचन है।

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा सावधान हो के जल के समीप स्थित हो के नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे परन्तु यह जन्म से करना उत्तम है। **दूसरा देवयज्ञ-**जो अग्निहोत्र और विद्वानों का संग सेवादिक से होता है। सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं। **न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे।** जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करें। यथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का भी समय है। उसके लिए एक किसी धातु वा मिट्टी की ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोर उतनी ही गहिरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहे। उसमें चन्दन पलाश वा आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठों के टुकड़े उसी वेदी के परिमाण से बड़े छोटे करके उस में रक्खे, उसके मध्य में अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त इन्धन रख दे। एक प्रोक्षणीपात्र ऐसा और तीसरा प्रणीतापात्र इस प्रकार

का और एक इस प्रकार की आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र और चमसा ऐसा सोने, चांदी वा काष्ठ का बनवा के प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रख के घृत को तपा लेवे। प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिये है कि उस से हाथ धोने को जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे फिर मन्त्र से होम करें।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।।

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़ कर एक-एक आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तो-

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासव । यद्भद्रं तन्न आ सव ।।

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्र से आहुति देवे। 'ओं' 'भूः' और 'प्राणः' आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं। इनके अर्थ कह चुके हैं। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही े जीभ से बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये।

(प्रश्न) होम से क्या उपकार होता है?

(उत्तर) सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

(प्रश्न) चन्दनादि घिस के किसी को लगावे वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

(उत्तर) जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते। क्यां ेकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो! जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के पफ़ैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

(प्रश्न) जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।

(उत्तर) उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके क्योंकि उस में भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि

ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है।

(प्रश्न) तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है?

(उत्तर) मन्त्रें में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने में लाभ विदित हो जायें और मन्त्रें की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें। वेदपुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे।

(प्रश्न) क्या इस होम करने के विना पाप होता है?

(उत्तर) हां ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में पफ़ैलाना चाहिये। और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यांेें का उपकार होता है परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उन के शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इस से अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिए होम का करना अत्यावश्यक है।

(प्रश्न) प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है?

(उत्तर) प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और छः-छः माशे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिये आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय। ये दो यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना-पढ़ाना सन्ध्योपासन ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा संग करना परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का हीे करना होता है।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च

स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
-यह तैत्तिरीयोपनिषत् का वचन है।
ये पढ़ने पढ़ाने वालों के नियम हैं। (ऋतं०) यथार्थ आचरण से पढ़ें और पढ़ावें, (सत्यं०) सत्याचार से सत्यविद्याओं को पढ़ें वा पढ़ावें, (तपः०) तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रें को पढ़ें और पढ़ावें, (दमः०) बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोक के पढ़ें और पढ़ाते जायें, (शमः०) अर्थात् मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटा के पढ़ते पढ़ाते जायें, (अग्नयः०)
आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदि को जान के पढ़ते पढ़ाते जायें, और (अग्निहोत्रं०) अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें करावें, (अतिथयः०)
अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें, (मानुषं०) मनुष्यसम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए पढ़ते पढ़ाते रहैं, (प्रजा०) अर्थात् सन्तान और राज्य का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें, (प्रजन०) वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें, (प्रजातिः०) अर्थात् अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें।
यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्।। मनु०।।
यम पांच प्रकार के होते हैं-
तत्रहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।। योगसूत्र।।
अर्थात् (अहिंसा) वैरत्याग, (सत्य) सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना, (अस्तेय) अर्थात् मन वचन कर्म से चोरीत्याग, (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमानरहित होना, इन पांच यमों का सेवन सदा करें । केवल नियमों का सेवन अर्थात्-
शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। योगसूत्र।।
(शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता (सन्तोष) सम्यक्‌ प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि लाभ में हर्ष वा शोक न करना (तप) अर्थात् कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान (स्वाध्याय) पढ़ना पढ़ाना (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वर की भक्तिविशेष में आत्मा को अर्पित रखना, ये पांच नियम कहाते हैं। यमों के विना केवल इन नियमों का सेवन न करे किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे। जो यमों का सेवन छोड़ के केवल नियमों का सेवन करता है वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है।

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहस्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।। मनु०।।
अर्थ-अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसी के लिये भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेदविहित कर्मादि उत्तम कर्म किसी से न हो सकें। इसलिये-
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।। मनु०।।
अर्थ-(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ते-पढ़ाते (व्रत) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होम) अग्निहोत्रदि होम, सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञान विद्या के ग्रहण (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने (सुतैः) सुसन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियों के सेवनरूप पञ्चमहायज्ञ और (यज्ञैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्याविज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर बनता है। इतने साधनों के विना ब्राह्मणशरीर नहीं बन सकता।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।। मनु०।।
अर्थ-जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें। क्योंकि-
इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषम् ऋच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।। मनु०।।
अर्थ-जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्।। मनु०।।
जो दुष्टाचारी-अजितेन्द्रिय पुरुष हैं उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को नहीं प्राप्त होते।
वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि।।१।। मनु०।।
नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम्।

ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यम् अनध्यायवषट्कृतम्।।२।। मनु०।।
वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञों के करने और होममन्त्रें में अनध्यायविषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं है क्योंकि।।१।। नित्यकर्म में अनध्याय नहीं होता। जैसे श्वासप्रश्वास सदा लिये जाते हैं बन्ध नहीं किये जाते वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये; न किसी दिन छोड़ना क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रदि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्यरूप होता है। जैसे झूठ बोलने में सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है। वैसे हीे बुरे कर्म करने में सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही होता है।।२।।
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्।। मनु०।।
जो सदा नम्र सुशील विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है, उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते।
अहिसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाव्फ़ चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।।१।।
यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं पफ़लम्।।२।। मनु०।।
विद्वान् और विद्यार्िथयों को योग्य है कि वैरबुद्धि छोड़ के सब मनुष्यों के कल्याण के मार्ग का उपदेश करें और उपदेष्टा सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोले। जो धर्म की उन्नति चाहै वह सदा सत्य में चले और सत्य हीे का उपदेश करे।।१।। जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित सदा रहते हैं, वही सदा वेदान्त अर्थात् सब वेदों के सिद्धान्तरूप पफ़ल को प्राप्त होता है।।२।।
सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा।। मनु०।।
वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है जो प्रतिष्ठा से विष के तुल्य सदा डरता है और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता है।
अनेन त्रफ़मयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः।
गुरौ वसन् सञ्चिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः।। मनु०।।
इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे-धीरे वेदार्थ के ज्ञानरूप उत्तम तप को बढ़ाते चले जायें।
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।। मनु०।।
जो वेद को न पढ़ के अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।
वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।।१।।
अभ्यंगमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं त्रफ़ोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम्।।२।।
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च।।३।।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः।।४।।
ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा।।१।।
अंगों का मर्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आंखों में अञ्जन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष और नाच गान, बाजा बजाना।।२।।
द्यूत, जिस किसी की कथा, निन्दा, मिथ्याभाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें।।३।।
सर्वत्र एकाकी सोवे, वीर्य्य स्खलित कभी न करें, जो कामना से वीर्यस्खलित कर दे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य्यव्रत का नाश कर दिया।।४।।
वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।।१।।
मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकँ् सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।।२।।
ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।।३।।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्त्तेरन्। तथा तत्र वर्त्तेथाः।।४।।
एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।।५।। तैत्तिरीय०।।
आचार्य्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचार कर, प्रमादरहित होके पढ़ पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण कर और आचार्य्य के लिये प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर । प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़। देव विद्वान् और माता पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान् का सत्कार करे उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया कर, उन से भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों उनको ग्रहण कर और जो हमारे पापाचारण हों उन को कभी मत कर। जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर, श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिए। जब कभी तुझ को कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो तो जो वे समदर्शी पक्षपातरहित योगी अयोगी आर्द्रचित्त धर्म की कामना करने वाले धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्ममार्ग में वर्तें वैसे तू भी उसमें वर्त्ता कर। यही आदेश आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्त्तना और अपना चाल चलन सुधारना चाहिए।
अकामस्य त्रिफ़या काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्।। मनु०।।
मनुष्यों को निश्चय करना चाहिए कि निष्काम पुरुष में नेत्र का संकोच विकास का होना भी सर्वथा असम्भव है । इस से यह सिद्ध होता है कि जो-जो कुछ भी करता है वह-वह चेष्टा कामना के विना नहीं है।
आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।।१।।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्।।२।। मनु०।।
कहने, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ाने का पफ़ल यही है कि जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना, इसलिये धर्माचार में सदा युक्त रहे।।१।। क्योंकि जो धर्माचरण से रहित है वह वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप पफ़ल को प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़ के धर्माचरण करता है वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है।।२।।
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्रश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।।१।। मनु०।।
जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रें का अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति, पङ् क्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिये। क्योंकि-
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। मनु०।।

श्रुति वेद, स्मृति वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेदद्वारा परमेश्वरप्रतिपादित कर्म्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिस को आत्मा चाहता है जैसे कि सत्यभाषण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं में धर्माधर्म का निश्चय होता है। जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्यागरूप आचार है उसी का नाम धर्म और इस से विपरीत जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण रूप कर्म है उसी को अधर्म कहते हैं।
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।। मनु०।।
जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्रीसेवनादि में नहीं पफ़ंसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय विना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता। इस प्रकार आचार्य्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें, क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण

कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में पफ़ंस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहैं तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करने हारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते, इसलिए वे विद्या व्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते। और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये।

अब जो-जो पढ़ना-पढ़ाना हो वह-वह अच्छी प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षा पांच प्रकार से होती है-

एक-जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह-वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है।

दूसरी-जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है। जैसे-कोई कहै 'विना माता पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ' ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।

तीसरी-'आप्त' अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह-वह ग्राह्य और जो-जो विरुद्ध वह-वह अग्राह्य है।

चौथी-अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही े सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा।

और **पांचवीं**-आठों प्रमाण अर्थात् **प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव** और **अभाव** इनमें से प्रत्यक्ष के लक्षणादि के जो-जो सूत्र नीचे लिखेंगे वे-वे सब न्यायशास्त्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय के जानो।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्। -न्याय० अध्याय १। आह्निक १। सूत्र ४।।

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है । इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उस को प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् संज्ञासंज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह-वह ज्ञान न हो। जैसा किसी ने किसी से कहा कि 'तू जल ले आ' वह लाके उस के पास धर के बोला कि 'यह जल है' परन्तु वहां 'जल' इन दो अक्षरों की संज्ञा लाने वा मंगवाने वाला नहीं देख सकता है। किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द-प्रमाण का विषय है। **'अव्यभिचारि'** जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया, जब दिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुषज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा, ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम व्यभिचारी है। **'व्यवसायात्मक'** किसी ने दूर से नदी की बालू को देख के कहा कि 'वहां वस्त्र सूख रहे हैं, जल है वा और कुछ है' 'वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त' जब तक एक निश्चय न हो तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है किन्तु जो **अव्यपदेश्य,** अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं। दूसरा अनुमान-

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टञ्च।।

-न्याय० अ० १। आ० १। सू० ५।।

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश में सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को **अनुमान** कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में वमूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख के पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक **'पूर्ववत्'** जैसे बद्दलों को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि जहां-जहां कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह **'पूर्ववत्'**। दूसरा **'शेषवत्'** अर्थात् जहां कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो । जैसे नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देख के अनादि कारण का तथा कर्त्ता ईश्वर का और पाप पुण्य के आचरण को देख के सुख दुःख का ज्ञान होता है, इसी को **'शेषवत्'** कहते हैं। तीसरा **'सामान्यतोदृष्ट'** जो कोई किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना विना गमन के

कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि अनु अर्थात् **'प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्'** जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे विना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा उपमान- **प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्।।** -न्याय० अ० १। आ० १। सू० ६।।

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। **'उपमीयते येन तदुपमानम्'** जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि 'तू देवदत्त के सदृश विष्णुमित्र को बुला ला' वह बोला कि-'मैंने उसको कभी नहीं देखा' उस के स्वामी ने कहा कि 'जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है' वा 'जैसी यह गाय है वैसा ही गवय अर्थात् नीलगाय होता है।' जब वह वहां गया और देवदत्त के सदृश उस को देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है, उसको ले आया। अथवा किसी जंगल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है।

चौथा शब्दप्रमाण-

आप्तोपदेशः शब्दः।। -न्याय० अ० १। आ० १। सू० ७।।

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिस से सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं, उन्हीं को शब्दप्रमाण जानो।

पांचवां ऐतिं-

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्।।

-न्याय० अ० २। आ० २। सू० १।।

जो इति ह अर्थात् इस प्रकार का था उस ने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवनचरित्र का नाम ऐतिह्य है।

छठा अर्थापनि-

'अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः' केनचिदुच्यते **'सत्सु घनेषु वृष्टिः, सति कारणे कार्य्यं भवतीति किमत्र प्रसज्यते, असत्सु घनेषु वृष्टिरसति कारणे च कार्य्यं न भवति ।'** जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'बद्दल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य्य उत्पन्न होता है' इस से विना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि विना बद्दल वर्षा और विना कारण कार्य्य कभी नहीं हो सकता। सातवां

सम्भव- **'सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः'** कोई कहे कि 'माता पिता के विना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया, इत्यादि सब असम्भव हैं। क्यांेकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है। आठवां अभाव- **'न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः'** जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हाथी ले आ' वह वहां हाथी का अभाव देख कर जहां हाथी था वहां से ले आया। ये आठ प्रमाण। इन में से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं। इन चार प्रकार की परीक्षाओं से मनुष्य सत्यासत्य का निश्चय कर सकता है अन्यथा नहीं।

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।। -वै० अ० १। आ० १। सू० ४।।

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर 'साधर्म्य' अर्थात् जो तुल्य धर्म है जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़, 'वैधर्म्य' अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल, इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान अर्थात् स्वरूपज्ञान से 'निःश्रेयसम्' मोक्ष प्राप्त होता है।

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।। -वै० अ० १। आ० १। सू० ५।।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य हैं।

त्रिक्ऱयागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्।।
-वै० अ० १। आ० १। सू० १५।।

'क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यसिं्मस्तत् क्रियागुणवत्' जिस में क्रिया, गुण और केवल गुण भी रहैं उस को द्रव्य कहते हैं। उन में से पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रियारहित गुण वाले हैं। (समवायि) **'समवेतुं' शीलं यस्य तत् समवायि प्राग्वृत्तित्वं कारणं समवायि च तत्कारणं च समवायिकारणम् ।' 'लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्'** जो मिलने के स्वभावयुक्त कार्य से कारण पूर्वकालस्थ हो उसी को 'द्रव्य' कहते हैं। जिस से लक्ष्य जाना जाय जैसा आंख से रूप जाना जाता है उसको 'लक्षण' कहते हैं।

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी।। -वै० अ० २। आ० १। सू० १।।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवाली पृथिवी है। उस में रूप, रस और स्पर्श अग्नि, जल और वायु के योग से हैं।

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः।। -वै० अ० २। आ० २। सू० २।।

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है। वैसे ही जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक है।

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः।। -वै० अ० २। आ० १। सू० २।।

रूप, रस और स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है। परन्तु इन में जल का रस स्वाभाविक गुण तथा रूप, स्पर्श अग्नि और वायु के योग से हैं। -

अप्सु शीतता।। -वै० अ० २। आ० १। सू० ५।।

और जल में शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है।

तेजो रूपस्पर्शवत्।। -वै० अ० २। आ० १। सू० ३।।

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज है। परन्तु इस में रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु योग से है।

स्पर्शवान् वायुः।। -वै० अ० २। आ० १। सू० ४।।

स्पर्श गुणवाला वायु है परन्तु इस में भी उष्णता, शीतता, तेज और जल के योग से रहते हैं।

त आकाशे न विद्यन्ते।। -वै० अ० २। आ० १। सू० ५।।

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं। किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है।

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिंगम्।। -वै० अ० २। आ० १। सू० २०।।

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है वह आकाश का लिंग है।

कार्य्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः।।

-वै० अ० २। आ० १। सू० २५।।

अन्य पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से शब्द; स्पर्शगुणवाले भूमि आदि का गुण नहीं हैं किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है।

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिंगानि।।

-वै० अ० २। आ० २। सू० ६।।

जिस में अपर पर (युगपत्) एक वार (चिरम्) विलम्ब (क्षिप्रम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको 'काल' कहते हैं।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति।।

-वै० अ० २। आ० २। सू० ९।।

जो नित्य पदार्थों में न हो और अनित्यों में हो इसलिये कारण में ही काल संज्ञा है।

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिंगम्।। -वै० अ० २। आ० २। सू० १०।।

यहां से वह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे, जिस में यह व्यवहार होता है उसी को 'दिशा' कहते हैं।

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची।।
-वै० अ० २। आ० २। सू० १४।।

जिस ओर प्रथम आदित्य का संयोग हुआ है, होगा, उस को पूर्व दिशा कहते हैं। और जहां अस्त हो उस को पश्चिम कहते हैं। पूर्वाभिमुख मनुष्य के दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर दिशा कहाती है।

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि।। -वै० अ० २। आ० २। सू० १६।।

इस से पूर्व दक्षिण के बीच की दिशा को आग्नेयी, दक्षिण पश्चिम के बीच को नैऋत, पश्चिम उत्तर के बीच को वायवी और उत्तर पूर्व के बीच को ऐशानी दिशा कहते हैं।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति।।
-न्याय० अ० १। आ० १। सू० १०।।

जिस में (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना, गुण हों वह जीवात्मा है। वैशेषिक में इतना विशेष है-

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तिर्वकाराः सुखदुःखेच्छा-द्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि।। -वै० अ० ३। आ० २। सू० ४।।

(प्राण) भीतर से वायु को निकालना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना (निमेष) आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख का ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना उन से विषयों का ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिंग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्।। -न्याय० अ० १। आ० १। सू० १६।।

जिस से एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण ज्ञान नहीं होता उस को मन कहते हैं। यह द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा। अब गुणों का कहते हैं-

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वा-ऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः।। -वै० अ० १। आ० १। सू० ६।।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ गुण कहाते हैं।

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्।।

-वै० अ० १। आ० १। सू० १६।।

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहै, अन्य गुण का धारण न करे, संयोग और विभाग में कारण न हो, अनपेक्ष अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे उसका नाम गुण है।

श्रोत्रेपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः।। - महाभाष्य।।

जिस की श्रोत्रें से प्राप्ति जो बुद्धि से ग्रहण करने योग्य और प्रयोग से प्रकाशित तथा आकाश जिस का देश है वह शब्द कहाता है। नेत्र से जिस का ग्रहण हो वह रूप, जिह्वा से जिस मिष्टादि अनेक प्रकार का ग्रहण होता है वह रस, नासिका से जिस का ग्रहण होता है वह गन्ध, त्वचा से जिसका ग्रहण होता है वह स्पर्श, एक द्वि इत्यादि गणना जिस से होती है वह संख्या, जिस से तौल अर्थात् हल्का भारी विदित होता है वह परिमाण, एक दूसरे से अलग होना वह पृथक्त्व, एक दूसरे के साथ मिलना वह संयोग, एक दूसरे से मिले हुए के अनेक टुकड़े होना वह विभाग, इस से यह पर है वह पर, उस से यह उरे है वह अपर, जिस से अच्छे बुरे का ज्ञान होता है वह बुद्धि, आनन्द का नाम सुख, क्लेश का नाम दुःख, (इच्छा) राग, (द्वेष) विरोध, (प्रयत्न) अनेक प्रकार का बल पुरुषार्थ, (गुरुत्व) भारीपन, (द्रवत्व) पिघल जाना, (स्नेह) प्रीति और चिकनापन, (संस्कार) दूसरे के योग से वासना का होना, (धर्म) न्यायाचरण और कठिनत्वादि (अधर्म) अन्यायाचरण और कठिनता से विरुद्ध कोमलता ये २४ गुण हैं।

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि।।

-वै० अ० १। आ० १। सू० ७।।

‘उत्क्षेपण’ ऊपर को चेष्टा करना ‘अवक्षेपण’ नीचे को चेष्टा करना
‘आकु ञ्चन’ संकोच करना ‘प्रसारण’ पफ़ैलाना ‘गमन’ आना जाना घूमना आदि इन को कर्म कहते हैं। अब कर्म का लक्षण-

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्।।

-वै० अ० १। आ० १। सू० १७।।

'एकं द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यते गुणो यस्य यस्मिन् वा तदगुणं संयोगेषु विभागेषु चाऽपेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणं' अथवा **'यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम्'** एक द्रव्य के आश्रित गुणों से रहित संयोग और विभाग होने में अपेक्षा रहित कारण हो उसको कर्म्म कहते हैं।

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम्।। -वै० अ० १। आ० १। सू० १८।।

जो कार्य द्रव्य गुण और कर्म का कारण द्रव्य है। वह सामान्य द्रव्य है।

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम्।। -वै० अ० १। आ० १। सू० २३।।

जो द्रव्यों का कार्य द्रव्य है वह कार्यपन से सब कार्यों में सामान्य है।

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च।।

-वै० अ० १। आ० २। सू० ५।।

द्रव्यों में द्रव्यपन, गुणों में गुणपन, कर्मों में कर्मपन ये सब सामान्य और विशेष कहाते हैं। क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व कर्मत्व से द्रव्यत्व विशेष है; इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम्।। -वै० अ० १। आ० २। सू० ३।।

सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। जैसे-मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुषत्व इनमें ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व भी विशेष हैं। ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादि से विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र जानो।

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः।।

-वै० अ० ७। आ० २। सू० २६।।

कारण अर्थात् अवयवों में अवयवी कार्यों में क्रिया क्रियावान्, गुण गुणी, जाति व्यक्ति कार्य्य कारण, अवयव अवयवी, इन का नित्य सम्बन्ध होने से समवाय कहाता है और जो दूसरा द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है वह संयोग अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है।

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम्।। -वै० अ० १। आ० १। सू० ९।।

जो द्रव्य और गुण का समान जातीयक कार्य्य का आरम्भ होता है उस को साधर्म्य कहते हैं। जैसे पृथिवी में जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है वैसे ही जल में भी जडत्व और हिम आदि स्वसदृश कार्य का आरम्भ पृथिवी के साथ जल का और जल के साथ पृथिवी का तुल्य धर्म है। अर्थात् 'द्रव्य- गुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं वैधर्म्यम्' यह विदित हुआ कि जो द्रव्य और गुण का विरुद्ध धर्म और कार्य का आरम्भ है उस को वैधर्म्य कहते हैं। जैसे

पृथिवी में कठिनत्व, शुष्कत्व और गन्धवत्त्व धर्म जल से विरुद्ध और जल का द्रवत्व, कोमलता और रसगुणयुक्तता पृथिवी से विरुद्ध है।
कारणभावात्कार्यभावः।। -वै० अ० ४। आ० १। सू० ३।।
कारण के होने ही से कार्य्य होता है।
न तु कार्याभावात्कारणाभावः।। -वै० अ० १। आ० २। सू० २।।
कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता।
कारणाऽभावात्कार्याऽभावः।। -वै० अ० १। आ० २। सू० १।।
कारण के न होने से कार्य कभी नहीं होता।
कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।। -वै० अ० २। आ० १। सू० २४।।
जैसे कारण में गुण होते हैं वैसे ही कार्य्य में होते हैं। परिमाण दो प्रकार का है-
अणुमहदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषाभावाच्च।।
-वै० अ० ७। आ० १। सू० ११।।
(अणु) सूक्ष्म (महत्) बड़ा। जैसे त्रसरेणु लिक्षा से छोटा और द्व्यणुक से बड़ा है तथा पहाड़ पृथिवी से छोटे, वृक्षों से बड़े हैं।
सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता।। -वै० अ० १। आ० २। सू० ७।।
जो द्रव्य, गुण, कर्मों के सत् शब्द अन्वित रहता है अर्थात् 'सद् द्रव्यम्, सद् गुणः, सत्कर्म' सद् द्रव्य, सद् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्त्तमान कालवाची शब्द का अन्वय सब के साथ रहता है।
भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव।। -वै० अ० १। आ० २। सू० ४।।
जो सब के साथ अनुवर्त्तमान होने से सत्तारूप भाव है सो महासामान्य कहाता ह।ै यह क्रम भावरूप द्रव्यांे का है और जो अभाव है वह पाचं पक्रार का होता है।
त्रिफ़यागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत्।। -वै० अ० ९। आ० १। सू० १।।
क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के अभाव से प्राव्फ़ अर्थात् पूर्व (असत्) न था जैसे घट, वस्त्रदि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे इसका नाम 'प्रागभाव'।
दूसरा- **सदसत्।** -वै० अ० ९। आ० १। सू० २।।
जो होके न रहै जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट हो जाय यह 'प्रध्वंसाभाव' कहाता है। तीसरा-
सच्चासत्।। -वै० अ० ९। आ० १। सू० ४।।
जो होवे और न होवे जैसे 'अगौरश्वोऽनश्वो गौः' यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं अर्थात् घोड़े में गाय का और गाय में घोड़े का अभाव और गाय में गाय, घोड़े में घोड़े का भाव है। यह 'अन्योऽन्याभाव' कहाता है। चौथा-

यच्चान्यदसदतस्तदसत्।। -वै० अ० ९। आ० १। सू० ५।।
जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है उसको 'अत्यन्ताभाव' कहते हैं। जैसे-'नर शृंग' अर्थात् मनुष्य का सींग 'खपुष्प' आकाश का पफ़ूल और 'बन्ध्या पुत्र' बन्ध्या का पुत्र इत्यादि। पांचवां-
नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः।।
-वै० अ० ९। आ० १। सू० १०।।
घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है, घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है। यह संसर्गाभाव कहाता है । ये पांच अभाव कहाते हैं।
इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या।। -वै० अ० ९। आ० २। सू० १०।।
इन्द्रियों और संस्कार के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है।
तद्दुष्टं ज्ञानम्।। -वै० अ० ९। आ० २। सू० ११।।
जो दुष्ट अर्थात् विपरीत ज्ञान है उस को 'अविद्या' कहते हैं।
अदुष्टं विद्या।। -वै० अ० ९। आ० २। सू० १२।।
जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको 'विद्या' कहते हैं।।
पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्याऽनित्यत्वादनित्याश्च।।
-वै० अ० ७। आ० १। सू० २।।
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम्।। -वै० अ० ७। आ० १। सू० ३।।
जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण हैं ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं और जो इस से कारणरूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं।
सदकारणवन्नित्यम्।। -वै० अ० ४। आ० १। सू० १।।
जो विद्यमान हो और जिस का कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात्-
'सत्कारणवदनित्यम्' जो कारण वाले कार्यरूप द्रव्य गुण हैं वे अनित्य कहाते हैं।
अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैिंगकम्।।
-वै० अ० ९। आ० २। सू० १।।
इसका यह कार्य वा कारण है इत्यादि समवायि, संयोगि, एकार्थसमवायि और विरोधि यह चार प्रकार का लैिंगक अर्थात् लिंगलिंगी के सम्बन्ध से ज्ञान होता है। 'समवायि' जैसे आकाश परिमाण वाला है, 'संयोगि' जैसे शरीर त्वचा वाला है इत्यादि का नित्य संयोग है, 'एकार्थसमवायि' एक अर्थ में दो का रहना जैसे कार्य 'रूप' स्पर्श कार्य का लिंग अर्थात् जनाने वाला है, 'विरोधि' जैसे हुई वृष्टि होने वाली वृष्टि का विरोधी लिंग है।

'व्याप्ति'-

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य व्याप्तिः। निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः।। आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः।। -सांख्यसूत्र २९, ३१, ३२।।

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिस से सिद्ध किया जाय उन दोनों अथवा एक, साधनमात्र का निश्चित धर्म का सहचार है उसी को व्याप्ति कहते हैं। जैसे धूम और अग्नि का सहचार है।।२९।। तथा व्याप्त जो धूम उस की निज शक्ति से उत्पन्न होता है अर्थात् जब देशान्तर में दूर धूम जाता है तब विना अग्नियोग के भी धूम स्वयं रहता है। उसी का नाम व्याप्ति है अर्थात् अग्नि के छेदन, भेदन, सामर्थ्य से जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है।।३१।। जैसे महत्तत्त्वादि में प्रकृत्यादि की व्यापकता बुद्ध्यादि में व्याप्यता धर्म के सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान् आधाररूप का सम्बन्ध है।।३२।।

इत्यादि शास्त्रों के प्रमाणादि से परीक्षा करके पढ़े और पढ़ावे। अन्यथा विद्यार्थियों को सत्य बोध कभी नहीं हो सकता। जिस-जिस ग्रन्थ को पढ़ावें उस-उस की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो-जो सत्य ठहरे वह-वह ग्रन्थ पढ़ावें। जो-जो इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन-उन ग्रन्थों को न पढ़ें न पढ़ावें। क्योंकि-

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः।।

लक्षण जैसा कि **'गन्धवती पृथिवी'** जो पृथिवी है वह गन्धवाली है। ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण इन से सब सत्यासत्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है। इसके विना कुछ भी नहीं होता।

अथ पठनपाठनविधिः

अब पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं-प्रथम पाणिनिमुनिकृतशिक्षा जो कि सूत्ररूप है उस की रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न, यह करण है। जैसे 'प' इस का ओष्ठ स्थान, स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभ की क्रिया करनी करण कहाता है। इसी प्रकार यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता, पिता, आचार्य सिखलावें। तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ जैसे **'वृद्धिरादैच्'** फिर पदच्छेद जैसे **'वृद्धिः, आत्, ऐच् वा आदैच्',** फिर समास **'आच्च ऐच्च आदैच्'** और अर्थ जैसे **'आदैचां वृद्धिसंज्ञा क्रियते'** अर्थात् आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा है। **'तः परो यस्मात्स तपरस्तादपि परस्तपरः'** तकार जिस से परे और जो तकार से भी परे हो वह तपर कहाता है। इस से क्या सिद्ध

हुआ जो आकार से परे त् और त् से परे ऐच् दोनों तपर हैं। तपर का प्रयोजन यह है कि ह्रस्व और प्लुत की वृद्धि संज्ञा न हुई। उदाहरण (भागः) यहां 'भज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय के परे 'घ्, ञ्' की इत्संज्ञा होकर लोप हो गया। पश्चात् 'भज् अ' यहां जकार के पूर्व भकारोत्तर अकार को वृद्धिसंज्ञक आकार हो गया है। तो भाज् पुनः 'ज्' को ग् हो अकार के साथ मिलके 'भागः' ऐसा प्रयोग हुआ।

'अध्यायः' यहाँ अधिपूर्वक 'इङ्' धातु के ह्रस्व इ के स्थान में 'घञ्' प्रत्यय के परे 'ऐ' वृद्धि और उस को आय् हो मिल के 'अध्यायः'।

'नायकः' यहाँ 'नीञ्' धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में 'ण्वुल्' प्रत्यय के परे 'ऐ' वृद्धि और उस को आय् होकर मिलके 'नायकः'। और **'स्तावकः'** यहां 'स्तु' धातु से **'ण्वुल्'** प्रत्यय होकर ह्रस्व उकार के स्थान में 'औ' वृद्धि, आव् आदेश होकर अकार में मिल गया तो 'स्तावकः'। (कृञ्) धातु से आगे 'ण्वुल्' प्रत्यय, उस के 'ण् ल्' की इत्संज्ञा होके लोप, 'वु' के स्थान में अक आदेश और ऋकार के स्थान में 'आर्' वृद्धि होकर **'कारकः'** सिद्ध हुआ। जो-जो सूत्र आगे-पीछे के प्रयोग में लगें उन का कार्य सब बतलाता जाय और सिलेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर दिखला-दिखला के कच्चा रूप धर के जैसे 'भज़घञ्सु' इस प्रकार धर के प्रथम धातु के अकार का लोप पश्चात् घ्कार का फिर ञ् का लोप होकर 'भज़्अ़सु' ऐसा रहा, फिर अ को आकार वृद्धि और ज् के स्थान में 'ग्' होने से 'भाग़्अ़सु' पुनः अकार में मिल जाने से 'भाग़सु' रहा, अब उकार की इत्संज्ञा 'स्' के स्थान में 'रुँ' होकर पुनः उकार की इत्संज्ञा लोप हो जाने पश्चात् 'भागर्' ऐसा रहा, अब रेफ के स्थान में (ः) विसर्जनीय होकर **'भागः'** यह रूप सिद्ध हुआ। जिस-जिस सूत्र से जो-जो कार्य होता है उस-उस को पढ़ पढ़ा के और लिखवा कर कार्य्य कराता जाय। इस प्रकार पढ़ने पढ़ाने से बहुत शीघ्र दृढ़ बोध होता है।

एक बार इसी प्रकार **अष्टाध्यायी** पढ़ा के **धातुपाठ** अर्थसहित और दश लकारों के रूप तथा प्रक्रिया सहित सूत्रें के उत्सर्ग अर्थात् सामान्यसूत्र जैसे **'कर्मण्यण्'** कर्म उपपद लगा हो तो धातुमात्र से अण् प्रत्यय हो, जैसे 'कुम्भकारः'। पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे **'आतोऽनुपसर्गे कः'** उपसर्गभिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होवे अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओं से 'अण्' प्राप्त होता है उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को 'क' प्रत्यय ने ग्रहण कर लिया।

जैसे उत्सर्ग के विषय में अपवाद सूत्र की प्रवृत्ति होती है वैसे अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे चक्रवर्ती राजा के राज्य में माण्डलिक और भूमिवालों की प्रवृत्ति होती है वैसे माण्डलिक राजादि के राज्य में चक्रवर्ती की प्रवृत्ति नहीं होती।

इसी प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की विद्या प्रतिपादित कर दी है। धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण के पढ़ाने में सर्व सुबन्त का विषय अच्छी प्रकार पढ़ा के, पुनः दूसरी वार शंका, समाधान वार्तिक, कारिका, परिभाषा की घटनापूर्वक अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावे।

तदनन्तर **महाभाष्य** पढ़ावे। अर्थात् जो बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहने वाले नित्य पढ़ें-पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दांे का व्याकरण से, पुनः अन्य शास्त्रें को शीघ्र सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं। किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रें में करना नहीं पड़ता। और जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्यांेकर हो सकता है?

महर्षि लोगांे का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिस के ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है। और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी। जिस को बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना।

व्याकरण को पढ़ के **यास्कमुनिकृत निघण्टु** और **निरुक्त** छः वा आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें। अन्य नास्तिककृत अमरकोशादि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें।

तदनन्तर **पिंगलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ** जिस से वैदिक लौकिक छन्दों का प्रिज्ञान, नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति भी यथावत् सीखें। इस ग्रन्थ और श्लोकों

की रचना तथा प्रस्तार को चार महीने में सीख पढ़ पढ़ा सकते हैं। और वृत्तरत्नाकार आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें।
तत्पश्चात् **मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण** और **महाभारत** के उद्योगपर्वान्तर्गत **विदुरनीति** आदि अच्छे-अच्छे प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता सभ्यता प्राप्त हो वैसे को काव्यरीति से अर्थात् **पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य विशेषण** और **भावार्थ** को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें। इन को वर्ष के भीतर पढ़ लें।
तदनन्तर **पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य** और **वेदान्त** अर्थात् जहाँ तक बन सके वहाँ तक ऋषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरल व्याख्यायुक्त छः शास्त्रें को पढ़ें-पढ़ावें परन्तु वेदान्त सूत्रें के पढ़ने के पूर्व **ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य** और **बृहदारण्यक** इन **दश** उपनिषदों को पढ़ के छः शास्त्रें के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रें को दो वर्ष के भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें।
पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् **ऐतरेय, शतपथ, साम** और **गोपथ ब्राह्मणों** के सहित **चारों वेदों** के **स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध** तथा **क्रियासहित** पढ़ना योग्य है। इसमें प्रमाण-

स्थाणुरयं भारहारः किलाभू दधीत्य वदें न विजानाति याऽेथर्म्
।

योऽर्थज्ञ इत्सकल्ां भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ।।

यह निरुक्त में मन्त्र है
जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली पत्ते, पफ़ल, पफ़ूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार को उठाने वाला है। और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।

- ऋ मं० १०। सू० ७१। मं० ४।।

जो अविद्वान् हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते । अर्थात् अविद्वान् लोग इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते

किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध का जानने वाला है उस के लिये विद्या-जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान् के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है, अविद्वानों के लिये नहीं।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।।

- ऋ मं० १। सू० १६४ १। मं० ३९ ।।

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है उस ब्रह्म को जो नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है? नहीं-नहीं, किन्तु जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं। इसलिए जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिये।

इस प्रकार सब वेदों को पढ़ के आयुर्वेद अर्थात् जो **चरक, सुश्रुत** आदि ऋषि मुनि-प्रणीत वैद्यक शास्त्र है, उस को अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शारीर, देश, काल और वस्तु के गुण ज्ञानपूर्वक ४ वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें।

तदनन्तर **धनुर्वेद** अर्थात् राजसम्बन्धी काम करना है इसके दो भेद, एक निज राजपुरुषसम्बन्धी और दूसरा प्रजासम्बन्धी होता है। राजकार्य में सब सेना के अध्यक्ष शस्त्रस्त्रविद्या नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आजकल 'कवायद' कहते हैं। जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उन को यथावत् सीखें और जो जो प्रजा के पालने और वृद्धि करने का प्रकार है उन को सीख के न्यायपूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रक्खें दुष्टों को यथायोग्य दण्ड, श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीख लें।

इस राजविद्या को दो-दो वर्ष में सीख कर **गान्धर्ववेद** कि जिस को गानविद्या कहते हैं। उस में स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके **सामवेद का गान वादित्रवादनपूर्वक सीखें** और **नारदसंहिता** आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं उन को पढ़ें परन्तु भड़वे वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियों के गर्दभशब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।

अर्थवेद कि जिस को शिल्पविद्या कहते हैं उस को पदार्थ गुण-विज्ञान क्रियाकौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण, पृथिवी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है। उस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिस में **बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल** और **भूगर्भविद्या** है इस को यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें, परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के पफ़ल के विधायक ग्रन्थ हैं उन को झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें।

ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ाने वाले करें कि जिस से **तीस** व **चौंतीस वर्ष** के भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहैं। जितनी विद्या इस रीति से **तीस** वा **चौंतीस** वर्षों में हो सकती है उतनी अन्य प्रकार से शत-वर्ष में भी नहीं हो सकती। ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे। और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं और जिन का आत्मा पक्षपातसहित है, उनके बनाए हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं। पूर्वमीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गोतममुनिकृत, न्यायसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृतसूत्र पर व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्यसूत्र पर भागुरिमुनिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्ति सहित पढ़ें पढ़ावें। इत्यादि सूत्रें को कल्प अंग में भी गिनना चाहिये।

जैसे ऋग्यजुः साम और अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे **ऐतरेय, शतपथ, साम** और **गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द** और **ज्योतिष छः वेदों के अंग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपांग; आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद** और **अर्थवेद** ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये ग्रन्थ हैं। इनमें भी जो जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस-उस को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है । ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है। वेद की विशेष व्याख्या 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिये और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे।

अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है। **व्याकरण** में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमा

आदि। **कोश** में अमरकोशादि। **छन्दोग्रन्थ** में वृत्तरत्नाकरादि। **शिक्षा** में 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा' इत्यादि। **ज्यौतिष** में शीघ्रबोध, मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। **काव्य** में नायिकाभेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। **मीमांसा** में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। **वैशेषिक** में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। **योग** में हठप्रदीपिकादि। **सांख्य** में सांख्यतत्त्वकौमुद्यादि। **वेदान्त** में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। **वैद्यक** में शार्ङ्गधरादि। **स्मृतियों** में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

(प्रश्न) क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं?

(उत्तर) थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है। इस से **'विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः'** जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं।

(प्रश्न) जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते?

(उत्तर) जो-जो उनमें सत्य है सो-सो वेदादि सत्य शास्त्रें का है और मिथ्या उनके घर का है। वेदादि सत्य शस्त्रें के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है। जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहै तो मिथ्या भी उस के गले लिपट जावे। इसलिए **'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति'** असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिए जैसे विषयुक्त अन्न को।

(प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है?

(उत्तर) वेद अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस-उस का हम यथावत् करना, छोड़ना मानते हैं। जिसलिये वेद हम को मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्य्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये।

(प्रश्न) जैसा सत्यासत्य और दूसरे ग्रन्थों का परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रें में भी है। जैसा सृष्टिविषय में छः शास्त्रें का विरोध है-मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है, क्या यह विरोध नहीं है?

(उत्तर) प्रथम तो विना सांख्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रें में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इन में विरोध नहीं क्योंकि तुम को विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं। मैं तुम से पूछता हूं कि विरोध किस स्थल में होता है? क्या एक विषय में अथवा भिन्न-भिन्न विषयों में?

(प्रश्न) एक विषय में अनेकों का परस्पर विरुद्ध कथन हो तो उस को विरोध कहते हैं यहां भी सृष्टि एक ही विषय है।

(उत्तर) क्या विद्या एक है वा दो? एक है। जो एक है तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि के भिन्न-भिन्न विषय क्यों हैं? जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टिविद्या के भिन्न-भिन्न छः अवयवों का छः शास्त्रें में प्रतिपादन करने से इन में कुछ भी विरोध नहीं। जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी, विचार, संयोग वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुंभार कारण हैं। वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उस की व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान कारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उस की व्याख्या वेदान्त- शास्त्र में है। इस से कुछ भी विरोध नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्र में निदान, चिकित्सा, औषधिदान और पथ्य के प्रकरण भिन्न-भिन्न कथित हैं परन्तु सब का सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है। वैसे ही सृष्टि के छः कारण हैं। इन में से एक-एक कारण की व्याख्या एक-एक शास्त्रकार ने की है। इसलिए इनमें कुछ भी विरोध नहीं। इस की विशेष व्याख्या सृष्टिप्रकरण में कहेंगे। जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं उनको छोड़ देवें। जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीस वर्षों से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना; पूर्ण ब्रह्मचर्य न होना; राजा, माता, पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रें के प्रचार में न होना; अतिभोजन, अति जागरण करना, पढ़ने पढ़ाने परीक्षा लेने वा देने में आलस्य वा कपट करना; सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना; बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना; माता, पिता, अतिथि और आचार्य्य, विद्वान्, इन को सत्यमूर्त्ति मान कर सेवा सत्संग न करना; पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, लोभ से धनादि में प्रवृत्ति होकर विद्या में प्रीति न रखना; इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फ़ंस के ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं। आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में पफ़ंसा के उन का तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को

जानकर हमारा अपमान करेंगे इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।

(प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं हैं। जैसा यह निषेध है-

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है।

(उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है-

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्मराजन्याभ्या¦ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।।

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ वदानि) उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो।

यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्यांेकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है; स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं।

(उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्या¦) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हम ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र, और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है; अर्थात् तब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों। कहिये! अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है इतने पर भी जो कोई इस को न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा क्योंकि **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** वेदांे का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न

होता तो इनके शरीर में वाक्‌ और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सबके लिये प्रकाशित किये हैं। और जहाँ-जहाँ निषेध किया है उस का यह अभिप्राय है कि जिस को पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उस का पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है। और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है। देखो! वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण-

ब्रह्मचर्य्येण कन्या यवुानं विन्दते पतिम् ।।

-अथर्व० अ० ३। प्र० २४। कां० ११। मं० १८।।

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वे ैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रें को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे। इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।

(प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें?

(उत्तर) अवश्य; देखो श्रौतसूत्रदि में-**इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्।**

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रें को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रें का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रें को पढ़ पूर्ण विदुषी हुई थीं यह शतपथब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर-संग्राम घर में मचा रहै फिर सुख कहां? इसलिये जो स्त्री न पढ़े तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्योंकर हो सकें तथा राजकार्य्य न्यायाधीशत्वादि; गृहाश्रम का कार्य्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना; घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना विना विद्या के इत्यादि काम अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते। देखो! आर्य्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकती ? और युद्ध कर सकती। इसलिये ब्राह्मणी को सब विद्या, क्षत्रिया को सब विद्या और युद्ध तथा राजविद्याविशेष, वैश्या को व्यवहारविद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी

चाहिये। जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये। वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये। क्योंकि इनके सीखे विना सत्याऽसत्य का निर्णय; पति आदि से अनुकूल वर्त्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्य्यों को जैसा चाहिये वैसा करना कराना वैद्यकविद्या से औषधवत् अन्न पान बना और बनवाना नहीं कर सकती। जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहैं। शिल्पविद्या के जाने विना घर का बनवाना, वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना, गणितविद्या के विना सब का हिसाब समझना समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के विना ईश्वर और धर्म को न जानके अधर्म से कभी नहीं बच सके। इसलिये वे हीे धन्यवादार्ह और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें। जिस से वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सासु, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्टमित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्तें। यही कोश अक्षय है। इस को जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय। अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते हैं और दायभागी भी निज भाग लेते हैं। और विद्याकोश का चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता। इस कोश की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी हैं।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्।। मनु०।।

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके विद्वान् कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उस के माता पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावें किन्तु आचार्य्यकुल में रहैं। जब तक समावर्त्तन का समय न आवे तब तक विवाह न होने पावे।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्य्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।। मनु०।।

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है। यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी गई। इसके

आगे चौथे समुल्लास में समावर्त्तन विवाह और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जायगी।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते शिक्षाविषये
तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः।।३।।

अथ चतुर्थसमुल्लासारम्भः

अथ समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविधि वक्ष्यामः

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्।।१।। मनु०।।

जब यथावत् ब्रह्मचर्य्य आचार्यानुकूल वर्त्तकर, धर्म से चारों, तीन वा दो, अथवा एक वेद को सांगोपांग पढ़ के जिस का ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो, वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे।।१।।

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा।।२।। मनु०।।

जो स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य और शिष्य का धर्म है उससे युक्त पिता जनक वा अध्यापक से ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भाग का ग्रहण और माला का धारण करने वाला अपने पलंग पर बैठे हुए आचार्य्य का प्रथम गोदान से सत्कार करे। वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को भी कन्या का पिता गोदान से सत्कृत करे।।२।।

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।।३।। मनु०।।

गुरु की आज्ञा ले स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे।।३।।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्र च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने।।४।। मनु०।।

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो तो उस कन्या से विवाह करना उचित है।।४।। इसका यह प्रयोजन है कि-

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः।। शतपथ०।।

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्ष में नहीं। जैसे किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है । जैसे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है, वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये।

देखो मनु में-

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्।। मनु०।।

१- उचित समय से न्यून आयु वाले स्त्री पुरुष को गर्भाधान में मुनिवर धन्वन्तरि जी सुश्रुत में निषेध करते हैं-

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते।।१।।
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्।।२।।

अर्थ-सोलह वर्ष से न्यून वयवाली स्त्री में, पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रह कर उत्पन्न नहीं होता।।१।।
अथवा उत्पन्न हो तो चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो। इस कारण से अति बाल्यावस्था वाली स्त्री में गर्भ स्थापित न करे।।२।।
ऐसे-ऐसे शास्त्रोक्त नियम और सृष्टिक्रम को देखने और बुद्धि से विचारने से यही सिद्ध होता है कि १६ वर्ष से न्यून स्त्री और २५ वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष कभी गर्भाधान करने के योग्य नहीं होता। इन नियमों से विपरीत जो करते हैं वे दुःखभागी होते हैं।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।। मनु०।।

चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमार रहैं परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये। इस से सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना योग्य है।
(प्रश्न) विवाह माता पिता के आधीन होना चाहिये वा लड़का लड़की के आधीन रहै ?
(उत्तर) लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के विना न होना चाहिये। क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है माता पिता का नहीं। क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता। और-

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। मनु०।।

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में आनन्द लक्ष्मी और कीर्त्ति निवास करती है और जहाँ विरोध, कलह होता है वहाँ दुःख, दारिद्र्य और निन्दा निवास करती है। इसलिये जैसी स्वयंवर की

रीति आर्य्यावर्त्त में परम्परा से चली आती है वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहैं तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर, का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिये। जब तक इन का मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा दवे यन्तः ।।१।।

-ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४।।

आ धेनवो धनु यन्तामशिश्वीः सबदघर्ु ाःाः शशया अप्रदग्ुधाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ।।२।।

-ऋ० मं० ३। सू० ५५। मं० १६।।

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तो रुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं्ाा जरिमा तननूामप्यू नु पत्नीवषर्ृ्ाणो जगम्यःु ।।३।।

-ऋ० मं० १। सू० १७९। मं० १।।

जो पुरुष (परिवीतः) सब ओर से यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य्य सेवन से उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किया हुआ ब्रह्मचर्य्ययुक्त (युवा) पूर्ण ज्वान होके विद्याग्रहण कर गृहाश्रम में (आगात्) आता है (स उ) वही दूसरे विद्याजन्म में (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (श्रेयान्) अतिशय शोभायुक्त मंगलकारी (भवति) होता है (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त (मनसा) विज्ञान से (देवयन्तः) विद्यावृद्धि की कामनायुक्त (धीरासः) धैर्ययुक्त (कवयः) विद्वान् लोग (तम्) उसी पुरुष को (उन्नयन्ति) उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं और जो ब्रह्मचर्य्यधारण, विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये विना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं वे स्त्री पुरुष नष्ट भ्रष्ट होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते।।१।।

जो (अप्रदुग्धाः) किसी से दुही न हो उन (धेनवः) गौओं के समान (अशिश्वीः) बाल्यावस्था से रहित (सबर्दुघाः) सब प्रकार के उत्तम व्यवहारों का पूर्ण करनेहारी (शशयाः) कुमारावस्था को उल्लंघन करने हारी (नव्यानव्याः) नवीन-नवीन शिक्षा और अवस्था से पूर्ण (भवन्तीः) वर्त्तमान (युवतयः) पूर्ण

युवावस्थास्थ स्त्रियां (देवानाम्) ब्रह्मचर्य, सुनियमों से पूर्ण विद्वानों के (एकम्) अद्वितीय (महत्) बड़े (असुरत्वम्) प्रज्ञा शास्त्रशिक्षायुक्त प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई तरुण पतियों को प्राप्त होके (आधुनयन्ताम्) गर्भ धारण करें कभी भूल के भी बाल्यावस्था में पुरुष का मन से भी ध्यान न करें क्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोक के सुख का साधन है। बाल्यावस्था में विवाह से जितना पुरुष का नाश उस से अधिक स्त्री का नाश होता है।।२।।
जैसे (नु) शीघ्र (शश्रमाणाः) अत्यन्त श्रम करनेहारे (वृषणः) वीर्य सींचने में समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष (पत्नीः) युवावस्थास्थ हृदयों को प्रिय स्त्रियों को (जगम्युः) प्राप्त होकर पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक वर्ष आयु को आनन्द से भोगते और पुत्र पौत्रदि से संयुक्त रहते रहैं वैसे स्त्री पुरुष सदा वर्तें, जैसे (पूर्वीः) पूर्व वर्त्तमान (शरदः) शरद् ऋतुओं और (जरयन्तीः) वृद्धावस्था को प्राप्त कराने वाली (उषसः) प्रातःकाल की वेलाओं को (दोषाः) रात्री और (वस्तोः) दिन (तनूनाम्) शरीरों की (श्रियम्) शोभा को (जरिमा) अतिशय वृद्धपन बल और शोभा को (मिनाति) दूर कर देता है वैसे (अहम्) मैं स्त्री वा पुरुष (उ) अच्छे प्रकार (अपि) निश्चय करके ब्रह्मचर्य्य से विद्या शिक्षा शरीर और आत्मा के बल और युवावस्था को प्राप्त हो ही के विवाह करूँ इस से विरुद्ध करना वेदविरुद्ध होने से सुखदायक विवाह कभी नहीं होता।।३।।
जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनि राजा महाराजा आर्य्य लोग ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जब से यह ब्रह्मचर्य्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा, तब से क्रमशः आर्य्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है। इस से इस दुष्ट काम को छोड़ के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये।
(प्रश्न) क्या जिस के माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हों उन का सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है?
(उत्तर) हां बहुत से हो गये, होते हैं और होंगे भी। जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव

वाला है वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।

(प्रश्न) भला जो रज वीर्य से शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है।

(उत्तर) रज वीर्य्य के योग से ब्राह्मण शरीर नहीं होता किन्तु-

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं त्रिफ़यते तनुः।। मनु०।।

इस का अर्थ पूर्व कर आये हैं अब यहां भी संक्षेप से करते हैं। (स्वाध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने नानाविध होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारणसहित पढ़ने पढ़ाने (इज्यया) पौर्णमासी, इष्टि आदि के करने, पूर्वोक्त विधिपूर्वक (सुतैः) धर्म से सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ, (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादि- यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्कर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़ के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्त्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है। क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते? मानते हैं। फिर क्यों रज वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो? मैं अकेला नहीं मानता किन्तु बहुत से लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं।

(प्रश्न) क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे?

(उत्तर) नहीं, परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मान के खण्डन भी करते हैं।

(प्रश्न) हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इस में क्या प्रमाण?

(उत्तर) यही प्रमाण है कि जो तुम पांच सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आजपर्यन्त की परम्परा मानते हैं। देखो! जिस का पिता श्रेष्ठ उस का पुत्र दुष्ट और जिस का पुत्र श्रेष्ठ उस का पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते हैं इसलिये तुम लोग भ्रम में पड़े हो। देखो! मनु महाराज ने क्या कहा है-

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते।। मनु०।।

जिस मार्ग से इस के पिता, पितामह चले हों उस मार्ग में सन्तान भी चलें परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हीं के मार्ग में चलें और जो पिता, पितामह दुष्ट हों तो उन के मार्ग में कभी न चलें। क्योंकि उत्तम धर्मात्मा पुरुषों

के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता। इस को तुम मानते हो वा नहीं? हां हां मानते हैं। और देखो जो परमेश्वर की प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उस के विरुद्ध है वह सनातन कभी नहीं हो सकती। ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिये वा नहीं? अवश्य चाहिये।

जो ऐसा न माने उस से कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो उस का पुत्र धनाढ्य होवे तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को पफ़ेंक देवे? क्या जिस का पिता अन्धा हो उस का पुत्र भी अपनी आंखों को पफ़ोड़ लेवे? जिस का पिता कुकर्मी हो क्या उस का पुत्र भी कुकर्म को हीे करे? नहीं-नहीं किन्तु जो-जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों उन का सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सब का अत्यावश्यक है। जो कोई रज वीर्य्य के योग से वर्णाश्रम-व्यवस्था माने और गुण कर्मों के योग से न माने तो उस से पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो उस को भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहां यही कहोगे कि उस ने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इस से यह भी सिद्ध होता है जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण, कर्म, स्वभाव वाला होवे तो उस को भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।

(प्रश्न)

यह यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का ११वां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है। इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदि न मुख होते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते हैं।

(उत्तर) इस मन्त्र का अर्थ जो तुम ने किया वह ठीक नहीं क्योंकि यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अंग नहीं हो सकते, जो मुखादि अंग वाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान् जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्त्ता जीवों के पुण्य पापों की व्यवस्था करने हारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता।

इसलिये इस का यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) **'बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्'** शतपथब्राह्मण। बल वीर्य्य का नाम बाहु है वह जिस में अधिक

हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटि के अधो और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम है जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीच अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि में भी इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ किया है। जैसे-

'यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त।' इत्यादि।

जिस से ये मुख्य हैं इस से मुख से उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है। अर्थात् जैसा मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वर के

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वश्ौयः पद्भ्या¦शूद्रो अजायत।।

निराकार होने से मुखादि अंग ही नहीं हैं तो मुख आदि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि वन्ध्या स्त्री आदि के पुत्र का विवाह होना! और जो मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोल मोल है वैसे हीे उन के शरीर का भी गोलमोल मुखाकृति के समान होना चाहिये। क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकार वाले होने चाहिये। ऐसा नहीं होता और जो कोई तुम से प्रश्न करेगा कि जो जो मुखादि से उत्पन्न हुए थे उन की ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं; क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हम ने अर्थ किया है वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है। जैसा-

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।। मनु०।।

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय, वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उस के गुण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय। वैसे क्षत्रिय, वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। अर्थात् चारों

वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष वा स्त्री हो वह-वह उसी वर्ण में गिनी जावे।

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।१।।
अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।२।।

ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं। धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिस के योग्य होवे।।१।। वैसे अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे।।२।।

जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही े स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं। अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे। और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं। अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इस से किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये। तभी अपने-अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी। इन चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म और गुण ये हैं-

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।१।।
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्।।२।। भ० गी०।।

ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना, लेना ये छः कर्म हैं परन्तु **'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः'** मनु० अर्थात् प्रतिग्रह लेना नीच कर्म है।।१।। (शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करनी और उस को अधर्म्म में कभी प्रवृत्त न होने देना; (दमः) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोक कर धर्म्म में चलाना, (तपः) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना; (शौच)-

अद्भिर्गात्रणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।। मनु०।।

जल से बाहर के अंग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है। भीतर के राग, द्वेषादि दोष और बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्यासत्य के विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता है। (क्षान्ति) अर्थात् निन्दा स्तुति, सुख दुःख, शीतोष्ण, क्षुधा तृषा, हानि लाभ, मानापमान आदि हर्ष शोक, छोड़ के धर्म्म में दृढ़ निश्चय रहना। (आर्जव) कोमलता, निरभिमान, सरलता, सरलस्वभाव रखना, कुटिलतादि दोष छोड़ देना। (ज्ञानम्) सब वेदादि शास्त्रें को सांगोपांग पढ़ने पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक सत्य का निर्णय जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़ को जड़ चेतन को चेतन जानना और मानना। (विज्ञान) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उन से यथायोग्य उपयोग लेना। (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व परजन्म, धर्म, विद्या, सत्संग, माता, पिता, आचार्य्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना। ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहिए।।२।। क्षत्रिय-

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।१।। मनु०।।
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।२।। भ० गी०।।

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना सब प्रकार से सब का पालन (दान) विद्या, धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रें की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रदि यज्ञ करना वा कराना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रें का पढ़ना तथा पढ़ाना और विषयों में न पफ़ंस कर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना।।१।।
(शौर्य्य) सैकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेले को भय न होना।
(तेजः) सदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित प्रगल्भ दृढ़ रहना। (धृति) धैर्यवान् होना
(दाक्ष्य) राजा और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रें में अति चतुर होना। (युद्धे) युद्ध में भी दृढ़ निःशंक रहके उस से कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिस से निश्चित विजय होवे, आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना। (दान) दानशीलता रखना। (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सब के साथ यथायोग्य वर्त्तना, विचार

के देवे, प्रतिज्ञा पूरा करना, उस को कभी भंग होने न देना। ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के गुण हैं।।२।। वैश्य-

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।। मनु०।।

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन-वर्द्धन करना (दान) विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रदि यज्ञों का करना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रें का पढ़ना (वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना (कुसीद) एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह, वा बीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना (कृषि) खेती करना। ये वैश्य के गुण कर्म हैं। शूं-

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।। मनु०।।

शूद्र को योग्य है निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन-यापन करना यही एक शूद्र का कर्म गुण है।।१।।

विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं होता। पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह विद्या रहित मूर्ख होने से विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्य जनों का काम है।

विवाह के लक्षण

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।। मनु०।।

विवाह आठ प्रकार का होता है। एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पांचवां आसुर, छठा गान्धर्व, सातवां राक्षस, आठवां पैशाच। इन विवाहों की यह व्यवस्था है कि-वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान् धार्मिक और सुशील हों उन का परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना **‘ब्राह्म’** कहाता है। विस्तृतयज्ञ करने में ऋत्विक्फ़ कर्म करते हुए जामाता को अलंकारयुक्त

कन्या का देना **'दैव'**। वर से कुछ लेके विवाह होना **'आर्ष'**। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना **'प्राजापत्य'** । वर और कन्या को कुछ देके विवाह **'आसुर'**। अनियम, असमय किसी कारण से वर-कन्या का इच्छापूर्वक परस्पर संयोग होना **'गान्धर्व'**। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन, भफ़पट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना **'राक्षस'।** शयन वा मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना **'पैशाच'**। इन सब विवाहों में ब्राह्मविवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है। इसलिये यही निश्चय रखना चाहिये कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है।

परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो तब जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रर्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें। जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में हो जाय तब वेदी और मण्डप रचके अनेक सुगन्ध्यादि द्रव्य और घृतादि का होम तथा अनेक विद्वान् पुरुष और स्त्रियों का यथाथोग्य सत्कार करें। पश्चात् सब के सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह की विधि को पूरा करें।

जहां तक बने वहां तक ब्रह्मचर्य के वीर्य्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य्य वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। जब गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय तब से एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये। क्योंकि ऐसा न होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है। अन्यथा वीर्य्य व्यर्थ जाता दोनों की आयु घट जाती और अनेक प्रकार के रोग होते हैं परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार दोनों को अवश्य रखना चाहिये। पुरुष वीर्य्य की स्थिति और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन छादन इस प्रकार का करे कि जिस से पुरुष का वीर्य स्वप्न में भी नष्ट न हो और गर्भ में बालक का शरीर अत्युत्तम रूप लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशवें महीने में जन्म होवे। विशेष उस की रक्षा चौथे महीने से और अतिविशेष आठवें महीने से आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रूक्ष, मादकद्रव्य, बुद्धि और बलनाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन

न करे किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल, गेहूं, मूँग, उर्द आदि अन्न पान और देशकाल का भी सेवन युक्तिपूर्वक करे। गर्भ में दो संस्कार एक चौथे महीने पुंसवन और दूसरा आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन विधि के अनुकूल करे। जब सन्तान का जन्म हो तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्यशुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रक्खें। उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल जो कि किञ्चित् उष्ण रहा हो उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे। तत्पश्चात् नाड़ीछेदन-बालक की नाभि के जड़ में एक कोमल सूत से बांध चार अंगुल छोड़ के ऊपर से काट डाले। उस को ऐसा बांधे कि जिस से शरीर से रुधिर का एक बिन्दु भी न जाने पावे। पश्चात् उस स्थान को शुद्ध करके उस के द्वार के भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादि का होम करे। तत्पश्चात् सन्तान के कान में पिता **'वेदोऽसीति'** अर्थात् 'तेरा नाम वेद है' सुनाकर घी और सहत को लेके सोने की शलाका से जीभ पर **'ओ३म्'** अक्षर लिख कर मधु और घृत को उसी शलाका से चटवावे।

पश्चात् उसकी माता को दे देवे। जो दूध पीना चाहै तो उस की माता पिलावे जो उस की माता के दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा कर के उसका दूध पिलावे। पश्चात् दूसरे शुद्ध कोठरी वा जहां का वायु शुद्ध हो उसमें सुगन्धित घी का होम प्रातः और सायंकाल किया करे और उसी में प्रसूता स्त्री तथा बालक को रक्खे। उसी प्रकार खान-पान का व्यवहार भी यथायोग्य रक्खे।
पश्चात् नामकरणादि संस्कार 'संस्कारविधि' की रीति से यथाकाल करता जाय।
ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्रश्रमे वसन्।। मनु०।।
जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।
सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रं भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।१।।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्त्तते।।२।।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।।३।। मनु०।।
जिस कुल में भार्य्या से भर्त्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहां कलह होता है वहां

दौर्भाग्य और दारिद्र्य स्थिर होता है।।१।। जो स्त्री पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता।।२।। जिस स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल प्रसन्न होता उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है।।३।।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।।१।।
यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः।।२।।
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा।।३।।
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च।।४।। मनु०।।

पिता, भाई, पति और देवर इन को सत्कारपूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रक्खें, जिन को बहुत कल्याण की इच्छा हो वे ऐसे करें।।१।। जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उस में विद्यायुक्त पुरुष होके देवसंज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल हो जाती हैं।।२।। जिस घर वा कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्री लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है।।३।। इसलिए ऐश्वर्य की कामना करनेहारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समयों में भूषण वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें।।४।। यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि 'पूजा' शब्द का अर्थ सत्कार है और दिन रात में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब-तब प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते' एक दूसरे से करें।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।। मनु०।।

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार, घर की शुद्धि और व्यय में अत्यन्त उदार न रहैं अर्थात् सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावें जो औषधरूप होकर शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवे। जो-जो व्यय हो उस का हिसाब यथावत् रखके पति

आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः।। मनु०।।

उत्तम स्त्री, नाना प्रकार के रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रेष्ठभाषण और नाना प्रकार की शिल्पविद्या अर्थात् कारीगरी सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करे।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।१।।
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्सह।।२।। मनु०।।

सदा प्रिय सत्य दूसरे का हितकारक बोले अप्रिय सत्य अर्थात् काणे को काणा न बोले। अनृत अर्थात् झूठ दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ न बोले।।१।। सदा भद्र अर्थात् सब के हितकारी वचन बोला करे। शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे।।२।। जो-जो दूसरे का हितकर हो और बुरा भी माने तथापि कहे विना न रहै।

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। -उद्योगपर्व-विदुरनीति०।।

हे धृतराष्ट्र ! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करनेवाला वचन हो उस का कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है। क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना। और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता वा कहने वाला नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता। कभी किसी की निन्दा न करे। जैसे-**'गुणेषु दोषारोपणमसूया'** अर्थात् **'दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया,' 'गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः'**

जो गुणों में दोष, दोषों में गुण लगाना वह निन्दा और गुणों में गुण, दोषों में दोषों का कथन करना स्तुति कहाती है। अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम निन्दा और सत्यभाषण का नाम स्तुति है।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यं शास्त्रण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्।।१।।
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते।।२।। मनु०।।

जो शीघ्र बुद्धि, धन और हित की वृद्धि करनेहारे शास्त्र और वेद हैं उन को नित्य सुनें और सुनावें। ब्रह्मचर्य्याश्रम में पढ़े हों उन को स्त्री पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें।।१।। क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य शास्त्रें को यथावत् जानता है वैसे-वैसे उस विद्या का विज्ञान बढ़ता जाता और उसी में रुचि बढ़ती रहती है।।२।।

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्।।१।।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्प्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।२।।
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पित ृन् श्राद्धैश्च न ृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा।।३।। मनु०।।

दो यज्ञ ब्रह्मचर्य में लिख आये वे अर्थात् एक-वेदादि शास्त्रें को पढ़ना पढ़ाना, सन्ध्योपासन, योगाभ्यास। **दूसरा देवयज्ञ**-विद्वानों का संग, सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, दातृत्व, विद्या की उन्नति करना है, ये दोनों यज्ञ सायं प्रातः करने होते हैं।

सायसांयं गृहपि तर्नाे अग्निः पा्र तः पा्र तः सामै नसस्य दाता ।।१।।

पा्र तः पा्र त गृर्हपतिर्नाे अग्निः सायसांयं सामै नसस्य दाता ।।२।।

-अन कां० १९। अनु० ७। मं० ३। ४।।

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत।
उद्यन्तमस्तं यान्तम् आदित्यम् अभिध्यायन्।।३।। ब्राह्मणे।।
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।।४।। मनु०।।

जो सन्ध्या-सन्ध्या काल में होम होता है वह हुतद्रव्य प्रातःकाल तक वायुशुद्धि द्वारा सुखकारी होता है।।१।। जो अग्नि में प्रातः-प्रातःकाल में होम किया जाता है वह-वह हुतद्रव्य सायंकाल पर्यन्त वायु के शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और आरोग्यकारक होता है।।२।। इसलिये दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात्

सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये।।३।।
और जो ये दोनों काम सायं और प्रातःकाल में न करे उस को सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें अर्थात् उसे शूद्रवत् समझें।।४।।

तीसरा **'पितृयज्ञ'** अर्थात् जिस में जो देव विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ाने हारे, पितर माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है **'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्'** जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उस को श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और **'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्'** जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उस का नाम तर्पण है। परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकों के लिये नहीं।
ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।
ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्।। इति देवतर्पणम्।।
'विद्वांसो हि देवाः।' यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं। जो सांगोपांग चार वेदों के जानने वाले हों उन का नाम ब्रह्मा और जो उन से न्यून पढ़े हों उन का भी नाम देव अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश विदुषी स्त्री, उनकी ब्रह्माणी और देवी, उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उन के गण अर्थात् सेवक हों उन की सेवा करना है उस का नाम 'श्राद्ध' और 'तर्पण' है।

अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।
मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्।। इति ऋषितर्पणम्।।
जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओं को विद्यादान देवें उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उन के समान उनके सेवक हों, उन का सेवन सत्कार करना ऋषितर्पण है।

अथ पितृतर्पणम्

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः

पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः
पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं
तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धींस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रंस्तर्पयामि।। इति पितृतर्पणम्।।
'ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति से सोमसदः' जो
परमात्मा और पदार्थ विद्या में निपुण हों वे सोमसद। **'यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः'** जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जानने वाले हों वे अग्निष्वात्त। **'ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः'** जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद। **'ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः'** जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधों को देके रोगनाशक हों वे सोमपा। **'ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः'** जो मादक और हिसाकारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करनेहारे हों वे हविर्भुज। **'य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः'** जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीनेहारे हों वे आज्यपा। **'शोभनः कालो विद्यते येषान्ते**
सुकालिनः' जिन का अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन्। **'ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः'** जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे यम। **'यः पाति स पिता'** जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वह पिता। **'पितुः पिता पितामहः, पितामहस्य पिता प्रपितामहः'** जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामह का पिता हो वह प्रपितामह। **'या मानयति सा माता'** जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान्य करे वह माता। **'या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही'** जो पिता की माता हो वह पितामही और पितामह की माता हो वह प्रपितामही। अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सब को अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात्

जिस-जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहै उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्प्पण कहाता है।
चौथा **वैश्वदेव**-अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा लवणान्न और क्षार को छोड़ के घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रें से आहुति और भाग करे।
वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्।। मनु०।।
जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो, उस का दिव्य गुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रें से विधिपूर्वक होम नित्य करे।

होम के मन्त्र

ओम् अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। Σमुँ्न्यवन् स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा। प्रजापतये
स्वाहा। सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। स्विष्टकृते स्वाहा।
इन प्रत्येक मन्त्रें से एक-एक बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े। पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रें से भाग रक्खे-
ओं सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः।।
इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उस को जिमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे। इनके अनन्तर लवणान्न अर्थात् दाल, भात, शाक, रोटी आदि लेकर छः भाग भूमि में धरे। इसमें प्रमाण-
शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्िनर्वपेद् भुवि।। मनु०।।
इस प्रकार **'श्वभ्यो नमः। पतितेभ्यो नमः। श्वपग्भ्यो नमः। पापरोगिभ्यो नमः। वायसेभ्यो नमः। कृमिभ्यो नमः।।'** धर कर पश्चात् किसी दुःखी बुभुक्षित प्राणी अथवा कुत्ते, कौवे आदि को दे देवे। यहां नमः शब्द का अर्थ अन्न अर्थात्

कुत्ते, पापी, चाण्डाल, पापरोगी कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदि को अन्न देना यह मनुस्मृति आदि की विधि है।

हवन करने का प्रयोजन यह है कि-पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उस का प्रत्युपकार कर देना। अब **पांचवीं अतिथिसेवा**-अतिथि उस को कहते हैं कि जिस की कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सब के उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला, पूर्ण विद्वान्, परमयोगी, संन्यासी गृहस्थ के यहां आवे तो उस को प्रथम पाद्य, अर्घ और आचमनीय तीन प्रकार का जल देकर, पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बिठाल कर, खान, पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा शुश्रूषा कर के, उन को प्रसन्न करे। पश्चात् सत्संग कर उन से ज्ञान विज्ञान आदि जिन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे-ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और चाल चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रक्खे। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं। परन्तु-

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्।। मनु०।।

(पाषण्डी) अर्थात् वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण करनेहारे (विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्त्ता मिथ्याभाषणादि युक्त, वैडालवृत्तिक जैसे विड़ाला छिप और स्थिर होकर ताकता-ताकता झफ़पट से मूषे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता है वैसे जनों का नाम वैडालवृत्ति, (शठ) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जानें नहीं, औरों का कहा मानें नहीं, (हैतुक) कुतर्की व्यर्थ बकने वाले जैसे कि वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित हैं' इत्यादि गपोड़ा हांकने वाले (वकवृत्ति) जैसे वक एक पैर उठा ध्यानावस्थित के समान होकर झट मच्छी के प्राण हरके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वैसे आजकल के वैरागी और खाखी आदि हठी दुराग्रही वेदविरोवमी हैं, ऐसों का सत्कार वाणीमात्र से भी न करना चाहिये। क्योंकि इनका सत्कार करने से ये वृद्धि को पाकर संसार को अधर्मयुक्त करते हैं। आप तो अवनति के काम करते ही हैं परन्तु साथ में सेवक को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबा देते हैं। इन **पांच महायज्ञों का पफ़ल** यह है कि ब्रह्मयज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणों की वृद्धि। **अग्निहोत्र** से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का श्वास, स्पर्श, खान पान से आरोग्य,

बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना।** इसीलिये इस को देवयज्ञ कहते हैं।

पितृयज्ञ से जब माता पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा तब उस का ज्ञान बढ़ेगा। उस से सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता पिता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की की है उसका बदला देना उचित ही है।

बलिवैश्वदेव का भी फ़ल जो पूर्व कह आये, वही है। जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती। उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। विना अतिथियों के सन्देहनिवृत्ति नहीं होती। सन्देहनिवृत्ति के विना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के विना सुख कहां? -

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशाँश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।। मनु०।।

रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे। आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे। कभी अधर्म का आचरण न करे। क्योंकि-

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः पफ़लति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति।। मनु०।।

किया हुआ अधर्म निष्पफ़ल कभी नहीं होता परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय पफ़ल भी नहीं होता। इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म से नहीं डरते। तथापि निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है। इस क्रम से-

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति।। मनु०।।

जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसे तालाब के बन्ध तोड़ जल चारों ओर पफ़ैल जाता है वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खण्डन और विश्वासघातादि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है। पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है,

पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे जड़ काटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है वैसे अधर्मी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत् सदा।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः।। मनु०।।

वेदोक्त सत्य धर्म अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्य के ग्रहण और असत्य के परित्याग न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि, आर्य अर्थात् उत्तम पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव और पवित्रता ही में सदा रमण करे। वाणी, बाहू, उदर आदि अंगों का संयम अर्थात् धर्म में चलाता हुआ धर्म से शिष्यों को शिक्षा किया करे।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्य्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः।।१।।
मातापितृभ्यां यामिभिर्भ्रात्र पुत्रेण भार्यया।
दुहित्र दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्।।२।। मनु०।।

(ऋत्विक्) यज्ञ का करनेहारा, (पुरोहित) सदा उत्तम चाल चलन की शिक्षा कारक, (आचार्य) विद्या पढ़ानेहारा, (मातुल) मामा, (अतिथि) अर्थात् जिस की कोई आने जाने की निश्चित तिथि न हो (संश्रित) अपने आश्रित (बाल) बालक (वृद्ध) बुड्ढे (आतुर) पीड़ित (वैद्य) आयुर्वेद का ज्ञाता, (ज्ञाति) स्वगोत्र वा स्ववर्णस्थ, (सम्बन्धी) श्वशुर आदि, (बान्धव) मित्र।।१।। (माता) माता, (पिता) पिता, (यामि) बहिन, (भ्राता) भाई, (पुत्र) पुत्र, (भार्या) स्त्री, (दुहिता) पुत्री और सेवक लोगों से विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई बखेड़ा कभी न करे।।२।।

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।
अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तैनैव मज्जति।।२।। मनु०।।

एक (अतपाः) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि तपरहित, दूसरा (अनधीयानः) विना पढ़ा हुआ, तीसरा (प्रतिग्रहरुचिः) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरों से दान लेनेवाला, ये तीनों पत्थर की नौका से समुद्र में तरने के समान अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दुःखसागर में डूबते हैं । वे तो डूबते ही हैं परन्तु दाताओं को साथ डुबा लेते हैं।

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रदातुरेव च।। मनु०।।

जो धर्म से प्राप्त हुए धन का उक्त तीनों को देना है वह दानदाता का नाश इसी जन्म और लेनेवाले का नाश परजन्म में करता है। जो वे ऐसे हों तो क्या हो-

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ।। मनु०।।

जैसे पत्थर की नौका में बैठ के जल में तरने वाला डूब जाता है वैसे अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं।

पाखण्डियों के लक्षण

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः।।१।।
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठो मिथ्याविनीतश्च वकव्रतचरो द्विजः।।२।। मनु०।।

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे (सदा लुब्वमः) सर्वदा लोभ से युक्त (छाद्मिकः) कपटी (लोकदम्भकः) संसारी मनुष्यों के सामने अपनी बड़ाई के गपोड़े मारा करे (हिंस्रः) प्राणियों का घातक, अन्य से वैरबुद्धि रखनेवाला (सर्वाभिसन्धकः) सब अच्छे और बुरों से भी मेल रक्खे उस को वैडालव्रतिक अर्थात् विडाल के समान धूर्त्त और नीच समझो।।१।। (अधोदृष्टिः) कीर्ति के लिये नीचे दृष्टि रक्खे (नैष्कृतिकः) ईर्ष्यक किसी ने उस का पैसा भर अपराध किया हो तो उसका बदला लेने को प्राण तक तत्पर रहै (स्वार्थसाधनतत्परः) चाहै कपट अधर्म विश्वासघात क्यों न हो; अपना प्रयोजन साधने में चतुर (शठः) चाहै अपनी बातें झूठी क्यों न हों परन्तु हठ कभी न छोड़े (मिथ्याविनीतः) भफ़ूठ मूँठ ऊपर से शील सन्तोष और साधुता दिखलावे उस को (वकव्रत) बगुले के समान नीच समझो। ऐसे-ऐसे लक्षणों वाले पाखण्डी होते हैं, उन का विश्वास व सेवा कभी न करें।।२।।

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वलोकान्यपीडयन्।।१।।
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः।।२।।
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एको नु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्।।३।।
एकः पापानि कुरुते पफ़लं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते।।४।।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।। मनु०।।

स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक वल्मीक अर्थात् बांबी को बनाती है वैसे सब भूतों को पीड़ा न देकर परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ

वमीरे-वमीरे धर्म का सञ्चय करे।।१।। क्योंकि परलोक में न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है।।२।। देखिये अकेला ही जीव जन्म और मरण को प्राप्त होता, एक ही धर्म का पफ़ल सुख और अधर्म का जो दुःख रूप पफ़ल उस को भोगता है।।३।। यह भी समझ लो कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है और महाजन अर्थात् कुटुम्ब उस को भोक्ता है। भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते किन्तु अधर्म का कर्त्ता ही दोष का भागी होता है।।४।। जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है उस को मट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़ कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं। कोई उसके साथ जानेवाला नहीं होता किन्तु एक धर्म ही उस का संगी होता है।।५।।

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः।
धर्म्मेण ही सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्।।१।।
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम्।
परलोकं नयत्याशु भास्वतं खशरीरिणम्।।२।। मनु०।।

उस हेतु से परलोक अर्थात् परजन्म में सुख और इस जन्म के सहायतार्थ नित्य धर्म का सञ्चय धीरे-धीरे करता जाय क्योंकि धर्म ही के सहाय से बड़े-बड़े दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है।।१।। किन्तु जो पुरुष धर्म ही को प्रधान समझता है जिस का धर्म के अनुष्ठान से कर्त्तव्य पाप दूर हो गया उस को प्रकाशस्वरूप और आकाश जिस का शरीरवत् है उस परलोक अर्थात् परमदर्शनीय परमात्मा को धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है।।२।। इसलिये-

दृढकारी मृदुर्दान्तः त्रक्रूराचारैरसंवसन्।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथा व्रतः।।१।।
वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तां तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः।।२।।
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्।।३।। मनु०।।

सदा दृढ़कारी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंसक, क्रूर, दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक्फ़ रहनेहारा धर्मात्मा मन को जीत और विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे।।१।। परन्तु यह भी ध्यान में रक्खें कि जिस वाणी में सब अर्थ अर्थात् व्यवहार निश्चित होते हैं वह वाणी ही उन का मूल और वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं उस वाणी को जो चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है

वह सब चोरी आदि पापों का करने वाला है।।२।। इसलिये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्म को छोड़ जो धर्माचार अर्थात् ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु और धर्माचार से उत्तम प्रजा तथा अक्षय धन को प्राप्त होता है तथा जो धर्माचार में वर्त्तकर दुष्ट लक्षणों का नाश करता है; उसके आचरण को सदा किया करे।।३।। क्योंकि-

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।। मनु०।।

जो दुष्टाचारी पुरुष है वह संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त दुःखभागी और निरन्तर व्याधियुक्त होकर अल्पायु का भी भोगनेहारा होता है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करे-

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः।।१।।
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।२।। मनु०।।

जो-जो पराधीन कर्म हो उस-उस का प्रयत्न से त्याग और जो जो स्वाधीन कर्म हो उस-उस का प्रयत्न के साथ सेवन करे।।१।।

क्योंकि जो-जो पराधीनता है वह-वह सब दुःख और जो-जो स्वाधीनता है वह-वह सब सुख यही संक्षेप से सुख और दुःख के लक्षण जानना चाहिये।।२।।

परन्तु जो एक दूसरे के आधीन काम है वह-वह आवमीनता से ही करना चाहिये जैसा कि स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के आधीन व्यवहार। अर्थात् स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण अनुकूल रहना व्यभिचार वा विरोध कभी न करना। पुरुष की आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री और बाहर के काम पुरुष के आधीन रहना, दुष्ट व्यसन में पफ़ँसने से एक दूसरे को रोकना अर्थात् यही निश्चय जानना।

जब विवाह होवे तब स्त्री के हाथ पुरुष और पुरुष के हाथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुष के साथ हाव, भाव, नखशिखाग्रपर्यन्त जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक दूसरे के आधीन हो जाता है।

स्त्री वा पुरुष प्रसन्नता के विना कोई भी व्यवहार न करें। इन में बड़े अप्रियकारक व्यभिचार, वेश्या, परपुरुषगमनादि काम हैं। इन को छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहैं।

जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों तो पुरुष लड़कों को पढ़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियों को पढ़ावे। नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उन को विद्वान् करें। स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।

जब तक गुरुकुल में रहैं तब तक माता पिता के समान अध्यापकों को समझें और अध्यापक अपने सन्तानों के समान शिष्यों को समझें। पढ़ानेहारे अध्यापक और अध्यापिका कैसे होने चाहिये-

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।१।।
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डितलक्षणम्।।२।।
क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति, विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे, तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य।।३।।
नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।४।।
प्रवृत्तवाक्‌ चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते।।५।।
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः।।६।।

-ये सब महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर के श्लोक हैं।

अर्थ-जिस को आत्मज्ञान सम्यक्‌ आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहै; सुख दुःख, हानि लाभ, मानापमान, निन्दा स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे; धर्म ही में नित्य निश्चित रहै; जिस के मन को उत्तम-उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पण्डित कहाता है।।१।। सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन; अधर्मयुक्त कामों का त्याग; ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करनेहारा; ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो; वही पण्डित का कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म है।।२।।

जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके; बहुत कालपर्य्यन्त शास्त्रें को पढ़े सुने और विचारे; जो कुछ जाने उस को परोपकार में प्रयुक्त करे; अपने स्वार्थ के लिये कोई काम न करे; विना पूछे वा विना योग्य समय जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे। वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित को होना चाहिये।।३।।

जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करे; नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे; आपत्काल में मोह को न प्राप्त अर्थात् व्याकुल न हो वही बुद्धिमान् पण्डित है।।४।।
जिस की वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तरों के करने में अतिनिपुण; विचित्र शास्त्रें के प्रकरणों का वक्ता; यथायोग्य तर्क और स्मृतिमान्; ग्रन्थों के यथार्थ अर्थ का शीघ्र वक्ता हो वही पण्डित कहाता है।।५।।
जिस की प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थ के अनुकूल और जिस का श्रवण बुद्धि के अनुसार हो जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों की मर्यादा का छेदन न करे वही पण्डित संज्ञा को प्राप्त होवे।।६।।
जहां ऐसे-ऐसे स्त्री पुरुष पढ़ाने वाले होते हैं वहां विद्या धर्म और उत्तमाचार की वृद्धि होकर प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है। पढ़ाने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षण-

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः।।१।।
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः।।२।।

-ये श्लोक भी महाभारत उद्योग पर्व विदुरप्रजागर के हैं।

अर्थ-जिस ने कोई शास्त्र न पढ़ा न सुना अतीव घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े-बड़े मनोरथ करनेहारा, विना कर्म से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करने वाला हो, उसी को बुद्धिमान् लोग मूढ़ कहते हैं।।१।।
जो विना बुलाये सभा वा किसी के घर में प्रविष्ट हो उच्च आसन पर बैठना चाहै; विना पूछे सभा में बहुत सा बके; विश्वास के अयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे वही मूढ़ और सब मनुष्यों में नीच मनुष्य कहाता है।।२ ।।
जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और पफूट बढ़ के दुःख ही बढ़ता जाता है। अब विद्यार्थियों के लक्षण-

आलस्यं मदमोहौ च चापल्यं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।।१।।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्।।२।।

ये भी विदुरप्रजागर के श्लोक हैं।

(आलस्य) शरीर और बुद्धि में जड़ता, नशा, मोह=किसी वस्तु में पफ़ंसावट, चपलता और इधर-उधर की व्यर्थ कथा करना सुनना, पढ़ते पढ़ाते रुक जाना, अभिमानी, अत्यागी होना ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं।।१।। जो ऐसे होते हैं उन को विद्या कभी नहीं आती। सुख भोगने की इच्छा करने वाले को विद्या कहां? और विद्या पढ़ने वाले को सुख कहां? क्योंकि विषयसुखार्थी विद्या को और विद्यार्थी विषयसुख को छोड़ दे।।२।।
ऐसे किये विना विद्या कभी नहीं हो सकती। और ऐसे को विद्या होती है-
सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्।।१।।
अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्।।२।।
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।।३।।
ये कपोलकल्पित पाराशरी के श्लोक हैं।
जो दुष्ट कर्मकारी द्विज को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ कर्मकारी शूद्र को नीच मानैं तो इस से परे पक्षपात, अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक क्या होगा? क्या दूध देने वाली वा न देने वाली गाय गोपालों को पालनीय होती है, वैसे कुम्हार आदि को गधही पालनीय नहीं होती? और यह दृष्टान्त भी विषम है, क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्य जाति गाय और गधही भिन्न जाति हैं। कथञ्चित् पशु जाति से दृष्टान्त का एकदेश दार्ष्टान्त में मिल भी जावे तो भी इसका आशय अयुक्त होने से ये श्लोक विद्वानों के माननीय कभी नहीं हो सकते।।१।।
जब अश्वालम्भ अर्थात् घोड़े को मार के अथवा गाय को मार के होम करना ही वेदविहित नहीं है तो उसका कलियुग में निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं? जो कलियुग में इस नीच कर्म का निषेध माना जाय तो त्रेता आदि में विधि आ जाय तो इस में ऐसे दुष्ट काम का श्रेष्ठ युग में होना सर्वथा असम्भव है। और संन्यास की वेदादि शास्त्रें में विधि है उस का निषेध करना निर्मूल है। जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है।
(प्रश्न) गृहाश्रम सब से छोटा वा बड़ा है?
(उत्तर) अपने-अपने कर्त्तव्यकर्मों में सब बड़े हैं। परन्तु- **यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।**
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।१।।
यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः।।२।।
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।३।।
स सन्धार्य्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।४।। मनु०।।

जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं।।१।। विना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता।।२।। जिस से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है।।३।। इसलिये जो (अक्षय) मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने के अयोग्य है उसको अच्छे प्रकार धारण करे।।४।। इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उस का आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहां से हो सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

यह संक्षेप से समावर्त्तन विवाह और गृहाश्रम के विषय में शिक्षा लिख दी। इसके आगे वानप्रस्थ और संन्यास के विषय में लिखा जायेगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये
चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः।।४।।

अथ पञ्चमसमुल्लासारम्भः

अथ वानप्रस्थसंन्यासविधिं वक्ष्यामः

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।।
-शत० कां० १४।।

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवें अर्थात् अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः।।१।।
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।२।।
सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा।।३।।
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः।।४।।
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद्विधिपूर्वकम्।।५।।

इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्य्यपूर्वक गृहाश्रम का कर्त्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रम में ठहर कर निश्चितात्मा और यथावत् इन्द्रियों को जीत के वन में वसें।।१।।

परन्तु जब गृहस्थ शिर के श्वेत केश और त्वचा ढीली हो जाय और लड़के का लड़का भी हो गया हो तब वन में जाके वसे।।२।।

सब ग्राम के आहार और वस्त्रदि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ पुत्रें के पास स्त्री को रख वा अपने साथ ले के वन में निवास करे।।३।।

सांगोपांग अग्निहोत्र को ले के ग्राम से निकल दृढेन्द्रिय होकर अरण्य में जाके वसे।।४।।

नाना प्रकार के सामा आदि अन्न, सुन्दर-सुन्दर शाक, मूल, पफ़ल, पफ़ूल, कन्दादि से पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञों को करे और उसी से अतिथि सेवा और आप भी निर्वाह करें।।५।।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।।१।।
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।

शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः।।२।।

स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने पढ़ाने में नित्ययुक्त, जितात्मा, सब का मित्र, इन्द्रियों का नित्य दमनशील, विद्यादि का दान देनेहारा और सब पर दयालु, किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे इस प्रकार सदा वर्त्तमान करे।।१।।

शरीर के सुख के लिये अति प्रयत्न न करे किन्तु ब्रह्मचारी रहे अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उस से विषयचेष्टा कुछ न करे भूमि में सोवे। अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थों में ममता न करे। वृक्ष के मूल में वसे।।२।।

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्य्यां चरन्तः।
सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।१।।

-मुण्ड० खं० २। मं० ११।।

जो शान्त विद्वान् लोग वन में तप धर्म्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में वसते हैं, वे जहाँ नाशरहित पूर्ण पुरुष हानि लाभरहित परमात्मा है; वहां निर्मल होकर प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं।।१।।

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ।।१।।

-यजुर्वेदे अध्याये २०। मन्त्र २४।।

वानप्रस्थ को उचित है कि-मैं अग्नि में होम कर दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त होऊं-ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे। पश्चात् जब संन्यासग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रें के पास भेज देवे फिर संन्यास ग्रहण करे।

इति संक्षेपेण वानप्रस्थविधिः।

;;;

अथ संन्यासविधिः

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्।। मनु०।।

इस प्रकार वनों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे।

(प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके-संन्यासाश्रम करे उस को पाप होता है वा नहीं ?

(उत्तर) होता है और नहीं भी होता।

(प्रश्न) यह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो?

(उत्तर) दो प्रकार की नहीं, क्योंकि जो बाल्यावस्था में विरक्त हो कर विषयों में पफ़ंसे वह महापापी और जो न पफ़ंसे वह महापुण्यात्मा सत्पुरुष है।

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्।।

-ये ब्राह्मण ग्रन्थ के वचन हैं।

जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे। पहले संन्यास का पक्षक्रम कहा। और इस में विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करे, गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ग्रहण करे और तृतीय पक्ष है कि जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय विषय भोग की कामना से रहित परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो, वह ब्रह्मचर्याश्रम ही से संन्यास लेवे । और वेदों में भी **ष्यतयः ब्राह्मणस्य विजानतःष्** इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है। परन्तु-

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।। -कठन वल्ली २। मं० २४।।

जो दुराचार से पृथक़् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिस का आत्मा योगी नहीं और जिस का मन शान्त नहीं है, वह संन्यास ले के भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता। इसलिए-

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।

-कठन वल्ली ३। मं० १३।।

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोके। उन को ज्ञान और आत्मा में लगावे और उस ज्ञान, स्वात्मा को परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्तस्वरूप आत्मा में स्थिर करे।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।

-मुण्ड० खण्ड २। मं० १२।।

सब लौकिक भोगों को कर्म से सञ्चित हुए देख कर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी वैराग्य को प्राप्त होवे। क्योंकि अकृत अर्थात् न किया हुआ परमात्मा कृत अर्थात् केवल कर्म से प्राप्त नहीं होता। इसलिये कुछ अर्पण के अर्थ हाथ में ले के वेदवित्

और परमेश्वर को जानने वाले गुरु के पास विज्ञान के लिये जावे। जाके सब सन्देहों की निवृत्ति करे। परन्तु सदा इन का संग छोड़ देवे कि जो-

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जघंन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।१।।
अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।।२।।

-मुण्ड० १। खण्ड २। मं० ८। ९।।

जो अविद्या के भीतर खेल रहे, अपने को धीर और पण्डित मानते हैं, वे नीच गति को जानेहारे मूढ़ जैसे अन्धे के पीछे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं वैसे दुःखों को पाते हैं।।१।। जो बहुधा अविद्या में रमण करने वाले बालबुद्धि हम कृतार्थ हैं ऐसा मानते हैं, जिस को केवल कर्मकाण्डी लोग राग से मोहित होकर नहीं जान और जना सकते, वे आतुर होके जन्म मरणरूप दुःख में गिरे रहते हैं।।२।।

इसलिये-

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

-मुण्ड० ३ । खण्ड २। मं० ६।।

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेदमन्त्रें के अर्थज्ञान और आचार में अच्छे प्रकार निश्चित संन्यासयोग से शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं, वे परमेश्वर में मुक्ति सुख को प्राप्त हो; भोग के पश्चात् जब मुक्ति में सुख की अवधि पूरी हो जाती है तब वहां से छूट कर संसार में आते हैं। मुक्ति के विना दुःख का नाश नहीं होता। क्योंकि-

न सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।। -छान्दोग।।

जो देहधारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक़ कभी नहीं रह सकता और जो शरीररहित जीवात्मा मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है, तब उस को सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता। इसलिये-

लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चोत्थायाथ भैक्षचर्यं चरन्ति।।

-शत० कां० १४।।

लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ धन से भोग वा मान्य पुत्रदि के मोह से अलग हो के संन्यासी लोग भिक्षुक हो कर रात दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्।।१।।

-यजुर्वेदब्राह्मणे।।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टि सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्।।१।।
यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः।।२।। मनु०।।
प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उस में यज्ञोपवीत शिखादि चिह्नों को छोड़ आहवनीयादि पांच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणों में आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकल कर संन्यासी हो जावे।।१।। जो सब भूत प्राणिमात्र को अभयदान देकर घर से निकल के संन्यासी होता है उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वर प्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उपदेश करने वाले संन्यासी के लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त होता है।।२।।
(प्रश्न) संन्यासियों का क्या धर्म है।
(उत्तर) धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन, परोपकार, सत्यभाषणादि लक्षण सब आश्रमियों का अर्थात् सब मनुष्यमात्र का एक ही है, परन्तु संन्यासी का विशेष धर्म यह है कि-
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्।।१।।
क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्।।२।।
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह।।३।।
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्।।४।।
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते।।५।।
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम्।।६।।
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति।।७।।
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।

व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः।।८।।
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।९।।
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।।१०।।
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन सम्पश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः।।११।।
अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्म्मभिः।
तपसश्चरणैश्चोग्रैस्साधयन्तीह तत्पदम्।।१२।।
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्।।१३।।
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः।।१४।।
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।१५।।
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगाञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते।।१६।। मनु० अ० ६।।

जब संन्यासी मार्ग में चले तब इधर-उधर न देख कर नीचे पृथिवी पर दृष्टि रख के चले। सदा वस्त्र से छान कर जल पीये, निरन्तर सत्य ही बोले, सर्वदा मन से विचार के सत्य का ग्रहण कर असत्य को छोड़ देवे।।१।।

जब कहीं उपदेश वा संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे तो संन्यासी को उचित है कि उस पर आप क्रोध न करे किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेश ही करे और एक मुख के, दो नासिका के, दो आँख के और दो कान के छिद्रों में बिखरी हुई वाणी को किसी कारण मिथ्या कभी न बोले।।२।।

अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर अपेक्षा रहित मद्य मांसादि वर्जित होकर, आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिये सदा विचरता रहै।।३।।

केश, नख, डाढ़ी, मूँछ का छेदन करवावे। सुन्दर पात्र, दण्ड और कुसुम्भ आदि से रंगे हुए वस्त्रों को ग्रहण करके निश्चितात्मा सब भूतों को पीड़ा न देकर सर्वत्र विचरे।।४।।

इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग-द्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्त्तकर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे।।५।।
कोई संसार में उसको दूषित वा भूषित करे तो भी जिस किसी आश्रम में वर्त्तता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर स्वयं धर्मात्मा और अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे। और यह अपने मन में निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न धारण धर्म का कारण नहीं है। सब मनुष्यादि प्राणियों की सत्योपदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है।।६।।
क्योंकि यद्यपि निर्मली वृक्ष का फ़ल पीस के गदरे जल में डालने से जल का शोधक होता है, तदपि विना डाले उसके नामकथन वा श्रवणमात्र से उसका जल शुद्ध नहीं हो सकता।।७।।
इसलिये ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् संन्यासी को उचित है कि ओंकारपूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे। परन्तु तीन से तो न्यून प्राणायाम कभी न करे, यही संन्यासी का परमतप है।।८।।
क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही े प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष, भस्मीभूत होते हैं।।९।।
इसलिये संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामों से आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष, धारणाओं से पाप, प्रत्याहार से संगदोष, ध्यान से अनीश्वर के गुणों अर्थात् हर्ष शोक और अविद्यादि जीव के दोषों को भस्मीभूत करें।।१०।।
इसी ध्यानयोग से जो अयोगी अविद्वानों के दुःख से जानने योग्य छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति उसको और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की गति को देखे।।११।।
सब भूतों से निर्वैर, इन्द्रियों के दुष्ट विषयों का त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग्र तपश्चरण से संसार में मोक्षपद को पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं; अन्य नहीं।।१२।।
जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह कांक्षारहित और सब बाहर भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है, तभी इस देह में और मरण पाके निरन्तर सुख को प्राप्त होता है।।१३।।
इसलिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियों को योग्य है कि प्रयत्न से दश लक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन नित्य करें।।१४।।

पहला लक्षण-(धृति) सदा धैर्य रखना। दूसरा-(क्षमा) जो कि निन्दा स्तुति मानापमान हानिलाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना। तीसरा-(दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे। चौथा-(अस्तेय) चोरी-त्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल कपट विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेश से परपदार्थ का ग्रहण करना चोरी और उस को छोड़ देना साहुकारी कहाती है। पांचवां-(शौच) राग-द्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर और जल मृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी। छठा-(इन्द्रियनिग्रह) अधर्माचरणों से रोक के इन्द्रियों को धर्म में ही सदा चलाना। सातवां-(धीः) मादकद्रव्य बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ दुष्टों का संग आलस्य प्रमाद आदि को छोड़ के श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन सत्पुरुषों का संग योगाभ्यास धर्माचरण ब्रह्मचर्य आदि शुभकर्मों से बुद्धि का बढ़ाना। आठवां-(विद्या) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थज्ञान और उन से यथायोग्य उपकार लेना, सत्य जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्त्तना विद्या, इससे विपरीत अविद्या है। नववां-(सत्य) जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी। तथा दशवां-(अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़के शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना धर्म का लक्षण है। इस दश लक्षणयुक्त पक्षपातरहित न्यायाचरण धर्म का सेवन चारों आश्रम वाले करें और इसी वेदोक्त धर्म ही में आप चलना और दूसरों को समझा कर चलाना संन्यासियों का विशेष धर्म है।।१५।।

इसी प्रकार से धीरे-धीरे सब संगदोषों को छोड़ हर्ष शोकादि सब द्वन्द्वों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है। संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार से व्यवहारों का सत्य निश्चय करा अधर्म व्यवहारों से छुड़ा सब संशयों का छेदन कर सत्य धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें।।१६।।

(प्रश्न) संन्यासग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है वा क्षत्रियादि का भी?

(उत्तर) ब्राह्मण ही को अधिकार है, क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान् धार्मिक परोपकारप्रिय मनुष्य है उसी का ब्राह्मण नाम है। विना पूर्ण विद्या के धर्म परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता। इसीलिये लोकश्रुति है कि ब्राह्मण को संन्यास का अधिकार है, अन्य को नहीं यह मनु का प्रमाण भी है-

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
पुण्योऽक्षयपफ़लः प्रेत्य राजधर्मं निबोधत।। मनु०।।
यह मनु जी महाराज कहते हैं कि हे ऋषियो! यह चार प्रकार अर्थात् ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम करना ब्राह्मण का धर्म है। यहां वर्त्तमान में पुण्यस्वरूप और शरीर छोड़े पश्चात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्द का देने वाला संन्यास धर्म है। इस के आगे राजाओं का धर्म मुझ से सुनो। इस से यह सिद्ध हुआ कि संन्यासग्रहण का अधिकार मुख्य करके ब्राह्मण का है और क्षत्रियादि का ब्रह्मचर्याश्रम है।

(प्रश्न) संन्यासग्रहण की आवश्यकता क्या है?

(उत्तर) जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है। क्योंकि इसके विना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकते और दूसरे आश्रमों को विद्याग्रहण गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़ कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है, वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता। क्योंकि संन्यासी को सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्य से संन्यासी होकर जगत् को सत्यशिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है उतनी गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

(प्रश्न) संन्यास ग्रहण करना ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध है क्योंकि ईश्वर का अभिप्राय मनुष्यों की बढ़ती करने में है। जब गृहाश्रम नहीं करेगा तो उस से सन्तान ही न होंगे। जब संन्यासाश्रम ही मुख्य है और सब मनुष्य करें तो मनुष्यों का मूलच्छेदन हो जायेगा।

(उत्तर) अच्छा, विवाह करके भी बहुतों के सन्तान नहीं होते अथवा होकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं फिर वह भी ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध करने वाला हुआ। जो तुम कहो कि

'यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।' यह किसी कवि का वचन है।

(अर्थ) जो यत्न करने से भी कार्य सिद्ध न हो तो इस में क्या दोष? अर्थात् कोई भी नहीं। तो हम तुम से पूछते हैं कि गृहाश्रम से बहुत सन्तान होकर आपस में विरुद्धाचरण कर लड़ मरें तो हानि कितनी बड़ी होती है। समझ के विरोध से लड़ाई बहुत होती है। जब संन्यासी एक वेदोक्त धर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति

उत्पन्न करावेगा तो लाखों मनुष्यों को बचा देगा। सहस्रों गृहस्थ के समान मनुष्यों की बढ़ती करेगा। और सब मनुष्य संन्यासग्रहण कर ही नहीं सकते। क्योंकि सब की विषयासक्ति कभी नहीं छूट सकेगी। जो-जो संन्यासियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे वे सब जानो संन्यासी के पुत्र तुल्य हैं।
(प्रश्न) संन्यासी लोग कहते हैं कि हम को कुछ कर्त्तव्य नहीं। अन्न वस्त्र लेकर आनन्द में रहना, अविद्यारूप संसार से माथापच्ची क्यों करना? अपने को ब्रह्म मानकर सन्तुष्ट रहना। कोई आकर पूछे तो उस को भी वैसा ही े उपदेश करना कि त ू भी बह्म्र ह।ै तझु को पाप पुण्य नहीं लगता क्योकि शीतोष्ण शरीर, क्षुधा तृषा प्राण और सुख दुःख मन का धर्म है। जगत् मिथ्या और जगत् के व्यवहार भी सब कल्पित अर्थात् झूठे हैं े इसलिये इस में पफ़ंसना बुद्धिमानों का काम नहीं। जो कुछ पाप पुण्य होता है वह देह और इन्द्रियों का धर्म है आत्मा का नहीं। इत्यादि उपदेश करते हैं और आपने कुछ विलक्षण संन्यास का धर्म कहा है। अब हम किस की बात सच्ची और किस की झूठी मानें ?
(उत्तर) क्या उन को अच्छे कर्म भी कर्त्तव्य नहीं? देखो-**'वैदिकैश्चैव कर्मभिः'** मनु जी ने वैदिक कर्म जो धर्मयुक्त सत्य कर्म हैं, संन्यासियों को भी अवश्य करना लिखा है। क्या भोजन छादनादि कर्म वे छोड़ सकेंगे? जो ये कर्म नहीं छूट सकते तो उत्तम कर्म छोड़ने से वे पतित और पापभागी नहीं होंगे? जब गृहस्थों से अन्न वस्त्रादि लेते हैं और उन का प्रत्युपकार नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे ? जैसे आंख से देखना कान से सुनना न हो तो आंख और कान का होना व्यर्थ है, वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्यशास्त्रें का विचार, प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत् में व्यर्थ भाररूप हैं। और जो अविद्या रूप संसार से माथापच्ची क्यों करना आदि लिखते और कहते हैं वैसे उपदेश करने वाले ही े मिथ्यारूप और पाप के बढ़ाने हारे पापी हैं। जो कुछ शरीरादि से कर्म किया जाता है वह आत्मा ही का और उस के पफ़ल का भोगने वाला भी आत्मा है।
जो जीव को ब्रह्म बतलाते हैं वे अविद्या निद्रा में सोते हैं। क्योंकि जीव अल्प, अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वव्यापक सर्वज्ञ है । ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभावयुक्त है। और जीव कभी बद्ध कभी मुक्त रहता है। ब्रह्म को सर्वव्यापक सर्वज्ञ होने से भ्रम वा अविद्या कभी नहीं हो सकती। और जीव को कभी विद्या और कभी अविद्या होती है। ब्रह्म जन्ममरण दुःख को कभी नहीं प्राप्त होता है और जीव प्राप्त होता है। इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है।

(प्रश्न) 'संन्यासी सर्वकर्म्मविनाशी' और अग्नि तथा धातु को स्पर्श नहीं करते। यह बात सच्ची है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं। **'सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन् यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः, स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी'।** जो ब्रह्म और उसकी आज्ञा में उपविष्ट अर्थात् स्थित और जिस से दुष्ट कर्मों का त्याग किया जाय संन्यास, वह उत्तम स्वभाव जिस में हो वह संन्यासी कहाता है। इस में सुकर्म का कर्त्ता और दुष्ट कर्मों का विनाश करने वाला संन्यासी कहाता है।

(प्रश्न) अध्यापन और उपदेश गृहस्थ किया करते हैं, पुनः संन्यासी का क्या प्रयोजन ?

(उत्तर) सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है उतनी गृहस्थों को नहीं। हाँ ! जो ब्राह्मण हैं उनका यही काम है कि पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को सत्योपदेश और पढ़ाया करें। जितना भ्रमण का अवकाश संन्यासी को मिलता है उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकों को कभी नहीं मिल सकता। जब ब्राह्मण वेदविरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी होता है। इसलिये संन्यास का होना उचित है।

(प्रश्न) 'एकरात्रिं वसेद् ग्रामे' इत्यादि वचनों से संन्यासी को एकत्र एकरात्रिमात्र रहना अधिक निवास न करना चाहिये।

(उत्तर) यह बात थोड़े से अंश में तो अच्छी है कि एकत्र वास करने से जगत् का उपकार अधिक नहीं हो सकता और स्थानान्तर का भी अभिमान होता है। राग, द्वेष भी अधिक होता है। परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहने से होता हो तो रहे। जैसे जनक राजा के यहां चार-चार महीने तक पञ्चशिखादि और अन्य संन्यासी कितने ही वर्षों तक निवास करते थे और 'एकत्र न रहना' यह बात आजकल के पाखण्डी सम्प्रदायियों ने बनाई है। क्योंकि जो संन्यासी एकत्र अधिक रहेगा तो हमारा पाखण्ड खण्डित होकर अधिक न बढ़ सकेगा।

(प्रश्न) यतीनां काञ्चनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम्।
चौराणामभयं दद्यात्स नरो नरकं व्रजेत्।।

इत्यादि वचनों का अभिप्राय यह है कि संन्यासियों को जो सुवर्ण दान दे तो दाता नरक को प्राप्त होवे।

(उत्तर) यह बात भी वर्णाश्रमविरोधी सम्प्रदायी और स्वार्थसिन्धु वाले पौराणिकों की कल्पी हुई है, क्योंकि संन्यासियों को धन मिलेगा तो वे हमारा खण्डन बहुत कर सकेंगे और हमारी हानि होगी तथा वे हमारे अधीन भी न

रहेंगे। और जब भिक्षादि व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो डरते रहेंगे। जब मूर्ख और स्वार्थियों को दान देने में अच्छा समझते हैं तो विद्वान् और परोपकारी संन्यासियों को देने में कुछ भी दोष नहीं हो सकता। देखो-

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्।। मनु०।।

नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवें और वह श्लोक भी अनर्थक है। क्योंकि संन्यासी को सुवर्ण देने से यजमान नरक को जावे तो चांदी, मोती, हीरा आदि देने से स्वर्ग को जायेगा।

(प्रश्न) यह पण्डित जी इस का पाठ बोलते समय भूल गये। यह ऐसा है कि 'यतिहस्ते धनं दद्यात्' अर्थात् जो संन्यासियों के हाथ में धन देता है वह नरक में जाता है।

(उत्तर) यह भी वचन अविद्वान् के कपोलकल्पना से रचा है। क्योंकि जो हाथ में धन देने से दाता नरक को जाय तो पग पर धरने वा गठरी बांध कर देने से स्वर्ग को जायेगा। इसलिए ऐसी कल्पना मानने योग्य नहीं। हां ! यह बात तो है कि जो संन्यासी योगक्षेम से अधिक रक्खेगा तो चोरादि से पीड़ित और मोहित भी हो जायगा परन्तु जो विद्वान् है वह अयुक्त व्यवहार कभी न करेगा, न मोह में पफ़ंसेगा। क्योंकि वह प्रथम गृहाश्रम में अथवा ब्रह्मचर्य में सब भोग कर वा सब देख चुका है और जो ब्रह्मचर्य से होता है वह पूर्ण वैराग्ययुक्त होने से कभी कहीं नहीं पफ़ंसता।

(प्रश्न) लोग कहते हैं कि श्राद्ध में संन्यासी आवे वा जिमावे तो उस के पितर भाग जायें और नरक में गिरें।

(उत्तर) प्रथम तो मरे हुए पितरों का आना और किया हुआ श्राद्ध मरे हुए पितरों को पहुंचना ही असम्भव, वेद और युक्तिविरुद्ध होने से मिथ्या है। और जब आते ही नहीं तो भाग कौन जायेंगे? जब अपने पाप पुण्य के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था से मरण के पश्चात् जीव जन्म लेते हैं तो उन का आना कैसे हो सकता है? इसलिये यह भी बात पेटार्थी पुराणी और वैरागियों की मिथ्या कल्पी हुई है। हां यह तो ठीक है कि जहां संन्यासी जायेंगे वहां यह मृतकश्राद्ध करना वेदादि शास्त्रें से विरुद्ध होने से पाखण्ड दूर भाग जायगा।

(प्रश्न) जो ब्रह्मचर्य से संन्यास लेवेगा उस का निर्वाह कठिनता से होगा और काम का रोकना भी अति कठिन है। इसलिए गृहाश्रम वानप्रस्थ होकर जब वृद्ध हो जाय तभी संन्यास लेना अच्छा है।

(उत्तर) जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों को न रोक सके, वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे। परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्यसंरक्षण के गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता। और उस का वीर्य्य विचाराग्नि का इन्धनवत् है अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है। जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यकता रोगी के लिये होती है वैसी नीरोगी के लिये नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे। जैसे पञ्चशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं। इसलिये संन्यासी होना अधिकारियों को उचित है। और जो अनधिकारी संन्यास ग्रहण करेगा तो आप डूबेगा औरों को भी डुबावेगा। जैसे 'सम्राट्' चक्रवर्ती राजा होता है वैसे 'परिव्राट्' संन्यासी होता है। प्रत्युत राजा अपने देश में वा स्वसम्बन्धियों में सत्कार पाता है और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।१।।

-यह चाणक्य-नीतिशास्त्र का श्लोक है।

विद्वान् और राजा की कभी तुल्यता नहीं हो सकती, क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सत्कार पाता है और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। इसलिये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य, सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के अर्थ गृहस्थ; विचार ध्यान और विज्ञान बढ़ाने तपश्चर्या करने के लिये वानप्रस्थ; और वेदादि सत्यशास्त्रें का प्रचार, धर्म व्यवहार का ग्रहण और दुष्ट व्यवहार के त्याग, सत्योपदेश और सब को निःसन्देह करने आदि के लिये संन्यासाश्रम है। परन्तु जो इस संन्यास के मुख्य धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते वे पतित और नरकगामी हैं इस से संन्यासियों को उचित है कि सदा सत्योपदेश शंकासमाधान, वेदादि सत्यशास्त्रें का अध्यापन और वेदोक्त धर्म की वृद्धि प्रयत्न से करके सब संसार की उन्नति किया करें।

(प्रश्न) जो संन्यासी से अन्य साधु, वैरागी, गुसाईं, खाखी आदि हैं वे भी संन्यासाश्रम में गिने जायेंगे वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि उन में संन्यास का एक भी लक्षण नहीं। वे वेदविरुद्ध मार्ग में प्रवृत्त होकर वेद से अधिक अपने सम्प्रदाय के आचार्य्यों के वचन मानते और अपने ही मत की प्रशंसा करते। मिथ्या प्रपंच में फ़ंसकर अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को अपने-अपने मत में फ़ंसाते हैं। सुधार करना तो दूर रहा, उस के

बदले में संसार को बहका कर अधोगति को प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। इसलिये इन को संन्यासाश्रम में नहीं गिन सकते किन्तु ये स्वार्थाश्रमी तो पक्के हैं। इस में कुछ सन्देह नहीं। जो स्वयं धर्म में चलकर सब संसार को चलाते हैं, जो आप और सब संसार को इस लोक अर्थात् वर्त्तमान जन्म में, परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग करते कराते हैं। वे ही धर्मात्मा जन संन्यासी और महात्मा हैं।

यह संक्षेप में संन्यासाश्रम की शिक्षा लिखी । अब इस के आगे राज- प्रजाधर्म विषय लिखा जाएगा ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये
पञ्चमः समुल्लासः सम्पूर्णः।।५।।

अथ षष्ठसमुल्लासारम्भः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा।।१।।
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्।।२।। मनु०।।

अब मनु जी महाराज ऋषियों से कहते हैं कि चारों वर्ण और चारों आश्रमों के व्यवहार कथन के पश्चात् राजधर्मों को कहेंगे कि जिस प्रकार का राजा होना चाहिये और जैसे इस के होने का सम्भव तथा जैसे इस को परमसिद्धि प्राप्त होवे उस को सब प्रकार कहते हैं।।१।। कि जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा यथावत् करे।।२।। उस का प्रकार यह है-

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भष्ूाथः सदां सि ।।

-प्र मं० ३। सू० ३८। मं० ६।।

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिल के (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्धरूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा, राजार्य्यसभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

तं सभा च समितिश्च सेना च ।।१।।

-अथर्वन कां० १५। अनु० २। व० ९। मं० २।।

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ।।२।।

-अथर्वन कां० १९। अनु० ७। व० ५५। मं० ६।।

(तम्) उस राजधर्म को (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च) संग्रामादि की व्यवस्था और (सेना च) सेना मिलकर पालन करें।।१।।

सभासद् और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा देवे कि हे (सभ्य) सभा के योग्य मुख्य सभासद् तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की धर्मयुक्त

व्यवस्था का (पाहि) पालन कर और (ये च) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें।।२।।
इस का अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहै। यदि ऐसा न करोगे तो-
राष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः।। विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति।।१।।
-शत० कां० १३। अनु० २। ब्रा० ३।।
जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहै तो (राष्ट्रमेव विश्या हन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करे। जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाये जाता (अत्यन्त पीड़ित करता) है इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिह वा मांसाहारी हृष्ट पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा। इसलिये-
इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ।।
-अथर्वन कां० ६। अनु० १०। व० ९८। म० १।।
हे मनुष्यो ! जो (इह) इस मनुष्य के समुदाय में (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का कर्त्ता शत्रुओं को (जयाति) जीत सके (न पराजयातै) जो शत्रुओं से पराजित न हो (राजसु) राजाओं में (अधिराजः) सर्वोपरि विराजमान (राजयातै) प्रकाशमान हो (चर्कृत्यः) सभापति होने को अत्यन्त योग्य (ईड्यः) प्रशंसनीय गुण, कर्म, स्वभावयुक्त (वन्द्यः) सत्करणीय (चोपसद्यः) समीप जाने और शरण लेने योग्य (नमस्यः) सब का माननीय (भव) होवे उसी को सभापति राजा करें।
इमं देवाऽ असपत्नँ्ं सुवध्वं महते क्षत्रय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।।१।। -यजुः० अ० ९। मन्त्र ४०।।
हे (देवाः) विद्वानो राजप्रजाजनो तुम (इमम्) इस प्रकार के पुरुष को (महते क्षत्रय) बड़े चक्रवर्ति राज्य (महते ज्यैष्ठ्याय) सब से बड़े होने (महते जानराज्याय) बड़े-बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालन के लिये (असपत्नँ्ंसुवध्वम्) सम्मति

करके सर्वत्र पक्षपातरहित पूर्ण विद्या विनययुक्त सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मान के सब भूगोल शत्रुरहित करो।। और-

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मत्यर््ास्य मायिनः ।।

-ऋ मं० १। सू० ३९। मं० २।।

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेयादि अस्त्र और शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) धनुष बाण करवाल (तलवार) आदि शस्त्र शत्रुओं के (पराणुदे) पराजय करने (उत प्रतिष्कभे) और रोकने के लिए (वीळू) प्रशंसित और (स्थिरा) दृढ़ (सन्तु) हों (युष्माकम्) और तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) प्रशंसनीय (अस्तु) होवे कि जिस से तुम सदा विजयी होवो परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः) जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है उस के लिये पूर्व चीजें मत हों अर्थात् जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। महाविद्वानों को विद्यासभाऽधिकारी; धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें, सब के हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो-जो निज के काम हैं उन-उन में स्वतन्त्र रहैं। पुनः उस सभापति के गुण कैसे होने चाहिये-

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्र निर्हृत्य शाश्वतीः।।१।।
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्।।२।।
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः।।३।।

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, वायु के समान सब के प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित न्याया-धीश के समान वर्त्तनेवाला, सूर्य्य के समान न्याय, धर्म, विद्या का प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक; अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बांधनेवाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से

बांधनेवाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों का पूर्ण करने वाला सभापति होवे।।१।।
जो सूर्यवत् प्रतापी सब के बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपानेहारा, जिस को पृथिवी में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो।।२।।
और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य्य, सोम, धर्मप्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे, वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे।।३।। सच्चा राजा कौन है-

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।१।।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।२।।
समीक्ष्य स धृतः सम्यक्‌ सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः।।३।।
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्।।४।।
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति।।५।।
तस्याहुः सम्प्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्।।६।।
तं राजा प्रणयन्सम्यक्‌ त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते।।७।।
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्।।८।।
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च।।९।।
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रनुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता।।१०।। मनु०।।

जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब का शासनकर्त्ता, वही चार वर्ण और आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है।।१।। वही प्रजा का शासनकर्त्ता सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसी लिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं।।२।।

जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है।।३।।
विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे।।४।।
जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयंकर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपातरहित विद्वान् हो तो।।५।।
जो उस दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी, विचार के करनेहारा, बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी को उस दण्ड का चलानेहारा विद्वान् लोग कहते हैं।।६।।
जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा, क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है।।७।।
जब दण्ड बड़ा तेजोमय है उस को अविद्वान्, अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता। तब वह दण्ड धर्म से रहित कुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है।।८।।
क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय, विद्या, सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ़ है वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता।।९।।
और जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषों का संगी यथावत् नीतिशास्त्र के अनुकूल चलनेहारा श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है।।१०।।
इसलिये-

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।।१।।
दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्।।२।।
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा।।३।।
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये।।४।।
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।

स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः।।५।।
अव्रतानाममन्त्रणां जातिमात्रेपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते।।६।।
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तननुगच्छति।।७।। मनु०।।
सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सब के ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रें में प्रवीण पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रवमान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें।।१।।
न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लंघन कोई भी न करे।।२।।
इस सभा में चारों वेद, हैतुक अर्थात् कारण अकारण का ज्ञाता न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब यह सभा कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहिये।।३।।
और जिस सभा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के जानने वाले तीन सभासद् होके व्यवस्था करें उस सभा की की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लंघन न करे।।४।।
यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उस को कभी न मानना चाहिये।।५।।
जो ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती।।६।।
जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जाननेवाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उस को कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं।।७।।
इसलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राज्यसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे। किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करे। और सब लोग ऐसे-
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।

आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भाँश्च लोकतः।।१।।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।२।।
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।३।।
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु।।४।।
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः।।५।।
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः।।६।।
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ।।७।।
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे।।८।।
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा।।९।।
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषिंगणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान्।।१०।।
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः।।११।। मनु०।।

राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान विद्याओं के जाननेवालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव रूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति हो सकें।।१।।

सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हठे हठाए रहैं। इसलिये रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहैं, क्योंकि जो अजितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।।२।।

दृढ़ोत्साही होकर जो काम से दश और क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन कि जिनमें पफ़ंसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके उन को प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे।।३।।
क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में पफ़ंसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और धर्म से रहित हो जाता है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में पफ़ंसता है वह शरीर से भी रहित हो जाता है।।४।।
काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं। देखो-मृगया खेलना, (अक्ष) अर्थात् चोपड़ खेलना, जुआ खेलनादि, दिन में सोना, कामकथा व दूसरे की निन्दा किया करना, स्त्रियों का अति संग, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि का सेवन, गाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना; वृथा इधर-उधर घूमते रहना ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं।।५।।
क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं-'पैशुन्यम्' अर्थात् चुगली करना, साहस विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना, द्रोह=द्रोह रखना, 'ईर्ष्या' अर्थात् दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देख कर जला करना, 'असूया' दोषों में गुण, गुणों में दोषारोपण करना, 'अर्थदूषण' अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों से धनादि का व्यय करना, वाग्दण्ड, कठोर वचन बोलना और पारुष्यं=विना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं।।६।।
जिसे सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिस से ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े।।७।।
काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि से जुआ खेलना, तीसरा स्त्रियों का विशेष संग, चौथा मृगया खेलना चे चार महादुष्ट व्यसन हैं।।८।।
और क्रोधजों में विना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना ये तीन क्रोध से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं।।९।।
जो ये सात दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं इन से पूर्व-पूर्व अर्थात् व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से अन्याय से दण्ड देना, इस से मृगया खेलना, इस से स्त्रियों का अत्यन्त संग, इस से जुआ अर्थात् द्यूत करना और इस से भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है।।१०।।
इस में यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में पफ़ंसने से मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक-अधिक पाप करके नीच-

नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुःख को प्राप्त होता जायेगा। और जो किसी व्यसन में नहीं पफ़ंसा वह मर भी जायगा तो भी सुख को प्राप्त होता जायगा। इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न पफ़ंसें और दुष्ट व्यसनों से पृथव्फ़ होकर धर्मयुक्त गुण, कर्म, स्वभावों में सदा वर्त्त के अच्छे-अच्छे काम किया करें।।११।।

राजसभासद् और मन्त्री कैसे होने चाहिये-

मौलान् शास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्ष्यान् कुलोद्गतान्।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।।१।।
अपि यत् सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्।।२।।
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च।।३।।
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथव्फ़-पृथव्फ़।
समस्तानाञ्च कार्य्येषु विदध्याद्धितमात्मनः।।४।।
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्रज्ञानवस्थितान्।
सम्यगर्थसमाहर्तन् अमात्यान् सुपरीक्षितान्।।५।।
निवर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः।
तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान्।।६।।
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान्।
शुचीन् आकरकर्मान्ते भीरून् अन्तर्निवेशने।।७।।
दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचि दक्षं कुलोद्गतम्।।८।।
अनुरक्तः श्ुिचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते।।९।। मनु०।।

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रें के जानने वाले, शूरवीर, जिन का लक्ष्य अर्थात् विचार निष्पफ़ल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात वा आठ उत्तम धार्मिक चतुर 'सचिवान्' अर्थात् मन्त्री करे।।१।।

क्योंकि विशेष सहाय के विना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म्म एक से कैसे हो सकता है? इसलिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है।।२।।

इस से सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मों में कुशल विद्वान् मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता किसी से (विग्रह) विरोध (स्थान) स्थिति समय को देख के चुपचाप रहना, अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना (समुदयम्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो-जो देश प्राप्त हो उस-उस में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करे।।३।।
विचार से करना कि उस सभासदों का पृथक्‌-पृथक्‌ अपना-अपना विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना।।४।।
अन्य भी पवित्रत्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे।।५।।
जितने मनुष्यों से कार्य्य सिद्ध हो सके उतने आलस्यरहित बलवान् और बड़े-बड़े चतुर प्रधान पुरुषों को (अधिकारी) अर्थात् नौकर करे।।६।।
इन के आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े-बड़े कर्मों में और भीरु डरने वालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे।।७।।
जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जाननेहारा सब शास्त्रें में विशारद चतुर है; उस दूत को भी रक्खे।।८।।
वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रत्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूपयुक्त निर्भय और बड़ा वक्ता हो, वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है।।९।। किस-किस को क्या-क्या अधिकार देना योग्य है-
अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी त्रिफ़या।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ।।१।।
दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा।।२।।
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत्।।३।।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्।।४।।

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते।।५।।
तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च।।६।।
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्त्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्।।७।।
तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्।।८।।
पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चिर्त्वजम्।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युर्वैतानिकानि च।।९।। मनु०।।
अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिस से अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राजकार्य्य तथा सभा के आधीन सब कार्य्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा विरोध करना अधिकार देवे।।१।।
दूत उस को कहते हैं जो पफूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को पफ़ोड़ तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिस से शत्रुओं में पफ़ूट पड़े।।२।।
वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा यत्न करे कि जिस से अपने को पीड़ा न हो।।३।।
इसलिये सुन्दर जंगल, धन धान्ययुक्त देश में (धनुर्दुर्गम्) धनुर्धारी पुरुषों से गहन (महीदुर्गम्) मट्टी से किया हुआ (अब्दुर्गम्) जल से घेरा हुआ (वार्क्षम्) अर्थात् चारों ओर वन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में कोट बना के इस के मध्य में नगर बनावे।।४।।
और नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्योंकि उस में स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिये अवश्य दुर्ग का बनाना उचित है।।५।।
वह दुर्ग शस्त्रस्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करने हारे हों (शिल्पी) कारीगर, यन्त्र, नाना प्रकार की कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो।।६।।
उस के मध्य में जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित सब ऋतुओं में सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिस में सब राजकार्य्य का निर्वाह हो वैसा बनवावे।।७।।

इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के यहां तक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्य रूप गुणयुक्त हृदय को अतिप्रिय बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न सुन्दर लक्षणयुक्त अपने क्षत्रियकुल की कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे दूसरी सब स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे।।८।।

पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहै अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना।।९।।

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु।।१।।

होते हैं इस से विमुख कभी न हो, किन्तु कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिये उन के सामने से छिप जाना उचित है क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके वैसे काम करे। जैसा सिह क्रोध में सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म हो जाता है वैसे मूर्खता से नष्ट भ्रष्ट न हो जावें।।५।।

युद्ध समय में न इधर-उधर खड़े, न नपुंसक, न हाथ जोड़े हुए, न जिस के शिर के बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न 'मैं तेरे शरण हूं' ऐसे को।।६।।

न सोते हुए, न मूर्छा को प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुध से रहित, न युद्ध करते हुओं को देखने वालों, न शत्रु के साथी।।७।।

न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न दुःखी, न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और न पलायन करते हुए पुरुष को, सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए, योद्धा लोग कभी मारें किन्तु उन को पकड़ के जो अच्छे हों बन्दीगृह में रख दे और भोजन आच्छादन यथावत् देवे और जो घायल हुए हों उन की औषधादि विधिपूर्वक करे। न उन को चिड़ावे न दुःख देवे। जो उन के योग्य काम हो करावे। विशेष इस पर ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़के-बालों को अपने सन्तानवत् पाले और स्त्रियों को भी पाले। उन को अपनी माँ बहिन और कन्या के समान समझे, कभी विषयासक्ति की दृष्टि से भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाय और जिन में पुनः पुनः युद्ध करने की शंका न हो उन को सत्कारपूर्वक छोड़ कर अपने-अपने घर व देश को भेज देवे और जिन से भविष्यत् काल में विघ्न होना सम्भव हो उन को सदा कारागार में रक्खे।।८।।

और जो पलायन अर्थात् भागे और डरा हुआ भृत्य शत्रुओं से मारा जाय वह उस स्वामी के अपराध को प्राप्त होकर दण्डनीय होवे।।९।।
और जो उस की प्रतिष्ठा है जिस से इस लोक और परलोक में सुख होने वाला था उस को उस का स्वामी ले लेता है, जो भागा हुआ मारा जाय उस को कुछ भी सुख नहीं होता, उस का पुण्यपफ़ल सब नष्ट हो जाता है और उस प्रतिष्ठा को वह प्राप्त हो जिस ने धर्म से यथावत् युद्ध किया हो।।१०।।
इस व्यवस्था को कभी न तोड़े कि जो-जो लड़ाई में जिस-जिस भृत्य वा अध्यक्ष ने रथ घोड़े, हाथी, छत्र, धन-धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियां तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और घी, तेल आदि के कुप्पे जीते हों वही उस-उस का ग्रहण करे।।११।।
परन्तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवां भाग राजा को देवें और राजा भी सेनास्थ योद्धाओं को उस धन में से, जो सब ने मिल के जीता है, सोलहवां भाग देवे और जो कोई युद्ध में मर गया हो उस की स्त्री और सन्तान को उस का भाग देवे और उस की स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जायें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे। जो कोई अपने राज्य की रक्षा, वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनन्दवृद्धि की इच्छा रखता हो वह इस मर्यादा का उल्लंघन कभी न करे।।१२।।
अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्।।१।।२।।
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत्।।३।।
अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः।।४।।
नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवांगानि रक्षेद्विवरमात्मनः।।५।।
वकवच्चिन्तयेदर्थान् सिहवच्च परात्रफ़मेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्।।६।।
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद् वशं सर्वान् सामादिभिरुपत्रफ़मैः।।७।।८।।
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः।।९।।

मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भृश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः।।१०।।
शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्।।११।।
राष्ट्रस्य सङ्ग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।
सुसङ्गृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते।।१२।।
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्य्याद्राष्ट्रस्य सङ्ग्रहम्।।१३।।
ग्रामस्याधिपति कुर्य्याद्दशग्रामपति तथा।
विशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च।।१४।।
ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम्।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विशतीशिनम्।।१५।।
विशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम्।।१६।।
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः।।१७।।
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम्।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्रणामिव ग्रहम्।।१८।।
स ताननुपरित्रफ़ामेत्सर्वानेव सदा स्वयम्।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः।।१९।।
राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः।।२०।।
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्।।२१।। मनु०।।

राजा और राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे और बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्म का प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पालन में लगावे।।१।।

इस चार प्रकार के पुरुषार्थ के प्रयोजन को जाने। आलस्य छोड़कर इस का भलीभांति नित्य अनुष्ठान करे।।२।। दण्ड से अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा, नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा, रक्षित को वृद्धि अर्थात् ब्याजादि से बढ़ावे और बढ़े हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग में नित्य व्यय करे।।३।।

कदापि किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सब से वर्त्ताव रखे और नित्यप्रति अपनी रक्षा कर के शत्रु के किये हुए छल को जान के निवृत्त करे।।४।।
कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलता को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहै, जैसे कछुआ अपने अंगों को गुप्त रखता है वैसे शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र को गुप्त रक्खे।।५।।
जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मच्छी पकड़ने को ताकता है वैसे अर्थसंग्रह का विचार किया करे, द्रव्यादि पदार्थ और बल की वृद्धि कर शत्रु को जीतने के लिये सिह के समान पराक्रम करे। चीता के समान छिपकर शत्रुओं को पकड़े और समीप आये बलवान् शत्रुओं से सस्सा के समान दूर भाग जाय और पश्चात् उन को छल से पकड़े।।६।।
इस प्रकार विजय करने वाले सभापति के राज्य में जो परिपन्थी अर्थात् डाकू लुटेरे हों उन को (साम) मिला लेना (दाम) कुछ देकर (भेद) पफ़ोड़ तोड़ करके वश में करे ।।७।। और जो इनसे वश में न हों तो अतिकठिन दण्ड से वश में करे।।८।।
जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे।।९।।
जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है, वह राज्य और अपने बन्धुसहित जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।।१०।। जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों के कृशित करने से क्षीण हो जाते हैं वैसे ही े प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण अर्थात् बलादि बन्धुसहित नष्ट हो जाते हैं।।११।।
इसलिये राजा और राजसभा राजकार्य्य की सिद्धि के लिये ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से राजकार्य्य यथावत् सिद्ध हों। जो राजा राज्यपालन में सब प्रकार तत्पर रहता है उसको सुख सदा बढ़ता है।।१२।।
इसलिये दो, तीन; पांच और सौ ग्रामों के बीच में राजस्थान रक्खें जिस में यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुषों को रखकर सब राज्य के कार्यों को पूर्ण करे।।१३।।
एक-एक ग्राम में एक-एक प्रधान पुरुष को रक्खें उन्हीं दश ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं वीश ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और

उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पांचवां पुरुष रक्खे ।। अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों में एक थाना और दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांच थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों पर एक जिला नियत किया है यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्र से राजनीति का प्रकार लिया है।।१४।।

इसी प्रकार प्रबन्ध करे और आज्ञा देवे कि वह एक-एक ग्रामों का पति ग्रामों में नित्यप्रति जो-जो दोष उत्पन्न हों उन-उन को गुप्तता से दश ग्राम के पति को विदित कर दे और वह दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार वीस ग्राम के स्वामी को दश ग्रामों का वर्त्तमान नित्यप्रति जना देवे।।१५।।

और बीस ग्रामों का अधिपति बीस ग्रामों के वर्त्तमान शतग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन करे। वैसे सौ-सौ ग्रामों के पति आप सहस्राधिपति अर्थात् हजार ग्रामों के स्वामी को सौ-सौ ग्रामों के वर्त्तमान प्रतिदिन जनाया करें। (और बीस-बीस ग्राम के पांच अधिपति सौ-सौ ग्राम के अध्यक्ष को) और वे सहस्र-सहस्र के दश अधिपति दशसहस्र के अधिपति को और वे दश-दश हजार के दश अधिपति लक्षग्रामों की राजसभा को प्रतिदिन का वर्त्तमान जनाया करें। और वे सब राजसभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौमचक्रवर्ति महाराजसभा में सब भूगोल का वर्त्तमान जनाया करें।।१६।।

और एक-एक दश-दशसहस्र ग्रामों पर दो सभापति वैसे करें जिन में एक राजसभा में और दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखते रहैं।।१७।।

बड़े-बड़े नगरों में एक-एक विचार करने वाली सभा का सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है वैसा एक-एक घर बनावें, उस में बड़े-बड़े विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें। जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो वैसे-वैसे नियम और विद्या प्रकाशित किया करें।।१८।।

जो नित्य घूमनेवाला सभापति हो उसके आधीन सब गुप्तचर अर्थात् दूतों को रक्खे। जो राजपुरुष और प्रजापुरुषों के साथ नित्य सम्बन्ध रखते हों और वे भिन्न-भिन्न जाति के रहैं, उन से सब राज और राजपुरुषों के सब दोष और गुण गुप्तरीति से जाना करे, जिनका अपराध हो उन को दण्ड और जिन का गुण हो उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे।।१९।।

राजा जिन को प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे वे धार्मिक सुपरीक्षित विद्वान् कुलीन हों उनके आधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरनेवाले चोर डाकुओं को भी नौकर रख के उन को दुष्ट कर्म से बचाने के लिये राजा के नौकर करके उन्हीं रक्षा करने वाले विद्वानों के स्वाधीन करके उन से इस प्रजा की रक्षा यथावत् करे।।२०।।

जो राजपुरुष अन्याय से वादी प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करे उन का सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रक्खे कि जहाँ से पुनः लौटकर न आ सके क्यांेकि यदि उस को दण्ड न दिया जाय तो उस को देख के अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहैं ।।२१।।

परन्तु जितने से उन राजपुरुषों का योगक्षेम भलीभांति हो और वे भलीभांति धनाढ्य भी हों उतना धन वा भूमि राज की ओर से मासिक वा वार्षिक अथवा एक वार मिला करे और जो वृद्ध हों उन को भी आधा मिला करे परन्तु यह ध्यान में रक्खे कि जब तक वे जियें तब तक वह जीविका बनी रहै पश्चात् नहीं, परन्तु इन के सन्तानों का सत्कार वा नौकरी उन के गुण के अनुसार अवश्य देवे और जिस के बालक जब तक समर्थ हों उन की स्त्री जीती हो तो उन सब के निर्वाहार्थ राज्य की ओर से यथायोग्य धन मिला करे। परन्तु जो उस की स्त्री वा लड़के कुकर्मी हो जायें तो कुछ भी न मिले, ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे।।

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा।।१५।।
यदि तत्रपि सम्पश्येद्दोषं संश्रयकारितम्।
सुयुद्धमेव तत्रऽपि निर्विशंक्यन्क्ष्र समाचरेत्।।१६।। मनु०।।

जब राजादि राजपुरुषों को यह बात लक्ष्य में रखने योग्य है जो (आसन) स्थिरता (यान) शत्रु से लड़ने के लिये जाना (सन्धि) उन से मेल कर लेना (विग्रह) दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना (द्वैध०) दो प्रकार की सेना करके स्वविजय कर लेना (संश्रय) और निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का आश्रय लेना ये छः प्रकार के कर्म यथायोग्य कार्य्य को विचार कर उसमें युक्त करना चाहिये।।१।।

राजा जो सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो-दो प्रकार के होते हैं उन को यथावत् जाने।।२।।

(सन्धि) शत्रु से मेल अथवा उस से विपरीतता करे परन्तु वर्त्तमान और भविष्यत् में करने के काम बराबर करता जाय यह दो प्रकार का मेल कहाता है।।३।।
(विग्रह) कार्य सिद्धि के लिये उचित व अनुचित समय में स्वयं किया वा मित्र के अपराध करने वाले शत्रु के साथ विरोध दो प्रकार से करना चाहिये।।४।।
(यान) अकस्मात् कोई कार्य्य प्राप्त होने में एकाकी वा मित्र के साथ मिल के शत्रु की ओर जाना यह दो प्रकार का गमन कहाता है।।५।।
स्वयं किसी प्रकार क्रम से क्षीण हो जाय अर्थात् निर्बल हो जाय अथवा मित्र के रोकने से अपने स्थान में बैठ रहना यह दो प्रकार का आसन कहाता है।।६।।
कार्य्यसिद्धि के लिये सेनापति और सेना के दो विभाग करके विजय करना दो प्रकार का द्वैध कहाता है।।७।।
एक किसी अर्थ की सिद्धि के लिये किसी बलवान् राजा वा किसी महात्मा की शरण लेना जिस से शत्रु से पीड़ित न हो दो प्रकार का आश्रय लेना कहाता है।।८।।
जब यह जान ले कि इस समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और पश्चात् करने से अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगा तब शत्रु से मेल कर के उचित समय तक धीरज करे।।९।।
जब अपनी सब प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न उन्नतिशील और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपने को भी समझे तभी शत्रु से विग्रह (युद्ध) कर लेवे।।१०।।
जब अपने बल अर्थात् सेना को हर्ष और पुष्टियुक्त प्रसन्न भाव से जाने और शत्रु का बल अपने से विपरीत निर्बल हो जावे तब शत्रु की ओर युद्ध करने के लिये जावे।।११।।
जब सेना बल वाहन से क्षीण हो जाय तब शत्रुओं को धीरे-धीरे प्रयत्न से शान्त करता हुआ अपने स्थान में बैठा रहै।।१२।।
जब राजा शत्रु को अत्यन्त बलवान् जाने तब द्विगुणा वा दो प्रकार की सेना करके अपना कार्य्य सिद्ध करे।।१३।।
जब आप समझ लेवे कि अब शीघ्र शत्रुओं की चढ़ाई मुझ पर होगी तभी किसी धार्मिक बलवान् राजा का आश्रय शीघ्र ले लेवे।।१४।।
जो प्रजा और अपनी सेना और शत्रु के बल का निग्रह करे अर्थात् रोके उस की सेवा सब यत्नों से गुरु Σ ँ् सदृश नित्य किया करे।।१५।।

जिस का आश्रय लेवे उस पुरुष के कर्मों में दोष देखे तो वहां भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशंक होकर करे।।१६।।
जो धार्मिक राजा हो उस से विरोध कभी न करे किन्तु उस से सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट प्रबल हो उसी के जीतने के लिये ये पूर्वेक्त प्रयोग करना उचित है।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रेदासीनशत्रवः।।१।।
आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत्।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः।।२।।
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः।
अतीते कार्य्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते।।३।।
यथैनं नाभिसन्दध्युर्मित्रेदासीनशत्रवः।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः।।४।। मनु०।।

नीति को जानने वाला पृथिवीपति राजा जिस प्रकार इस के मित्र, उदासीन (मध्यस्थ) और शत्रु अधिक न हों ऐसे सब उपायों से वर्त्ते।।१।।
सब कार्य्यों का वर्त्तमान में कर्त्तव्य और भविष्यत् में जो-जो करना चाहिये और जो-जो काम कर चुके उन सब के यथार्थता से गुण दोषों को विचारे।।२।।
पश्चात् दोषों के निवारण और गुणों की स्थिरता में यत्न करे। जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करने वाले कर्मों में गुण दोषों का ज्ञाता वर्त्तमान में तुरन्त निश्चय का कर्त्ता और किये हुए कार्यों में शेष कर्त्तव्य को जानता है वह शत्रुओं से पराजित कभी नहीं होता।।३।।
सब प्रकार से राजपुरुष विशेष सभापति राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिस प्रकार राजादि जनों के मित्र उदासीन और शत्रु को वश में करके अन्यथा न करावे, ऐसे मोह में कभी न फ़ंसे, यही संक्षेप से विनय अर्थात् राजनीति कहाती है।।४।।

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च।।१।।
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।
साम्परायिककल्पेन यायाद् अरिपुरं शनैः।।२।।
शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत्।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः।।३।।
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।

वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा।।४।।
यतश्च भयमाशंकेत्ततो विस्तारयेद् बलम्।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्।।५।।
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
यतश्च भयमाशंकेत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्।।६।।
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः।।७।।
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्।।८।।
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले।।९।।
प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्‌ परीक्षयेत्।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि।।१०।।
उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्।।११।।
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।
समवस्कन्दयेत्त्वैनं रात्रौ वित्रसयेत्तथा।।१२।।
प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्मान्यथोदितान्।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह।।१३।।
आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम्।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते।।१४।। मनु०।।

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध और यात्र की सब सामग्री यथाविधि करके सब सेना, यान, वाहन, शस्त्रस्त्रदि पूर्ण लेकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओर के समाचारों को देने वाले पुरुषांे को गुप्त स्थापन करΣ ँ् शत्रुओं की ओर युद्ध करने को जावे।।१।। तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में, दूसरा जल (समुद्र वा नदियों) में, तीसरा आकाशमार्गों को युद्ध बनाकर भूमिमार्ग में रथ, अश्व, हाथी, जल में नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े, शस्त्र और अस्त्र खानपानादि सामग्री को यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित्त को प्रसिद्ध करके शत्रु के नगर के समीप धीरे-धीरे जावे।।२।। जो भीतर से शत्रु से मिला हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रक्खे, गुप्तता

से शत्रु को भेद देवे, उस के आने जाने में उस से बात करने में अत्यन्त सावधानी रक्खे, क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये।।३।।
सब राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य प्रजाजनों को सिखावे जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार लड़ लड़ा जानते हैं। जब शिक्षा करे तब (दण्डव्यूह) दण्डा के समान सेना को चलावे (शकट०) जैसा शकट अर्थात् गाड़ी के समान (वराह०) जैसे सुअर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते हैं और कभी-कभी सब मिलकर झुण्ड हो जाते हैं वैसे (मकर०) जैसा मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना को बनावे (सूचीव्यूह) जैसे सूई का अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और उस से सूत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षा से सेना को बनावे और जैसे (नीलकण्ठ) ऊपर नीचे झपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे।।४।।
जिधर भय विदित हो उसी ओर सेना को पफ़ैलावे, सब सेना के पतियों को चारों ओर रख के (पद्मव्यूह) अर्थात् पद्माकार चारों ओर से सेनाओं को रखके मध्य में आप रहै।।५।।
सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञा का देने और सेना के साथ लड़ने लड़ाने वाले वीरों को आठों दिशाओं में रक्खे, जिस ओर से लड़ाई होती हो उसी ओर से सब सेना का मुख रक्खे परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे नहीं तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु की घात होने का सम्भव होता है।।६।।
जो गुल्म अर्थात् दृढ़ स्तम्भों के तुल्य युद्धविद्या से सुशिक्षित धार्मिक स्थित होने और युद्ध करने में चतुर भयरहित और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो उन को चारों ओर सेना के रक्खे।।७।।
जो थोड़े पुरुषों से बहुतों के साथ युद्ध करना हो तो मिलकर लड़ावें और काम पड़े तो उन्हीं को झट पफ़ैला देवे। जब नगर दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तो सब 'सूचीव्यूह' अथवा 'वज्रव्यूह' जैसे दुधारा खड्ग, दोनों ओर युद्ध करते जायें और प्रविष्ट भी होते चलें वैसे अनेक प्रकार के व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावें जो सामने (शतघ्नी) तोप वा (भुशुण्डी) बन्दूक छूट रही हो तो 'सर्पव्यूह' अर्थात् सर्प के समान सोते सोते चले जायें, जब तोपों के पास पहुंचें तब उनको मार वा पकड़ तोपों का मुख शत्रु की ओर पफ़ेर उन्हीं तोपों से वा बन्दूक आदि से उन शत्रुओं को मारें अथवा वृद्ध पुरुषों को तोपों के मुख के सामने घोड़ों पर सवार करा दौड़ावें और मारें, बीच में अच्छे-अच्छे

सवार रहैं, एक बार धावा कर शत्रु की सेना को छिन्न-भिन्न कर पकड़ लें अथवा भगा दें।।८।।
जो समभूमि में युद्ध करना हो तो रथ घोड़े और पदातियों से और जो समुद्र में युद्ध करना हो तो नौका और थोड़े जल में हाथियों पर, वृक्ष और झाड़ी में बाण तथा स्थल बालू में तलवार और ढाल से युद्ध करें करावें।।९।।
जिस समय युद्ध होता हो उस समय लड़ने वालों को उत्साहित और हर्षित करें। जब युद्ध बन्ध हो जाय तब जिस से शौर्य और युद्ध में उत्साह हो वैसे वक्तृत्वों से सब के चित्त को खान-पान, अस्त्र-शस्त्र सहाय और औषधादि से प्रसन्न रक्खें। व्यूह के विना लड़ाई न करे न करावे, लड़ती हुई अपनी सेना की चेष्टा को देखा करे कि ठीक-ठीक लड़ती है वा कपट रखती है।।१०।।
किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेर कर रोक रक्खें और इसके राज्य को पीड़ित कर शत्रु के चारा, अन्न, जल और इन्धन को नष्ट दूषित कर दे।।११।।
शत्रु के तालाब, नगर के प्रकोट और खाई को तोड़ फ़ोड़ दे, रात्रि में उन को (त्रस) भय देवे और जीतने का उपाय करे।।१२।।
जीत कर उन के साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे और जो उचित समय समझे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा कर दे और उस से लिखा लेवे कि तुम को हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है उस के अनुसार चल के न्याय से प्रजा का पालन करना होगा ऐसे उपदेश करे और ऐसे पुरुष उनके पास रक्खे कि जिससे पुनः उपद्रव न हो और जो हार जाय उसका सत्कार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थों के दान से करे और ऐसा न करे कि जिस से उस का योगक्षेम भी न हो, जो उस को बन्दीगृह करे तो भी उस का सत्कार यथायोग्य रक्खे जिस से वह हारने के शोक से रहित होकर आनन्द में रहे।।१३।।
क्योंकि संसार में दूसरे का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना प्रीति का कारण है और विशेष करके समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजित Σ ँ् मनोवाञ्छित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है और कभी उस को चिड़ावे नहीं, न हंसी और ठट्ठा करे, न उस के सामने हमने तुझ को पराजित किया है ऐसा भी कहै, किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा करे।।१४।।
हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्।।१।।

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते।।२।।
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः।।३।।
आर्य्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः।।४।। मनु०।।

मित्र का लक्षण-यह है-राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसा नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्ध करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होΣ ँ् बढ़ता है।।१।।

धर्म को जानने और कृतज्ञ अर्थात् किये हुए उपकार को सदा मानने वाले प्रसन्नस्वभाव अनुरागी स्थिरारम्भी लघु छोटे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है।।२।।

सदा इस बात को दृढ़ रक्खे कि कभी बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा वह दुःख पावेगा।।३।।

उदासीन का लक्षण-जिस में प्रशंसित गुणयुक्त अच्छे बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता करुणा भी, स्थूल लक्ष्य अर्थात् ऊपर-ऊपर की बातों को निरन्तर सुनाया करे वह उदासीन कहाता है।।४।।

एवं सर्वमिदं राजा सह सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत्।।१।।

पूर्वोक्त प्रातःकाल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासन अग्निहोत्र कर वा करा सब मन्त्रियों से विचार कर सभा में जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षों के साथ मिल, उन को हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात् कवायद कर करा, सब घोड़े, हाथी, गाय आदि स्थान शस्त्र और अस्त्र का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोषों को देख सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो कुछ उनमें खोट हों उन को निकाल, व्यायामशाला में जा, व्यायाम करके भोजन के लिये 'अन्तःपुर' अर्थात् पत्नी आदि के निवासस्थान में प्रवेश करे और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबल पराक्रमवर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकार के अन्न व्यञ्जन पान आदि सुगन्धित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिस से सदा सुखी रहै, इस प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करे।।१।।

प्रजा से कर लेने का प्रकार-

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा।। मनु०।।
जो व्यापार करने वाले वा शिल्पी को सुवर्ण चांदी का जितना लाभ हो, उस में से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा बारहवां भाग लिया करे, और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार लेवे कि जिस से किसान आदि खाने पीने
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते।।१४।। मनु०।।
सभा राजा और राजपुरुष सब लोग सदाचार और शास्त्रव्यवहार हेतुओं से निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मार्गों में विवादयुक्त कर्मों का निर्णय प्रतिदिन किया करें और जो-जो नियम शास्त्रेक्त न पावें और उन के होने की आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बांवमें कि जिससे राजा और प्रजा की उन्नति हो।।१।।
अठारह मार्ग ये हैं-उन में से
१-(ऋणादान) किसी से ऋण लेने देने का विवाद।
२-(निक्षेप) धरावट अर्थात् किसी ने किसी के पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना। ३-(अस्वामिविक्रय) दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेच लेवे।
४-(सम्भूय च समुत्थानम्) मिल मिला के किसी पर अत्याचार करना।
५-(दत्तस्यानपकर्म च) दिये हुए पदार्थ का न देना।।२।।
६-(वेतनस्यैव चादानम्) वेतन अर्थात् किसी की 'नौकरी' में से ले लेना वा कम देना अथवा न देना।
७-(प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्त्तना।
८-(क्रय-विक्रयानुशय) अर्थात् लेन देन में झगड़ा होना।
९-पशु के स्वामी और पालने वाले का झगड़ा।।३।।
१०-सीमा का विवाद।
११-किसी को कठोर दण्ड देना।
१२-कठोर वाणी का बोलना।
१३-चोरी डाका मारना।
१४-किसी काम को बलात्कार से करना।
१५-किसी की स्त्री वा पुरुष का व्यभिचार होना।।४।।
१६-स्त्री और पुरुष के धर्म में व्यतिक्रम होना।

१७-विभाग अर्थात् दायभाग में वाद उठना।
१८-द्यूत अर्थात् जड़ पदार्थ और समाह्वय अर्थात् चेतन को दाव में धर के जुआ खेलना। ये अठारह प्रकार के परस्पर विरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं।।५।।
इन व्यवहारों में बहुत से विवाद करने वाले पुरुषों के न्याय को सनातनधर्म के आश्रय करके किया करे अर्थात् किसी का पक्षपात कभी न करे।।६।।
जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है जो उसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलंक को निकालना और अधर्म का छेदन करते अर्थात् धर्मी को मान अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता उस सभा में जितने सभासद् हैं वे सब घायल के समान समझे जाते हैं।।७।।
धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले। जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी होता है।।८।।
जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं जानो उन में कोई भी नहीं जीता।।९।।
मारा हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है इसलिये धर्म का हनन कभी न करना इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी हम को न मार डाले।।१०।।
जो सब ऐश्वर्यों के देने और सुखों की वर्षा करने वाला धर्म है उस का लोप करता है उसी को विद्वान् लोग वृषल अर्थात् शूद्र और नीच जानते हैं। इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का लोप करना उचित नहीं।।११।।
इस संसार में एक धर्म ही सुहृद् है जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है और सब पदार्थ वा संगी शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त होते हैं अर्थात् सब का संग छूट जाता है परन्तु धर्म का संग कभी नहीं छूटता।।१२।।
जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है वहां अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं उनमें एक अधर्म के कर्त्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासदों और चौथा पाद अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है।।१३।।
जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य को मान्य होता है वहां राजा और सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं पाप के कर्त्ता ही को पाप प्राप्त होता है।।१४।।

अब साक्षी कैसे करने चाहियें-

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्येषु साक्षिणः।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्।।१।।
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः।।२।।
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः।।३।।
बहुत्वं परिगृह्णीयात् साक्षिद्वैधे नराधिपः।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान्।।४।।
समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते।।५।।
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि ।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते।।६।।
स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम्।।७।।
सभान्तःसाक्षिणः प्राप्तान् अर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन्।।८।।
यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिश्चेष्टितं मिथः।
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता।।९।।
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता।।१०।।
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः।।११।।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्।।१२।।
यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः।।१३।।
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणं मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः।।१४।। मनु०।।

सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को जानने वाले, लोभरहित, सत्यवादियों को न्यायव्यवस्था में साक्षी करे इन से विपरीतों को कभी न करे।।१।।
स्त्रियों की साक्षी स्त्री, द्विजों के द्विज, शूद्रों के शूद्र और अन्त्यजों के अन्त्यज साक्षी हों।।२।।
जितने बलात्कार काम, चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपातन रूप अपराध हैं उन में साक्षी की परीक्षा न करे और अत्यावश्यक भी न समझे क्योंकि ये काम सब गुप्त होते हैं।।३।।
दोनों ओर के साक्षियों में से बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियों में उत्तम गुणी पुरुष की साक्षी के अनुकूल और दोनों के साक्षी उत्तम गुणी और तुल्य हों तो द्विजोत्तम अर्थात् ऋषि महर्षि और यतियों की साक्षी के अनुसार न्याय करे।।४।।
दो प्रकार से साक्षी होना सिद्ध होता है एक साक्षात् देखने और दूसरा सुनने से; जब सभा में पूछें तब जो साक्षी सत्य बोलें वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न होवें और जो साक्षी मिथ्या बोलें वे यथायोग्य दण्डनीय हों।।५।।
जो राजसभा वा किसी उत्तम पुरुषों की सभा में साक्षी देखने और सुनने से विरुद्ध बोले तो वह (अवाङ्नरक) अर्थात् जिह्वा के छेदन से दुःखरूप नरक को वर्त्तमान समय में प्राप्त होवे और मरे पश्चात् सुख से हीन हो जाय।।६।।
साक्षी के उस वचन को मानना कि जो स्वभाव ही से व्यवहार सम्बन्धी बोले और सिखाये हुए इस से भिन्न जो-जो वचन बोले उस-उस को न्यायाधीश व्यर्थ समझें।।७।।
जब अर्थी (वादी) और प्रत्यर्थी (प्रतिवादी) के सामने सभा के समीप प्राप्त हुए साक्षियों को शान्तिपूर्वक न्यायाधीश और प्राड्विवाक अर्थात् वकील वा वैरिस्टर इस प्रकार से पूछें।।८।।
हे साक्षि लोगो ! इस कार्य्य में इन दोनों के परस्पर कर्मों में जो तुम जानते हो उस को सत्य के साथ बोलो-तुम्हारी इस कार्य में साक्षी है।।९।।
जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है। इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्त्ति को प्राप्त होता है, क्योंकि जो यह वाणी है वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है। जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है।।१०।।

सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है, इस से सब वर्णों में साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है।।११।।
आत्मा का साक्षी आत्मा और आत्मा की गति आत्मा है इसको जान के हे पुरुष ! तू सब मनुष्यों का उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् सत्यभाषण जो कि तेरे आत्मा मन वाणी में है वह सत्य और जो इस से विपरीत है वह मिथ्याभाषण है।।१२।।
जिस बोलते हुए पुरुष का विद्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर का जानने हारा आत्मा भीतर शंकह्ण को प्राप्त नहीं होता उस से भिन्न विद्वान् लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते।।१३।।
हे कल्याण की इच्छा करनेहारे पुरुष ! जो तू 'मैं अकेला हूं' ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामीरूप से परमेश्वर पुण्य पाप को देखने वाला मुनि स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर।।१४।।
लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रत्कामात्त्रफ़ोधात्तथैव च।
अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते।।१।।
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।।२।।
लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वन्तु साहसम्।
भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्ड्यौ मैत्रत्पूर्वं चतुर्गुणम्।।३।।
कामाद्दशगुणं पूर्वं त्रफ़ोधात्तु त्रिगुणं परम्।
अज्ञानाद् द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु।।४।।
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च।।५।।
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्।।६।।
अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्त्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यञ्च परत्रपि तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।७।।
अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महद् आप्नोति नरकं चैव गच्छति।।८।।
वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्।।९।। मनु०।।

जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे।।१।।
इनमें से किसी स्थान में साक्षी झूठ बोले उस को वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड दिया करे।।२।।
जो लोभ से झूठी साक्षी देवे उस से १५।।=)(पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड लेवे, जो मोह से झूठी साक्षी देवे उस से ३=) (तीन रुपये दो आने) दण्ड लेवे, जो भय से मिथ्या साक्षी देवे उस से ६।) (सवा छः रुपये) दण्ड लेवे और जो पुरुष मित्रता से झूठी साक्षी देवे उससे १२।।) (साढ़े बारह रुपये) दण्ड लेवे।।३।।
जो पुरुष कामना से मिथ्या साक्षी देवे उससे २५) (पच्चीस रुपये) दण्ड लेवे, जो पुरुष क्रोध से झूठी साक्षी देवे उससे ४६।।।=) छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे, जो पुरुष अज्ञानता से झूठी साक्षी देवे उससे ३) (तीन रुपये) दण्ड लेवे और जो बालकपन से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १।।-) (एक रुपया नौ आने) दण्ड लेवे।।
४।। दण्ड के उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हाथ, पग, आंख, नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर दण्ड दिया जाता है।।५।।
परन्तु जो-जो दण्ड लिखा है और लिखेंगे जैसे लोभ के साक्षी देने में पन्द्रह रुपये दश आने दण्ड लिखा है परन्तु जो अत्यन्त निर्धन हो तो उस से कम और धनाढ्य हो तो उससे दूना, तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे अर्थात् जैसा देश, जैसा काल और जैसा पुरुष हो उस का जैसा अपराध हो वैसा ही दण्ड करे।।६।।
क्योंकि इस संसार में जो अधर्म से दण्ड करना है वह पूर्व प्रतिष्ठा वर्त्तमान और भविष्यत् में और परजन्म में होने वाली कीर्ति का नाश करनेहारा है और परजन्म में भी दुःखदायक होता है इसलिये अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर न करे।।७।।
जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता और जिस को दण्ड देना न चाहिये उस को दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है इसलिये जो अपराध करे उस को सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे।।८।।
प्रथम वाणी का दण्ड अर्थात् उस की 'निन्दा' दूसरा 'धिव्फ़' दण्ड अर्थात् तुझ को धिक्कार है तूने ऐसा बुरा काम क्यों किया, तीसरा उस से 'धन लेना' और 'वध' दण्ड अर्थात् उस को कोड़ा या बेंत से मारना वा शिर काट देना।।९।।

येन येन यथांगेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः।।१।।
पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्य्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।२।।
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा।।३।।
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च।।४।।
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः।।५।।
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्।।६।।
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः।।७।।
साहसे वर्त्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति।।८।।
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्।।९।।
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।।१०।।
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मृत्युमृच्छति।।११।।
यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्।।१२।। मनु०।।

चोर जिस प्रकार जिस-जिस अंग्य से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है उस-उस अंग को सब मनुष्यों की शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे।।१।।

चाहे पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता वह राजा का अदण्ड्य नहीं होता अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे।।२।।

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होवे अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये। मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुणा उससे न्यून सात सौ गुणा और उस से भी न्यून को छः सौ गुणा इसी प्रकार उत्तर-उत्तर अर्थात् जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उस को आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिये। क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजा पुरुषों का नाश कर देवे, जैसे सिह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है। इसलिये राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्य्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिये।।३।।

वैसे हीे जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा।।४।।

ब्राह्मण को चौसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड होना चाहिये अर्थात् जितना जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उस को अपराध में उतना हीे अधिक दण्ड होना चाहिए।।५।।

राज्य का अधिकारी धर्म्म और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला राजा बलात्कार काम करने वाले डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करे।।६।।

साहसिक पुरुष का लक्षण-

जो दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, विना अपराध के दण्ड देने वाले से भी साहस बलात्कार काम करने वाला है वह अतीव पापी दुष्ट है।।७।।

जो राजा साहस में वर्त्तमान पुरुष को न दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है।।८।।

न मित्रता, न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी जो राजा सब प्राणियों को दुःख देने वाले साहसिक मनुष्य को बन्धन छेदन किये विना कभी न छोड़े।।९।।

चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रदि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रें का श्रोता क्यों न हो, जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्त्तमान, दूसरे को विना अपराध मारनेवाले हैं उन को विना विचारे मार डालना अर्थात् मार के पश्चात् विचार करना चाहिये।।१०।।

दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता, चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है।।११।।

जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन बोलनेहारा, न साहसिक डाकू और न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भंग करने वाला है वह राजा अतीव श्रेष्ठ है।।१२।।

(प्रश्न) जो राजा वा राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उस को कौन दण्ड देवे?

(उत्तर) सभा, अर्थात् उन को तो प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये।

(प्रश्न) राजादि उन से दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे?

(उत्तर) राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है। जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें, अर्थात् उस श्लोक के अर्थ का स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड हीे का नाम राजा और धर्म है जो उस का लोप करता है उस से नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ?

(प्रश्न) यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अंग का बनानेहारा वा जिलानेवाला नहीं है, इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिये ?

(उत्तर) जो इस को कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्ममार्ग में स्थित रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सब के भाग में न आवेगा। और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगें। वह जिस को तुम सुगम दण्ड कहते हो वह क्रोड़ों गुणा अधिक होने से क्रोणों गुणा कठिन होता है क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा-थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा अर्थात् जैसे एक को मन भर दण्ड हुआ और दूसरे को पाव भर तो पाव भर अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आध पाव बीस सेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं? जैसे एक को मन और सहस्र मनुष्यों को पाव-पाव दण्ड हुआ तो ६। सवा छः मन मनुष्य जाति पर दण्ड होने से अधिक और यही कड़ा तथा वह एक मन दण्ड न्यून और सुगम होता है। जो लम्बे मार्ग में समुद्र की खाड़ियां वा नदी तथा बड़े नदों में जितना लम्बा देश हो उतना कर स्थापन करे और महासमुद्र में निश्चित कर स्थापन नहीं हो सकता

किन्तु जैसा अनुकूल देखे कि जिस से राजा और बड़े-बड़े नौकाओं के समुद्र में चलाने वाले दोनों लाभ युक्त हों वैसी व्यवस्था करे। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चलते थे, वे झूठे हैं। और देश-देशान्तर द्वीप-द्वीपान्तरों में नौका से जानेवाले अपने प्रजास्थ पुरुषों की सर्वत्र रक्षा कर उन को किसी प्रकार का दुःख न होने देवे।।३।।
राजा प्रतिदिन कर्मों की समाप्तियों को, हाथी, घोड़े आदि वाहनों को, नियत लाभ और खरच, 'आकर' रत्नादिकों की खानें और कोष (खजाने) को देखा करे।।४।।
राजा इस प्रकार सब व्यवहारों को यथावत् समाप्त करता कराता हुआ सब पापों को छुड़ा के परमगति मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।।५।।
(प्रश्न) संस्कृतविद्या में पूरी-पूरी राजनीति है वा अधूरी?
(उत्तर) पूरी है, क्योंकि जो-जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह सब संस्कृत विद्या से ली है। और जिन का प्रत्यक्ष लेख नहीं है उनके लिये-
प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।। मनु०।।
जो-जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें उन-उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बांधा करे। परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे कि जहाँ तक बन सके वहां तक बाल्यावस्था में विवाह न करने देवें। युवावस्था में भी विना प्रसन्नता के विवाह न करना कराना और न करने देना। ब्रह्मचर्य का यथावत् सेवन करना कराना। व्यभिचार और बहुविवाह को बन्ध करें कि जिस से शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहै। क्योंकि जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाये जायें और शरीर का बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान् पुरुष ज्ञानी और सैकड़ों विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही े का बल बढ़ाया जाय, आत्मा का नहीं तो भी राज्यपालन की उत्तम व्यवस्था विना विद्या के कभी नहीं हो सकती। विना व्यवस्था के सब आपस में ही पफ़ूट-टूट, विरोध , लड़ाई-झगड़ा, करके नष्ट भ्रष्ट हो जायें। इसलिये सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अतिविषयासक्ति है वैसा और कोई नहीं है।
विशेषतः क्षत्रियों को दृढांग और बलयुक्त होना चाहिये क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राजधर्म ही नष्ट हो जायगा और इस पर भी ध्यान रखना चाहिये कि **'यथा राजा तथा प्रजाः'** जैसा राजा है वैसी ही उस की प्रजा होती

है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बनें ।

यह संक्षेप से राजधर्म का वर्णन यहां किया है। विशेष वेद, मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय में और शुक्रनीति तथा विदुरप्रजागर और महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देख कर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य करें और यह समझें कि-**'वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम'** यह यजुर्वेद का वचन है। हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उस के किकर भृत्यवत् हैंे। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे।

अब आगे ईश्वर और वेदविषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये
षष्ठः समुल्लासः सम्पूर्णः।।६।।

अथ सप्तमसमुल्लासारम्भः

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।।१।।

- ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९।।

ईशा वास्य मिदँ् सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।२।।

-यजु० अ० ४०। मं० १।।

अ हम्भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ।।३।।

- **ऋ०** मं० १०। सू० ४८। मं० १।।

अ हमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ।।४।।

- **ऋ०** मं० १०। सू० ४८। मं० ५।।

अ हं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अ हं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ।।५।।

- **ऋ०** मं० १०। सू० ४९। मं० १।।

(ऋचो अक्षरे) इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्मचर्य्याश्रम की शिक्षा में लिख चुके हैं अर्थात् जो सब दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव, विद्यायुक्त और जिस में पृथिवी सूर्य्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक सब देवों का देव परमेश्वर है उस को जो मनुष्य न जानते न मानते और उस का ध्यान नहीं करते वे नास्तिक मन्दमति सदा दुःखसागर में डूबे ही रहते हैं। इसलिये सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

(प्रश्न) वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो वा नहीं?

(उत्तर) नहीं मानते क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिस से अनेक ईश्वर सिद्ध हों। किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

(प्रश्न) वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं उस का क्या अभिप्राय है?

(उत्तर) देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसी कि पृथिवी, परन्तु इस को कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो ! इसी मन्त्र में कि 'जिस में सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है।' यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसीलिये कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है।

जो **'त्रयस्त्रिंशत्त्रिंशता०'** इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं इस की व्याख्या शतपथ में की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से आठ वसु। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन कराने वाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं।

बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिस से वायु वृष्टि जल ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं। इन का स्वामी और सब से बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव शतपथ के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है। जो ये इन शास्त्रें को देखते तो वेदों में अनेक ईश्वर माननेरूप भ्रमजाल में गिरकर क्यों बहकते? ।।१।।

हे मनुष्य! जो कुछ इस संसार में जगत् है उस सब में व्याप्त होकर जो नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है। उस से डर कर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय के त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग।।२।।

ईश्वर सब को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! मैं ईश्वर सब के पूर्व विद्यमान सब जगत् का पति हूं। मैं सनातन जगत्कारण और सब धनों का विजय करनेवाला और दाता हूं। मुझ ही को सब जीव जैसे पिता को सन्तान पुकारते हैं वैसे पुकारें। मैं सब को सुख देनेहारे जगत् के लिये नाना प्रकार के भोजनों का विभाग पालन के लिये करता हूं।।३।।

मैं परमैश्वर्य्यवान् सूर्य के सदृश सब जगत् का प्रकाशक हूं। कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूं। मैं ही जगत् रूप धन का

निर्माता हूं। सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले मुझ ही को जानो। हे जीवो ! ऐश्वर्य प्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझ से मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत होओ।।४।।

हे मनुष्यो! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं। मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझ को वह वेद यथावत् कहता उस से सब के ज्ञान को मैं बढ़ाता; मैं सत्पुरुष का प्रेरक यज्ञ करनेहारे को पफ़लप्रदाता और इस विश्व में जो कुछ है उस सब कार्य्य का बनाने और धारण करनेवाला हूं। इसलिये तुम लोग मुझ को छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो।।५।।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यह यजुर्वेद का मन्त्र है-

हे मनुष्यो! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्य्यादि तेजवाले लोकों का उत्पत्ति स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा उसका स्वामी था, है और होगा। वह पृथिवी से लेके सूर्य्यलोक पर्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है। उस सुखस्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें वैसे तुम लोग भी करो।

(प्रश्न) आप ईश्वर-ईश्वर कहते हो परन्तु इसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो?

(उत्तर) सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

(प्रश्न) ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते।

(उत्तर) इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यव- सायात्मकं प्रत्यक्षम्।। यह गौतम महर्षिकृत न्यायदर्शन का सूत्र है।

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु वह निर्भ्रम हो। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है

गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उस का आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है, वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने

का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की ‘इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उस को उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है।

(प्रश्न) ईश्वर व्यापक है वा किसी देशविशेष में रहता है?

(उत्तर) व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता। अप्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का असम्भव है।

(प्रश्न) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं?

(उत्तर) है।

(प्रश्न) ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं। जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाय। क्योंकि न्याय उस को कहते हैं कि जो कर्मों के अनुसार न अधिक न न्यून सुख दुःख पहुंचाना और दया उस को कहते हैं जो अपराधी को विना दण्ड दिये छोड़ देना।

(उत्तर) न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्ध होकर दुःखों को प्राप्त न हों वही दया कहाती है। जो पराये दुःखों का छुड़ाना और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुम ने किया है वह ठीक नहीं क्योंकि जिस ने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उस को उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश हो जाय। क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने से सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है वह दया किस प्रकार हो सकती है? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना डाकू पर और उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

(प्रश्न) फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए? क्योंकि उन दोनांे का अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है। इसलिये एक शब्द का रहना

तो अच्छा था। इस से क्या विदित होता है कि दया और न्याय का एक प्रयोजन नहीं है।
(उत्तर) क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अनेक अर्थ नहीं होते?
(प्रश्न) होते हैं।
(उत्तर) तो पुनः तुम को शंका क्यों हुई?
(प्रश्न) संसार में सुनते हैं इसलिये।
(उत्तर) संसार में तो सच्चा झूठा दोनों सुनने में आता है परन्तु उस का विचार से निश्चय करना अपना काम है।
देखो! ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिस ने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत् में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रक्खे हैं। इस से भिन्न दूसरी बड़ी दया कौन सी है? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सब को सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन छेदनादि यथावत् दण्ड देना न्याय कहाता है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुःखों से पृथक् कर देना।
(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार?
(उत्तर) निराकार। क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते। क्योंकि परिमित वस्तु में गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इस से यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उस को संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहै कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसलिए परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।
(प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं?
(उत्तर) है। परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति,

पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किञ्चित् भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

(प्रश्न) हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहै सो करे क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है।

(उत्तर) वह क्या चाहता है? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयम् अविद्वान्, चोरी, व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी हो सकता है? जैसे ये काम ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना कि वह सब कुछ कर सकता है, यह कभी नहीं घट सकता। इसीलिए सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हम ने कहा वही ठीक है।

(प्रश्न) परमेश्वर आदि है वा अनादि?

(उत्तर) अनादि अर्थात् जिस का आदि कोई कारण वा समय न हो उस को अनादि कहते हैं। इत्यादि सब अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है देख लीजिये।

(प्रश्न) परमेश्वर क्या चाहता है?

(उत्तर) सब की भलाई और सब के लिए सुख चाहता है परन्तु स्वतन्त्रता के साथ किसी को विना पाप किये पराधीन नहीं करता।

(प्रश्न) परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए वा नहीं?

(उत्तर) करनी चाहिये।

(प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करनेवाले का पाप छुड़ा देगा?

(उत्तर) नहीं।

(प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना?

(उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है।

(प्रश्न) क्या है?

(उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उस के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

(प्रश्न) इनको स्पष्ट करके समझाओ।

(उत्तर) जैसे-

स पयर्◌्◌ागाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ◌्शुद्धमपापविद्धम् ।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्य दधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।१।। -यजु० अ० ४०। मं० ८।।

ईश्वर की स्तुति-वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। यह **सगुण स्तुति** अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण; (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण व जन्म नहीं लेता, जिस में छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिस में क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि जिस-जिस राग, द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह **निर्गुण स्तुति** है। इस से फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है। प्रार्थना-

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।१।।

-यजु० अ० ३२। मं० १४।।

तेजोऽसि तजो मयि धिह । वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि ।

बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽ स्योजो मयि धेहि ।

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ।।२।।

-यजुः अ० १९। मं० ९।।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दवैं तदु सुप्तस्य तथैवैत ।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।३।।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।४।।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।

यस्मान्नऽऋृते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।५।।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।६।।

यस्मिन्नचृ: साम यजꣳूषि यस्मिन्प्ि्रतष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तँ्सर्वमोत्ां प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।७।।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।८।।

-यजु० अ० ३४। मं० १। २। ३। ४। ५। ६।।

हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आप की कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हम को इसी वर्त्तमान समय में आप बुद्धिमान् कीजिये।।१।।

आप प्रकाशस्वरूप हैं कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रम युक्त हैं इसलिये मुझ में भी कृपाकटाक्ष से पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं इसलिये मुझ में भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, मुझ को भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं, मुझ को भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा, स्तुति और स्वअपराधियों का सहन करने वाले हैं, कृपा से मुझ को भी वैसा ही कीजिये।।२।।

हे दयानिधे! आप की कृपा से जो मेरा मन जागते में दूर-दूर जाता, दिव्यगुणयुक्त रहता है, और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर-दूर जाने के समान व्यवहार करता सब प्रकाशकों का प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसंकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का संकल्प करनेहारा होवे। किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे।।३।।

हे सर्वान्तर्यामी! जिससे कर्म करनेहारे धैर्ययुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादि में कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजा के भीतर रहनेवाला है, वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे।।४।।

जो उत्कृष्ट ज्ञान और दूसरे को चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है और जो प्रजाओं में भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता, वह मेरा मन शुद्ध गुणों की इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहै।।५।।

हे जगदीश्वर! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिस में ज्ञान और क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिस से बढ़ाते हैं, वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से पृथक् रहै।।६।।

हे परम विद्वन् परमेश्वर! आप की कृपा से मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरा में आरा लगे रहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और जिस में अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिस में सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्या का अभाव कर विद्याप्रिय सदा रहै।।७।।

हे सर्वनियन्ता ईश्वर! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथि के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर-उधर डुलाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेग वाला है, वह सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक के धर्मपथ में सदा चलाया करे। ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये।।८।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ।।१।।

-यजु० अ० ४०। मं० १६।।

हे सुख के दाता स्वप्रकाशस्वरूप सब को जाननेहारे परमात्मन्! आप हम को श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हम में कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है उस से पृथक् कीजिये। इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि हम को पवित्र करें।।१।।

मा नो महान्तमुत मा नोऽअर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।।१।। -यजु० अ० १६। मं० १५।।

हे रुद्र! (दुष्टों को पाप के दुःखस्वरूप फल को देके रुलाने वाले परमेश्वर) आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ, माता, पिता और प्रिय बन्धुवर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये। ऐसे मार्ग से हम को चलाइये जिस से हम आपके दण्डनीय न हों।।१।।

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।।
-शतपथ ब्रा०।।

हे परमगुरो परमात्मन्! आप हम को असत् मार्ग से पृथक़ कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये। अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये और मृत्यु रोग से पृथक़ करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत को प्राप्त कीजिये। अर्थात् जिस-जिस दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर और अपने को भी पृथक़ मान के परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है वह विधि निषेधमुख होने से सगुण, निर्गुण प्रार्थना। जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उस को वैसा ही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे उस के लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे। अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।

ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उस को स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझ को सब से बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायँ इत्यादि, क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिए प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश कर दे ? जो कोई कहै कि जिस का प्रेम अधिक उस की प्रार्थना सफल हो जावे । तब हम कह सकते हैं कि जिस का प्रेम न्यून हो उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते-करते कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा-हे परमेश्वर! आप हम को रोटी बना कर खिलाइये, मकान में भफ़ाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं वे महामूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उस को जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा। जैसे-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ्समाः ।।२।। य० अ० ४० । मं० २

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो। देखो! सृष्टि के बीच में जितने प्राणी हैं अथवा अप्राणी हैं, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते

ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते घटते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य करते हैं और अन्य आलसी को नहीं। देखने की इच्छा करने और नेत्र वाले को दिखलाते हैं अन्धे को नहीं। इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उस को गुड़ प्राप्त वा उस को स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उस को शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।

अब तीसरी उपासना-

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।।१।।

यह उपनिषत् का वचन है।

जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिस ने लगाया है उस को जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है। उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उस को सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामीरूप से प्रत्यक्ष के लिये जो-जो काम करना होता है वह-वह सब करना चाहिये। अर्थात्-

तत्रऽहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः।।

इत्यादि सूत्र पातञ्जलयोगशास्त्र के हैं।

जो उपासना का आरम्भ करना चाहै उस के लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रक्खे, सर्वदा सब से प्रीति करे। सत्य बोले। मिथ्या कभी न बोले। चोरी न करे। सत्य व्यवहार करे। जितेन्द्रिय हो। लम्पट न हो और निरभिमानी हो। अभिमान कभी न करे। ये पांच प्रकार के यम मिल के उपासनायोग का प्रथम अंग है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। -योग सू०।।

राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहै। धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे। प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे। सदा दुःख सुखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे, अधर्म का नहीं। सर्वदा सत्य शास्त्रें को पढ़े पढ़ावे। सत्पुरुषों का

संग करे और 'ओ३म्' इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार करे नित्यप्रति जप किया करे। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकार के नियमों को मिला के उपासनायोग का दूसरा अंग कहाता है। इसके आगे छः अंग योगशास्त्र वा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका[१] में देख लेवें। जब उपासना करना चाहैं तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो कर संयमी होवें। जब इन साधनों को करता है तब उस का आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है। वहां सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान, अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थित हो जाना निर्गुणोपासना कहाती है।

१- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय में इनका वर्णन है।

इसका फल-जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इस से इस का फल पृथक् होगा परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा, कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं, उस का गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना, कृतघ्नता और मूर्खता है।

(प्रश्न) जब परमेश्वर के श्रोत्र नेत्रदि इन्द्रियां नहीं हैं फिर इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है?

(उत्तर)

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।।१।।

यह उपनिषत् का वचन है।

परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब का रचन, ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान्; चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को यथावत् देखता; श्रोत्र नहीं तथापि सब की बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उस को अवधिसहित जाननेवाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सब से श्रेष्ठ सब में पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरण के विना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

(प्रश्न) उस को बहुत से मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते हैं?

(उत्तर)

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।१।।

यह उपनिषत् का वचन है।

परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उस को करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उस के तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तमशक्ति अर्थात् जिस में अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उस में सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न कर सकता। इसलिये वह विभु तथापि चेतन होने से उस में क्रिया भी है।

(प्रश्न) जब वह क्रिया करता होगा तब अन्तवाली क्रिया होती होगी वा अनन्त?

(उत्तर) जितने देश काल में क्रिया करनी उचित समझता है उतने ही देश काल में क्रिया करता है। न अधिक न न्यून, क्योंकि वह विद्वान् है।

(प्रश्न) परमेश्वर अपना अन्त जानता है वा नहीं?

(उत्तर) परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है। क्योंकि ज्ञान उस को कहते हैं कि जिस से ज्यों का त्यों जाना जाय। अर्थात् जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार जानने का नाम ज्ञान है। जब परमेश्वर अनन्त है तो उस को अनन्त ही जानना ज्ञान, उस के विरुद्ध अज्ञान अर्थात् अनन्त को सान्त और सान्त को अनन्त जानना भ्रम कहाता है। 'यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति' जिस का जैसा गुण, कर्म, स्वभाव हो उस पदार्थ को वैसा जानकर मानना ही ज्ञान और विज्ञान कहाता है और उस से उलटा अज्ञान। इसलिये-

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।। -योगसू०।।

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।

(प्रश्न) ईश्वरासिद्धेः।।५।।
प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः।।२।।
सम्बन्धाभावान्नानुमानम्।।३।। -सांख्य सू०।।
प्रत्यक्ष से घट सकते ईश्वर की सिद्धि नहीं होती।।१।।
क्योंकि जब उस की सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं घट सकते।।२।।
और व्याप्ति सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता। पुनः प्रत्यक्षानुमान के न होने से शब्दप्रमाण आदि भी नहीं घट सकते। इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती।।३।।
(उत्तर) यहां ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है। और पुरुष से विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होने से परमात्मा का नाम पुरुष और शरीर में शयन करने से जीव का भी नाम पुरुष है।
क्योंकि इसी प्रकरण में कहा है-
प्रधानशक्तियोगाच्चेत्संगापत्तिः।।१।।
सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्य्यम्।।२।।
श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य।।३।। -सांख्य सू०।।
यदि पुरुष को प्रधानशक्ति का योग हो तो पुरुष में संगापत्ति हो जाय।
अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्यरूप में संगत हुई है वैसे परमेश्वर भी स्थूल हो जाये। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है।।१।।
जो चेतन से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है वैसा संसार में भी सर्वैश्वर्य का योग होना चाहिये, सो नहीं है। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है।।२।।
क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान ही को जगत् का उपादान कारण कहती है।।३।।
जैसे-
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।।
-यह श्वेताश्वतर उपनिषत् का वचन है ।
जो जन्मरहित सत्त्व, रज, तमोगुणरूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है और प्रकृति सृष्टि में सविकार और प्रलय में निर्विकार रहती है। इसीलिये जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी

कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य नहीं तथा मीमांसा का धर्म धर्मी से ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी 'आत्म' शब्द से अनीश्वरवादी नहीं। क्योंकि सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त और **'अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा'** जो सर्वत्र व्यापक और सर्वज्ञादि धर्मयुक्त सब जीवों का आत्मा है उस को मीमांसा वैशेषिक और न्याय ईश्वर मानते हैं।

(प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि **'अज एकपात्', 'सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्'** ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादि वचनों से परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

(प्रश्न) यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। भ० गी०।।

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर वमारण करता हूं।

(उत्तर) यह बात वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि **'परोपकाराय सतां विभूतयः'** परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है तथापि इस से श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

(प्रश्न) जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इन को अवतार क्यों मानते हैं?

(उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रमजाल में फंस के ऐसी-ऐसी अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।

(प्रश्न) जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?

(उत्तर) प्रथम तो जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय करता है उस के सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहै उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभावयुक्त, परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्ममरणयुक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है? और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं। क्योंकि जो

भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उन के उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो **'न भूतो न भविष्यति'** ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहै कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता। क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इस से न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उस का आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां हो सकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इसलिये परमेश्वर का जाना-आना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये 'ईसा' आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं ऐसा समभफ़ लेना। क्योंकि वे राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य थे।

(प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उस का न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उन को पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराधियों के अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक-अधिक बड़े-बड़े पाप करें। क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उन को भी भरोसा हो जाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे। इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है क्षमा करना नहीं।

(प्रश्न) जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र?

(उत्तर) अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। **'स्वतन्त्रः कर्त्ता'** यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है। जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है।

(प्रश्न) स्वतन्त्र किस को कहते हैं ?

(उत्तर) जिस के आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उस को पाप पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मार के अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। स्वर्ग-नरक, अर्थात् सुख-दुःख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्रविशेष से किसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

(प्रश्न) जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता! इसलिए परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।

(उत्तर) जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है। जैसा ईश्वर और जगत् का उपादान कारण नित्य है। और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप पुण्य करता है वही भोक्ता है ईश्वर नहीं। जैसे किसी कारीगर ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया, उस की दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई, उससे किसी सिपाही ने तलवार ले ली, फिर उस से किसी को मार डाला। अब यहां जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उस से लेने, तलवार बनाने वाले और तलवार को पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देता किन्तु जिस ने तलवार से मारा वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर उस के कर्मों का भोक्ता नहीं होता, किन्तु जीव को भुगाने वाला होता है। जो परमेश्वर कर्म कराता होता तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इसलिए जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है वैसे ही परमेश्वर भी अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र है।

(प्रश्न) जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

(उत्तर) दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, सब

को नियम में रखना, जीवों को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के सन्तानोत्पत्ति उन का पालन, शिल्पविद्या आदि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं। और जीव के-

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति।। -न्याय सू०।

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तिर्वकाराः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि।। -वैशेषिक सूत्र।।

दोनों सूत्रें में (इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप, अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक, पहिचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राणवायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना (निमेष) आंख को मींचना (उन्मेष) आंख को खोलना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) निश्चय स्मरण और अहंकार करना, (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष शोकादियुक्त होना, **ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है।**

जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिस के होने से जो हों और न होने से न हों वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है, **वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुणद्वारा होता है।**

(प्रश्न) परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इस से भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इस से जीव स्वतन्त्र नहीं और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है।

(उत्तर) ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है। क्योंकि जो होकर न रहै वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये है। हां जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञान

और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उस के सत्य हैं। क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इस में कोई भी दोष नहीं आता।

(प्रश्न) जीव शरीर में भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न?

(उत्तर) परिच्छिन्न। जो विभु होता तो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता। इसलिए जीव का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर, अनन्त सर्वज्ञ और सर्वव्यापक स्वरूप है। इसीलिये जीव और परमेश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है।

(प्रश्न) जिस जगह में एक वस्तु होती है उस जगह में दूसरी वस्तु नहीं रह सकती। इसीलिये जीव और ईश्वर का संयोग सम्बन्ध हो सकता है व्याप्य व्यापक नहीं।

(उत्तर) यह नियम समान आकारवाले पदार्थों में घट सकता है असमानाकृति में नहीं। जैसे लोहा स्थूल, अग्नि सूक्ष्म होता है, इस कारण से लोहे में विद्युत्, अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों रहते हैं, वैसे जीव परमेश्वर से स्थूल और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसे यह व्याप्य व्यापक सम्बन्ध जीव ईश्वर का है वैसा ही सेव्य सेवक, आधाराधेय, स्वामी भृत्य, राजा प्रजा और पिता पुत्र आदि भी सम्बन्ध हैं।

(प्रश्न) ब्रह्म और जीव जुदे हैं वा एक?

(उत्तर) अलग-अलग हैं।

(प्रश्न) जो पृथक्-पृथक् हैं तो-

प्रज्ञानं ब्रह्म।।१।। अहं ब्रह्मास्मि।।२।। तत्त्वमसि।।३।। अयमात्मा ब्रह्म।।४।।

वेदों के इन महावाक्यों का अर्थ क्या है?

(उत्तर) ये वेदवाक्य ही नहीं हैं किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों के वचन हैं और इन का नाम महावाक्य कहीं सत्य शास्त्रें में नहीं लिखा। अर्थात् ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञान- स्वरूप है। (अहम्) मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूं। यहां तात्स्थ्योपाधि है; जैसे 'मञ्चाः क्रोशन्ति' मचान पुकारते हैं। मचान जड़ हैं, उनमें पुकारने का सामर्थ्य नहीं, इसलिये म ञ्चस्थ मनुष्य पुकारते हैं। इसी प्रकार यहां भी जानना। कोई कहै कि ब्रह्मस्थ सब पदार्थ हैं; पुनः जीव को ब्रह्मस्थ कहने में क्या विशेष है? इस का उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं परन्तु जैसा साधर्म्ययुक्त निकटस्थ

जीव है वैसा अन्य नहीं। और **जीव को ब्रह्म का ज्ञान और मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्बन्ध में रहता है।** इसलिये जीव को ब्रह्म के साथ तात्स्थ्य वा तत्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्म का सहचारी जीव है। इस से जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसी से कहै कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं। वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं। जो जीव परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करता है वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है।

(प्रश्न) अच्छा तो इस का अर्थ कैसा करोगे? (तत्) ब्रह्म (त्वं) तू जीव (असि) है। हे जीव! (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है।

(उत्तर) तुम 'तत्' शब्द से क्या लेते हो?

'ब्रह्म'।

ब्रह्मपद की अनुवृत्ति कहां से लाये?

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।' इस पूर्व वाक्य से।

तुम ने इस छान्दोग्य उपनिषत् का दर्शन भी नहीं किया। जो वह देखी होती तो वहां ब्रह्म शब्द का पाठ ही नहीं है। किन्तु छान्दोग्य में तो-

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।'

ऐसा पाठ है। वहां ब्रह्म शब्द नहीं।

(प्रश्न) तो आप तच्छब्द से क्या लेते हैं?

(उत्तर) स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदँ् सर्वं तत्सत्यँ् स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।। -छान्दो॰।।

वह परमात्मा जानने योग्य है जो यह अत्यन्त सूक्ष्म इस सब जगत् और जीव का आत्मा है। वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आप ही है। हे श्वेतकेतो प्रियपुत्र! **तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि।** उस परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है। यही अर्थ उपनिषदों से अविरुद्ध है। क्योंकि-

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।
आत्मनोऽन्तरो यमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः।

-यह बृहदारण्यक का वचन है।

महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि हे मैत्रेयि! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जीवात्मा से भिन्न है; जिस को मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है; जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है वैसे ही जीव में परमेश्वर व्यापक है

। जीवात्मा से भिन्न रहकर जीव के पाप पुण्यों का साक्षी होकर उन के फल जीवों को देकर नियम में रखता है वही अविनाशीस्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है; उस को तू जान। क्या कोई इत्यादि वचनों का अन्यथा अर्थ कर सकता है ?

'अयमात्मा ब्रह्म' अर्थात् **समाधिदशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है** तब वह कहता है कि यह जो मेरे में व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है इसलिये जो आजकल के वेदान्ती जीव ब्रह्म की एकता करते हैं वे वेदान्तशास्त्र को नहीं जानते।

(प्रश्न) अनेन आत्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि।। -छांन।।

तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।। -तैनिरीय०।।

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत् और शरीर को रचकर जगत् में व्यापक और जीवरूप होके शरीर में प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूप की व्याख्या करूं।।१।। परमेश्वर ने उस जगत् और शरीर को बना कर उस में वही प्रविष्ट हुआ। इत्यादि श्रुतियों का अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे? ।।२।।

(उत्तर) जो तुम पद, पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते! क्योंकि यहां ऐसा समभफ़ो एक प्रवेश और दूसरा अनुप्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है। परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनुप्रविष्ट के समान होकर वेद द्वारा सब नाम रूप आदि की विद्या को प्रकट करता है। और शरीर में जीव को प्रवेश करा आप जीव के भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है। जो तुम अनु शब्द का अर्थ जानते तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते।

(प्रश्न) 'सोऽयं देवदत्तो य उष्णकाले काश्यां दृष्टः स इदानीं प्रावृट्समये मथुरायां दृश्यते ।' अर्थात् जो देवदत्त मैंने उष्णकाल में काशी में देखा था उसी को वर्षा समय में मथुरा में देखता हूं। यहां वह काशी देश उष्णकाल, यह मथुरा देश और वर्षाकाल को छोड़ कर शरीरमात्र में लक्ष्य करके देवदत्त लक्षित होता है। वैसे इस भागत्यागलक्षणा से ईश्वर का परोक्ष देश, काल, माया, उपाधि और जीव का यह देश, काल, अविद्या और अल्पज्ञता उपाधि छोड़ चेतनमात्र में लक्ष्य देने से एक ही ब्रह्म वस्तु दोनों में लक्षित होता है। इस भागत्यागलक्षणा अर्थात् कुछ ग्रहण करना और कुछ छोड़ देना जैसा सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वर का और अल्पज्ञत्वादि वाच्यार्थ जीव का छोड़ कर चेतनमात्र लक्ष्यार्थ का ग्रहण करने से अद्वैत सिद्ध होता है। यहां क्या कह सकोगे?

(उत्तर) प्रथम तुम जीव और ईश्वर को नित्य मानते हो वा अनित्य?

(प्रश्न) इन दोनों को उपाधिजन्य कल्पित होने से अनित्य मानते हैं।
(उत्तर) उस उपाधि को नित्य मानते हो वा अनित्य?
(प्रश्न) हमारे मत में-

जीवेशौ च विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः।।१।।
कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्य्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते।।२।।

ये 'संक्षेपशारीरक' और 'शारीरकभाष्य' में कारिका हैं।
हम वेदान्ती छः पदार्थों अर्थात् एक जीव, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वर का विशेष भेद, पांचवां अविद्या अज्ञान और छठा अविद्या और चेतन का योग इन को अनादि मानते हैं।।१।। परन्तु एक ब्रह्म अनादि, अनन्त और अन्य पांच अनादि सान्त हैं जैसा कि प्रागभाव होता है। जब तक अज्ञान रहता है तब तक ये पांच रहते हैं और इन पांच की आदि विदित नहीं होती। इसलिये अनादि और ज्ञान होने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं इसलिये सान्त अर्थात् नाशवाले कहाते हैं।।२।।
(उत्तर) अविद्या के योग के विना जीव और माया के योग के विना ईश्वर तुम्हारे मत में सिद्ध नहीं हो सकता। इससे **'तच्चितोर्योगः'** जो छठा पदार्थ तुमने गिना है वह नहीं रहा। क्योंकि वह अविद्या माया जीव ईश्वर में चरितार्थ हो गया और ब्रह्म तथा माया और अविद्या के योग के विना ईश्वर नहीं बनता फिर ईश्वर को अविद्या और ब्रह्म से पृथक् गिनना व्यर्थ है। इसलिये दो ही पदार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मत में सिद्ध हो सकते हैं, छः नहीं। तथा आपका प्रथम कार्योपाधि और कारणोपाधि से जीव और ईश्वर का सिद्ध करना तब हो सकता कि जब अनन्त, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सर्वव्यापक ब्रह्म में अज्ञान सिद्ध करें। जो उसके एक देश में स्वाश्रय और स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो सब ब्रह्म शुद्ध नहीं हो सकता। और जब एक देश में अज्ञान मानोगे तो वह परिच्छिन्न होने से इधर-उधर आता जाता रहेगा। जहां-जहां जायगा वहां-वहां का ब्रह्म अज्ञानी और जिस-जिस देश को छोड़ता जायगा उस-उस देश का ब्रह्म ज्ञानी होता रहेगा तो किसी देश के ब्रह्म को अनादि शुद्ध ज्ञानयुक्त न कह सकोगे और जो अज्ञान की सीमा में ब्रह्म है वह अज्ञान को जानेगा। बाहर और भीतर के ब्रह्म के टुकड़े हो जायेंगे। जो कहो कि टुकड़ा हो जाओ, ब्रह्म की क्या हानि? तो अखण्ड नहीं। जो अखण्ड है तो अज्ञानी नहीं। तथा ज्ञान के अभाव वा विपरीत ज्ञान भी गुण होने से किसी

द्रव्य के साथ नित्य सम्बन्ध से रहेगा। यदि ऐसा है तो समवाय सम्बन्ध होने से अनित्य कभी नहीं हो सकता। जैसे शरीर के एक देश में फोड़ा होने से सर्वत्र दुःख फैल जाता है वैसे ही एक देश में अज्ञान सुख दुःख क्लेशों की उपलब्धि होने से सब ब्रह्म दुःखादि के अनुभव से युक्त होगा और सब ब्रह्म को शुद्ध न कह सकोगे। वैसे ही कार्योपाधि अर्थात् अन्तःकरण की उपाधि के योग से ब्रह्म को जीव मानोगे तो हम पूछते हैं कि ब्रह्म व्यापक है वा परिच्छिन्न? जो कहो व्यापक उपाधि परिच्छिन्न है अर्थात् एकदेशी और पृथक्‌-पृथक्‌ है तो अन्तःकरण चलता फिरता है वा नहीं ?

(उत्तर) चलता फिरता है।

(प्रश्न) अन्तःकरण के साथ ब्रह्म भी चलता फिरता है वा स्थिर रहता है?

(उत्तर)-स्थिर रहता है।

(प्रश्न) जब अन्तःकरण जिस-जिस देश को छोड़ता है उस-उस देश का ब्रह्म अज्ञानरहित और जिस-जिस देश को प्राप्त होता है उस-उस देश का शुद्ध ब्रह्म अज्ञानी होता होगा। वैसे क्षण में ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा। इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षणभंग होगा और जैसे अन्य के देखे का अन्य स्मरण नहीं कर सकता वैसे कल की देखी सुनी हुई वस्तु वा बात का ज्ञान नहीं रह सकता। क्योंकि जिस समय देखा सुना था वह दूसरा देश और दूसरा काल; जिस समय स्मरण करता वह दूसरा देश और काल है।

जो कहो कि ब्रह्म एक है तो सर्वज्ञ क्यों नहीं? जो कहो कि अन्तःकरण भिन्न-भिन्न हैं, इस से वह भी भिन्न-भिन्न हो जाता होगा तो वह जड़ है। उस में ज्ञान नहीं हो सकता। जो कहो कि न केवल ब्रह्म और न केवल अन्तःकरण को ज्ञान होता है किन्तु अन्तःकरणस्थ चिदाभास को ज्ञान होता है तो भी चेतन ही को अन्तःकरण द्वारा ज्ञान हुआ तो वह नेत्र द्वारा अल्प अल्पज्ञ क्यों है? इसलिये कारणोपाधि और कार्योपाधि के योग से ब्रह्म जीव और ईश्वर नहीं बना सकोगे। किन्तु ईश्वर नाम ब्रह्म का है और ब्रह्म से भिन्न अनादि, अनुत्पन्न और अमृतस्वरूप जीव का नाम जीव है। जो तुम कहो कि जीव चिदाभास का नाम है तो वह क्षणभंग होने से नष्ट हो जायगा तो मोक्ष का सुख कौन भोगेगा? इसलिये ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी न हुआ, न है और न होगा।

(प्रश्न) तो **'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'**।। -छान्दोग्य०।।

अद्वैतसिद्धि कैसे होगी? हमारे मत में तो ब्रह्म से पृथक्‌ कोई सजातीय, विजातीय और स्वगत अवयवों के भेद न होने से एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जब जीव दूसरा है तो अद्वैतसिद्धि कैसे हो सकती है?

(उत्तर) इस भ्रम में पड़ क्यों डरते हो? विशेष्य विशेषण विद्या का ज्ञान करो कि उस का क्या फल है। जो कहो कि **'व्यावर्त्तकं विशेषणं भवतीति ।'** विशेषण भेदकारक होता है तो इतना और भी मानो कि **'प्रवर्त्तकं प्रकाशकमपि विशेषणं भवतीति ।'** विशेषण प्रवर्त्तक और प्रकाशक भी होता है तो समझो कि अद्वैत विशेषण ब्रह्म का है। इस में व्यावर्त्तक धर्म यह है कि अद्वैत वस्तु अर्थात् जो अनेक जीव और तत्त्व हैं उन से ब्रह्म को पृथक्‌ करता है और विशेषण का प्रकाशक धर्म यह है कि ब्रह्म के एक होने की प्रवृत्ति करता है। जैसे- **'अस्मिन्नगरेऽद्वितीयो धनाढ्यो देवदत्तः। अस्यां सेनायामद्वितीयः शूरवीरो विक्रमसिहः।'** किसी ने किसी से कहा कि इस नगर में अद्वितीय धनाढ्य देवदत्त और इस सेना में अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिह है। इस से क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्त के सदृश इस नगर में दूसरा धनाढ्य और इस सेना में विक्रमसिह के समान दूसरा शूरवीर नहीं है। न्यून तो हैं और पृथिवी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि प्राणी और वृक्षादि भी हैं, उन का निषेध नहीं हो सकता। वैसे ही ब्रह्म के सदृश जीव वा प्रकृति नहीं है, किन्तु न्यून तो हैं। इस से यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्त्व अनेक हैं। उन से भिन्न कर ब्रह्म के एकत्व को सिद्ध करने हारा अद्वैत वा अद्वितीय विशेषण है। इस से जीव वा प्रकृति का और कार्यरूप जगत् का अभाव और निषेध नहीं हो सकता। किन्तु ये सब हैं, परन्तु ब्रह्म के तुल्य नहीं। इस से न अद्वैतसिद्धि और न द्वैतसिद्धि की हानि होती है। घबराहट में मत पड़ो; सोचो और समझो।

(प्रश्न) ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द और जीव के अस्ति, भाति, प्रियरूप से एकता होती है। फिर क्यों खण्डन करते हो?

(उत्तर) किञ्चित् साधर्म्य मिलने से एकता नहीं हो सकती। जैसे पृथिवी जड़, दृश्य है वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं; इतने से एकता नहीं होती। इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध, रूक्षता, काठिन्य आदि गुण पृथिवी और रस द्रवत्व कोमलत्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्वादि धर्म अग्नि के होने से एकता नहीं। जैसे मनुष्य और कीड़ी आंख से देखते, मुख से खाते, पग से चलते हैं तथापि मनुष्य की आकृति दो पग और कीड़ी की आकृति अनेक पग आदि भिन्न होने से एकता नहीं होती। वैसे परमेश्वर के अनन्त ज्ञान,

आनन्द, बल, क्रिया, निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीव से और जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप, सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्म से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं। क्योंकि इनका स्वरूप भी (परमेश्वर अतिसूक्ष्म और जीव उस से कुछ स्थूल होने से) भिन्न है।
(प्रश्न) अथोदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति। द्वितीयाद्वै भयं भवति।। यह बृहदारण्यक का वचन है। जो ब्रह्म और जीव में थोड़ा भी भेद करता है। उसको भय प्राप्त होता है, क्योंकि दूसरे ही से भय होता है।
(उत्तर) इस का अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वर का निषेध वा किसी एक देश, काल में परिच्छिन्न परमात्मा को माने वा उस की आज्ञा और गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्य से वैर करे उस को भय प्राप्त होता है। क्योंकि द्वितीय बुद्धि अर्थात् ईश्वर का मुझ से कुछ सम्बन्ध नहीं तथा किसी मनुष्य से कहै कि तुझ को मैं कुछ नहीं समझता, तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता वा किसी की हानि करता और दुःख देता जाय तो उस को उन से भय होता है। और सब प्रकार का अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं। जैसे संसार में कहते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र एक हैं अर्थात् अविरुद्ध हैं। विरोध न रहने से सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है।
(प्रश्न) ब्रह्म और जीव की सदा एकता अनेकता रहती है वा कभी दोनों मिल के एक भी होते हैं वा नहीं?
(उत्तर) अभी इस के पूर्व कुछ उत्तर दे दिया है परन्तु साधर्म्य अन्वयभाव से एकता होती है। जैसे आकाश से मूर्त्त द्रव्य जड़त्व होने से और कभी पृथक़् न रहने से एकता और आकाश के विभु, सूक्ष्म, अरूप, अनन्त आदि गुण और मूर्त्त के परिच्छिन्न दृश्यत्व आदि वैधर्म्य से भेद होता है। अर्थात् जैसे पृथिव्यादि द्रव्य आकाश से भिन्न कभी नहीं रहते क्योंकि अन्वय अर्थात् अवकाश के विना मूर्त्त द्रव्य कभी नहीं रह सकता और व्यतिरेक अर्थात् स्वरूप से भिन्न होने से पृथक़्ता है। वैसे ब्रह्म के व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उस से अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते। जैसे घर के बनाने के पूर्व भिन्न-भिन्न देश में मट्टी, लकड़ी और लोहा आदि पदार्थ आकाश में ही रहते हैं। जब घर बन गया तब भी आकाश में हैं और जब वह नष्ट हो गया अर्थात् उस घर के सब अवयव भिन्न-भिन्न देश में प्राप्त हो गये; तब भी आकाश में हैं। अर्थात् तीन काल में आकाश से भिन्न नहीं हो सकते और स्वरूप से भिन्न होने से न कभी एक थे; हैं और होंगे। इसी प्रकार जीव तथा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर

में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में भिन्न और स्वरूप भिन्न होने से एक कभी नहीं होते। आजकल के वेदान्तियों की दृष्टि काणे पुरुष के समान अन्वय की ओर पड़ के व्यतिरेकभाव से छूट विरुद्ध हो गई है। कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिस में सगुण-निर्गुणता, अन्वय-व्यतिरेक, साधर्म्य-वैधर्म्य और विशेष्य-विशेषण भाव न हो।

(प्रश्न) परमेश्वर सगुण है वा निर्गुण ?

(उत्तर) दोनों प्रकार है।

(प्रश्न) भला एक मियान में दो तलवार कभी नहीं रह सकती हैं! एक पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती हैं?

(उत्तर) जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं। वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं। इसलिये **'यद्गुणैस्सह वर्त्तमानं तत्सगुणम्', गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्'** जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ, सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिस में केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान बलादि गुणों से सहित होने से सगुण रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

(प्रश्न) परमेश्वर रागी है वा विरक्त?

(उत्तर) दोनों में नहीं। क्योंकि राग अपने से भिन्न उत्तम पदार्थों में होता है, सो परमेश्वर से कोई पदार्थ पृथक् वा उत्तम नहीं है। इसलिए उस में राग का सम्भव नहीं। और जो प्राप्त को छोड़ देवे उस को विरक्त कहते हैं। ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ ही नहीं सकता, इसलिये विरक्त भी नहीं।

(प्रश्न) ईश्वर में इच्छा है वा नहीं।

(उत्तर) वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिस की प्राप्ति से सुख विशेष होवे तो ईश्वर में इच्छा हो सके । न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम और पूर्ण सुखयुक्त होने से सुख की अभिलाषा भी नहीं है। इसलिये ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं, किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है; वह ईक्षण है। इत्यादि

संक्षिप्त विषयों से ही सज्जन लोग विस्तरण कर लेंगे। अब संक्षेप से ईश्वर का विषय लिखकर वेद का विषय लिखते हैं-

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भन्तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।। -अथर्वन कां० १०। प्रपा० २३। अनु० ४। मं० २०।।

जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं वह कौन सा देव है?

इसका **(उत्तर)**-जो सब को उत्पन्न करके धारण कर रहा है वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।
-यजु० अ० ४०। मं० ८।।

जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

(प्रश्न) परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार?

(उत्तर) निराकार मानते हैं।

(प्रश्न) जब निराकार है तो वेदविद्या का उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

(उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है। क्योंकि मुख जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न को बोध होने के लिये किया जाता है; कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के व्यापार करे विना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूँद देखो, सुनो कि विना मुख जिह्वा ताल्वादि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं। वैसे जीवों को अन्तर्यामीरूप से उपदेश किया है। किन्तु केवल दूसरे को समझाने के लिये उच्चारण करने की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है। इसलिये ईश्वर में यह दोष नहीं आ सकता।

(प्रश्न) किन के आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ?

(उत्तर) अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।। -शत०।।
प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।
(प्रश्न) यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।।
यह उपनिषत् का वचन है।
इस वचन से ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ?
(उत्तर) ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया। देखो!
मनु में क्या लिखा है-
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्।। मनु०।।
जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग् यजुः साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।
(प्रश्न) उन चारांे ही में वेदों का प्रकाश किया अन्य में नहीं। इस से ईश्वर पक्षपाती होता है।
(उत्तर) वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रत्मा थे। अन्य उन के सदृश नहीं थे। इसलिये पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया।
(प्रश्न) किसी देश-भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया?
(उत्तर) जो किसी देश-भाषा में प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता। क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता उन को सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने पढ़ाने की होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया; जो किसी देश की भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालों के लिये एक सी और सब शिल्पविद्या का कारण है। वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एक सी होनी चाहिये कि सब देशवालों को पढ़ने पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब भाषाओं का कारण भी है।
(प्रश्न) वेद ईश्वरकृत हैं अन्यकृत नहीं। इस में क्या प्रमाण ?
(उत्तर) जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्धगुणकर्मस्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत; अन्य नहीं। और जिस में सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि

प्रमाण आप्तों के और पवित्रत्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो; वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिस में होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो; इस प्रकार के वेद हैं। अन्य बाइबल, कुरान आदि पुस्तकें नहीं। इसकी स्पष्ट व्याख्या बाइबल और कुरान के प्रकरण में तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में की जायगी।

(प्रश्न) वेद की ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं। क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

(उत्तर) कभी नहीं बना सकते। क्योंकि विना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जंगली मनुष्य सृष्टि को देख कर भी विद्वान् नहीं होते और जब उन को कोई शिक्षक मिल जाय तो विद्वान् हो जाते हैं । और अब भी किसी से पढ़े विना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदिसृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश, अविद्वानों वा पशुओं के संग में रख देवे तो वह जैसा संग है वैसा ही हो जायेगा। इसका दृष्टान्त जंगली भील आदि हैं। जब तक आर्यावर्त्त देश से शिक्षा नहीं गई थी तब तक मिश्र, यूनान और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी और इंगलैण्ड के कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जब तक नहीं गये थे तब तक वे भी सहस्रों, लाखों क्रोड़ों वर्षों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे। पुनः सुशिक्षा के पाने से विद्वान् हो गये हैं; वैसे ही परमात्मा से सृष्टि की आदि में विद्या शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते आये।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।। -योग सू०।।

जैसे वर्त्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़ ही के विद्वान् होते हैं वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियों का गुरु अर्थात् पढ़ानेहारा है। क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञानरहित हो जाते हैं वैसा परमेश्वर नहीं होता। उस का ज्ञान नित्य है। इसलिये यह निश्चित जानना चाहिये कि विना निमित्त से नैमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता।

(प्रश्न) वेद संस्कृतभाषा में प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृतभाषा को नहीं जानते थे फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

(उत्तर) परमेश्वर ने जनाया। और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब-जब जिस-जिस के अर्थ को जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए तब-तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रें के अर्थ जनाये । जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थप्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये। उन का नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ। और-

ऋषयो मन्त्रदृष्टयः मन्त्रन् सम्प्रादुः।

जिस-जिस मन्त्रर्थ का दर्शन जिस-जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिस के पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था; किया और दूसरों को पढ़ाया भी। इसलिये अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावें उन को मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रें के अर्थप्रकाशक हैं।

(प्रश्न) वेद किन ग्रन्थों का नाम है?

(उत्तर) ऋव्फ़, यजुः, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का; अन्य का नहीं।

(प्रश्न) मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।।

इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रतिज्ञासूत्रदि का अर्थ क्या करोगे?

(उत्तर) देखो! संहिता पुस्तक के आरम्भ अध्याय की समाप्ति में वेद यह सनातन से शब्द लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तक के आरम्भ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा। और निरुक्त में-

इत्यपि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम्।।

छान्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि।। -यह पाणिनीय सूत्र है।

इस से भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग हैं। इस में जो विशेष देखना चाहैं तो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिये। वहां अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता ऐसा ही सिद्ध किया गया है। क्योंकि जो मानें तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिस का हो उस के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उस के जन्मे पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं किन्तु विशेष जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे उस-उस शब्द का प्रयोग किया है। **किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।**

(प्रश्न) वेदों की कितनी शाखा हैं?

(उत्तर) एक हजार एक सौ सत्ताईस।
(प्रश्न) शाखा क्या कहाती हैं?
(उत्तर) व्याख्यान को शाखा कहते हैं।
(प्रश्न) संसार में विद्वान् वेद के अवयवभूत विभागों को शाखा मानते हैं?
(उत्तर) तनिक सा विचार करो तो ठीक। क्योंकि जितनी शाखा हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहिता परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैेसे चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस-उस ऋषिकृत मानते हैं और सब शाखाओं में मन्त्रें की प्रतीक धर के व्याख्या करते हैं। जैसे तैत्तिरीय शाखा में **'इषे त्वोर्जे त्वेति'** इत्यादि प्रतीकें धर के व्याख्यान किया है। और वेदसंहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं धरी। इसलिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल वृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि मुनिकृत हैं; परमेश्वरकृत नहीं। जो इस विषय की विशेष व्याख्या देखना चाहैं वे 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लेवें।
जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है। जिस से मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूटकर विद्या विज्ञानरूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहैं। और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें।
(प्रश्न) वेद नित्य हैं वा अनित्य?
(उत्तर) नित्य हैं। क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उस के ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थं हैं उन के गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं।
(प्रश्न) क्या यह पुस्तक भी नित्य है?
(उत्तर) नहीं। क्योंकि पुस्तक तो पत्रे और स्याही का बना है वह नित्य कैसे हो सकता है? किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे नित्य हैं ?
(प्रश्न) ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञान से लोगों ने वेद बना लिये होंगे?
(उत्तर) ज्ञान ज्ञेय के विना नहीं होता। गायत्र्यादि छन्द षड्जादि और उदात्ताऽनुदात्तादि स्वर के ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दों के निर्माण करने में सर्वज्ञ के विना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार का सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बना सकें।

हां! वेद को पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके। इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम उस को मानते हैं।

अब इसके आगे सृष्टि के विषय में लिखेंगे। यह संक्षेप से ईश्वर और वेदविषय में व्याख्यान किया है।।७।।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्तीस्वामिकृते
सत्यार्थप्रकाशे ईश्वरवेदविषये सुभाषाविभूषिते
सप्तमः समुल्लासः सम्पूर्णः।।७।।

अथाष्टमसमुल्लासारम्भः

अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः

इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ।।१।।

-ऋ० मं० १०। सू० १२९। मं० ७।।

तम आसीत्तमसा गूळमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ।।२।।

-ऋ० मं०। सू०। मं०।।

हिरण्यगभःर् समवत्तर्ताग्रे भतूस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतमों कस्मै देवाय हविषा विधमे ।।३।।

-ऋ०मं० १०। सू० १२९। मं० १।।

पुरु ष एवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।४।।

-यजुः अ० ३१। मं० २।।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।।५।।

-तैनिरीयोपनि०।

हे (अंग) मनुष्य! जिस से यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलयकर्त्ता है जो इस जगत् का स्वामी है जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उस को तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान।।१।।

यह सब जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया।।२।।

हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उस का एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था। और जिस ने पृथिवी से लेके सूर्य्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति किया करें।।३।।

हे मनुष्यो! जो सब में पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित कारण और जीव का स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है; वही पुरुष इस सब भूत भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् का बनाने वाला है।।४।।
जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिस से जीते और जिस में प्रलय को प्राप्त होते हैं; वह ब्रह्म है। उस के जानने की इच्छा करो।।५।।
जन्माद्यस्य यतः।। -शारीरक सू० अ० १। सूत्र० २।।
जिस से इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है; वही ब्रह्म जानने योग्य है।
(प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से?
(उत्तर) निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।
(प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की?
(उत्तर) नहीं। वह अनादि है।
(प्रश्न) अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं?
(उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं।
(प्रश्न) इसमें क्या प्रमाण है।
(उत्तर)

द्वा सुपर्णा सयजुा सखाया समानं वक्ष्ृां परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।१।।
-ऋ०मं० १। सू० १६४। मं० २०।।
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।२।। -यजुः० अ० ४०। मं० ८।।
(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं (तयोरन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र

प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप; तीनों अनादि हैं।।१।।
(शाश्वती०) अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है।।२।।
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।
यह उपनिषत् का वचन है।
प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिन का जन्म कभी नहीं होता और न कभी जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इन का कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उस में परमात्मा न फंसता और न उस का भोग करता है।

ईश्वर और जीव का लक्षण ईश्वर विषय में कह आये। अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं-
सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्रण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः।। -सा।ंख्यसूत्र।।
(सत्त्व) शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उस का नाम प्रकृति है। उस से महत्तत्त्व बुद्धि, उस से अहंकार, उस से पांच तन्मात्र सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्रओं से पृथिव्यादि पांच भूत ये चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर हैं। इन में से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्त्व अहंकार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूलभूतों का कारण है। पुरुष न किसी की प्रकृति उपादान कारण और न किसी का कार्य्य है।
(प्रश्न) सदेव सोम्येदमग्र आसीत्।।१।। असद्वा इदमग्र आसीत्।।२।।
आत्मा वा इदमग्र आसीत्।।३।। ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्।।४।।
ये उपनिषदों के वचन हैं।
हे श्वेतकेतो! यह जगत् सृष्टि के पूर्व सत्। १। असत्। २। आत्मा। ३। और ब्रह्मरूप था।।४।। पश्चात्-
तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति।।१।।
सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति।।२।। -यह तैत्तिरीयोपनिषत् का वचन है।
वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया है।।१। २।।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन।। -यह भी उपनिषत् का वचन है।
जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है। उस में दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप हैं।
(उत्तर) क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में-
अन्नेन सोम्य शुंगेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिस्सोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः।। -छान्दोग्य उपनि०।।
हे श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी कार्य्य से जलरूप मूल कारण को तू जान। कार्यरूप जल से तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उस को जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है। यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था; अभाव न था और जो (सर्वं खलु०) यह वचन ऐसा है जैसा कि 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनवाँ जोड़ा' ऐसी लीला का है। क्योंकि-
सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। -छान्दोग्य।।
और-
नेह नानास्ति किञ्चन।। -यह कठवल्ली का वचन है।।
जैसे शरीर के अंग जब तक शरीर के साथ रहते हैं तब तक काम के और अलग होने से निकम्मे हो जाते हैं, वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक हो जाते हैं। सुनो! इस का अर्थ यह है-हे जीव! तू उस ब्रह्म की उपासना कर। जिस ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है; जिस के बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्म से सहचरित है; उस को छोड़कर दूसरे की उपासना न करनी। इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मस्वरूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है किन्तु ये सब पृथक़्-पृथक़् स्वरूप में परमेश्वर के आवमार में स्थित हैं।
(प्रश्न) जगत् के कारण कितने होते हैं?
(उत्तर) तीन। एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। **निमित्त कारण** उस को कहते हैं कि जिस के बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, आप स्वयं बने नहीं; दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा **उपादान कारण** उस को कहते हैं जिस के विना कुछ न बने; वही अवस्थान्तर रूप होके बने बिगड़े भी। तीसरा

साधारण कारण उस को कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। **निमित्त कारण** दो प्रकार के होते हैं। एक-सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण **परमात्मा**। दूसरा-परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्य्यान्तर बनाने बनाने वाला साधारण निमित्त कारण **जीव**। **उपादान कारण**-प्रकृति, परमाणु जिस को सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। **कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है। जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना और वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है।**

जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन-जिन साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के साधन और दिशा, काल और आकाश साधारण कारण। जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार निमित्त; मिट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त; दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणांे के विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।

(प्रश्न) नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वर ही को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च। -यह उपनिषत् का वचन है।

जैसे मकड़ी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बनाकर आप ही उस में खेलती है वैसे ब्रह्म अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है। सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार हो जाऊँ; संकल्पमात्र से सब जगद्रूप बन गया। क्योंकि-

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ।।

यह माण्डूक्योपनिषत् पर कारिका है।

जो प्रथम न हो, अन्त में न रहै, वह वर्त्तमान में भी नहीं है। किन्तु सृष्टि की आदि में जगत् न था ब्रह्म था। प्रलय के अन्त में संसार न रहेगा तो वर्त्तमान में सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं?

(उत्तर) जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे और उपादान कारण के गुण, कर्म, स्वभाव कार्य में भी आते हैं-

कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः।। -वैशेषिक सूत्र।।

उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप; जगत् कार्य्यरूप से असत्, जड़ और आनन्दरहित; ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है। ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है। जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य्य उत्पन्न होवे तो पृथिव्यादि कार्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य्य भी चेतन होना चाहिए। और जो मकड़ी का दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है क्योंकि वह जड़रूप शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है। और यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है। क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीव तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बना कर बाहर स्थूलरूप कर आप उसी में व्यापक होके होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है। और जो परमात्मा ने ईक्षण अर्थात् दर्शन, विचार और कामना की कि मैं सब जगत् को बनाकर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जगत् उत्पन्न होता है तभी जीवों के विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश, श्रवण में परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थों से सह वर्त्तमान होता है। जब प्रलय होता है तब परमेश्वर और मुक्तजीवों को छोड़ के उस को कोई नहीं जानता। और जो वह कारिका है वह भ्रममूलक है। क्योंकि प्रलय में जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से जब तक दूसरी वार सृष्टि न होगी तब तक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध है। क्योंकि-

तम आसीत्तमसा गूळमग्रे ।।१।। ऋग्वेद का वचन है।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।२।।

यह सब जगत् सृष्टि के पहले प्रलय में अन्धकार से आवृत आच्छादित था। और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था और न होगा। किन्तु वर्त्तमान में जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त जानने

योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है। पुनः उस कारिकाकार ने वर्त्तमान में भी जगत् का अभाव लिखा सो सर्वथा अप्रमाण है। क्योंकि जिस को प्रमाता प्रमाणों से जानता और प्राप्त होता है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता।

(प्रश्न) जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है?

(उत्तर) नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है?

(प्रश्न) जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख-दुःख प्राप्त न होता।

(उत्तर) यह आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं पुरुषार्थी की नहीं और जीवों को प्रलय में क्या सुख वा दुःख है? जो सृष्टि के सुख दुःख की तुलना की जाय तो सुख कई गुना अधिक होता और बहुत से पवित्रत्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं। प्रलय में निकम्मे जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं और प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के किये पाप पुण्य कर्मों का फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्यों कर भोग सकते? जो तुम से कोई पूछे कि आंख के होने में क्या प्रयोजन है? तुम यही कहोगे देखना तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है उस का क्या प्रयोजन; विना जगत् की उत्पत्ति करने के ? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे। और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनावे। उस का अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

(प्रश्न) बीज पहले है वा वृक्ष?

(उत्तर) बीज। क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है।

(प्रश्न) जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह कारण और जीव को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता?

(उत्तर) सर्वशक्तिमान् का अर्थ पूर्व लिख आये हैं परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है कि जो असम्भव बात को भी कर सके? जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसा कारण के विना कार्य को कर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति कर और स्वयं मृत्यु को प्राप्त; जड़, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं? जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा

अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। **जैसे आप जड़ नहीं हो सकता वैसे जड़ को चेतन भी नहीं कर सकता।** और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा विना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? जो निराकार है तो विना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता?

(उत्तर) ईश्वर निराकार है। जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है वह ईश्वर ही नहीं। क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश काल वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे। उस में जीव के विना ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीरधारी हैं इस से त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते और न उन सूक्ष्म पदार्थों को पकड़ कर स्थूल बना सकते हैं। वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रियगोलक हस्त पादादि अवयवों से रहित है परन्तु उस की अनन्त शक्ति बल पराक्रम हैं उन से सब काम करता है। जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उन में व्यापक है तभी उन को पकड़ कर जगदाकार कर देता है। **और सर्वगत होने से सब का धारण और प्रलय भी कर सकता है।**

(प्रश्न) जैसे मनुष्यादि के मां बाप साकार हैं उन का सन्तान भी साकार होता है। जो ये निराकार होते तो इनके लड़के भी निराकार होते। वैसे परमेश्वर निराकार हो तो उस का बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये।

(उत्तर) यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है। क्योंकि हम अभी यह कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है। और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है। और वे सर्वथा निराकार नहीं किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।

(प्रश्न) क्या कारण के विना परमेश्वर कार्य को नहीं कर सकता?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि जिस का अभाव अर्थात् जो वर्तमान नहीं है उस का भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई गपोड़ा हांक दे कि मैंने वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह देखा। वह नर शृंग का धनुष और दोनों खपुष्प की

माला पहिरे हुए थे। मृगतृष्णिका के जल में स्नान करते और गन्धर्वनगर में रहते थे। वहां बद्दल के विना वर्षा; पृथिवी के विना सब अन्नों की उत्पत्ति आदि होती थी। वैसा ही कारण के विना कार्य का होना असम्भव है।
जैसे कोई कहे कि **'मम मातापितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च।'** अर्थात् मेरे माता-पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं। मेरे मुख में जीभ नहीं है परन्तु बोलता हूं। बिल में सर्प न था निकल आया। मैं कहीं नहीं था, ये भी कहीं न थे और हम सब जने आये हैं। ऐसी असम्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगों की है।
(प्रश्न) जो कारण के विना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण कौन है ?
(उत्तर) जो केवल कारणरूप ही हैं वे कार्य्य किसी के नहीं होते और जो किसी का कारण और किसी का कार्य होता है वह दूसरा कहाता है। जैसे पृथिवी घर आदि का कारण और जल आदि का कार्य होता है। परन्तु जो आदिकारण प्रकृति है वह अनादि है।
मूले मूलाभावादमूलं मूलम्।। -सांख्य सू०।।
मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता। इस से अकारण सब कार्य्यों का कारण होता है। क्योंकि किसी कार्य्य के आरम्भ समय के पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं। जैसे कपड़े बनाने के पूर्व तन्तुवाय, रुई का सूत और नलिका आदि पूर्व वर्त्तमान होने से वस्त्र बनता है वैसे जगत् की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इन में से एक भी न हो तो जगत् भी न हो।
अत्र नास्तिका आहुः-
शून्यं तत्त्वं भावोऽपि नश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य।।१।। -सांख्य सू०।।
अभावात् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्।।२।।
ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।।३।।
अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्।।४।।
सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात्।।५।।
सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात्।।६।।
सर्वं पृथग् भावलक्षणपृथक्त्वात्।।७।।
सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः।।८।।
-न्यायसू०। अ० ४। आह्नि० १।।

यहां नास्तिक लोग ऐसा कहते हैं कि १-शून्य ही एक पदार्थ है। सृष्टि के पूर्व शून्य था, अन्त में शून्य होगा क्योंकि जो भाव है अर्थात् वर्त्तमान पदार्थ है उस का अभाव होकर शून्य हो जायेगा।
(उत्तर) शून्य आकाश, अदृश्य, अवकाश और विन्दु को भी कहते हैं। शून्य जड़ पदार्थ। इस शून्य में सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं। जैसे एक विन्दु से रेखा, रेखाओं से वर्तुलाकार होने से भूमि पर्वतादि ईश्वर की रचना से बनते हैं और शून्य का जानने वाला शून्य नहीं होता।।१।।
दूसरा नास्तिक-अभाव से भाव की उत्पत्ति होती है। जैसे बीज का मर्दन किये विना अंकुर उत्पन्न नहीं होता और बीज को तोड़ कर देखें तो अंकुर का अभाव है। जब प्रथम अंकुर नहीं दीखता था तो अभाव से उत्पत्ति हुई।
(उत्तर) जो बीज का उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीज में था। जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता।।२।।
तीसरा नास्तिक-कहता है कि कर्मों का फल पुरुष के कर्म करने से नहीं प्राप्त होता। कितने ही कर्म निष्फल दीखने में आते हैं। इसलिये अनुमान किया जाता है कि कर्मों का फल प्राप्त होना ईश्वर के आधीन है। जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाहै देता है। जिस कर्म का फल देना नहीं चाहता नहीं देता। इस बात से कर्मफल ईश्वरावमीन है।
(उत्तर) जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो विना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता? इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है। इस से ईश्वर स्वतन्त्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता। किन्तु जैसा कर्म जीव करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है।।३।।
चौथा नास्तिक-कहता है कि विना निमित्त के पदार्थों की उत्पत्ति होती है। जैसा बबूल आदि वृक्षों के कांटे तीक्ष्ण अणिवाले देखने में आते हैं। इससे विदित होता है कि जब-जब सृष्टि का आरम्भ होता है तब-तब शरीरादि पदार्थ विना निमित्त के होते हैं।
(उत्तर) जिस से पदार्थ उत्पन्न होता है वही उस का निमित्त है। विना कण्टकी वृक्ष के कांटे उत्पन्न क्यों नहीं होते? ।।४।।
पांचवां नास्तिक-कहता है कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश वाले हैं इसलिये सब अनित्य हैं।
श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।।
यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है।

नवीन वेदान्तीलोग **पांचवें नास्तिक** की कोटी में हैं। क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि क्रोड़ों ग्रन्थों का यह सिद्धान्त है-'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं।'
(उत्तर) जो सब की नित्यता नित्य है तो सब अनित्य नहीं हो सकता।
(प्रश्न) सब की नित्यता भी अनित्य है जैसे अग्नि काष्ठों को नष्ट कर आप भी नष्ट हो जाता है।
(उत्तर) जो यथावत् उपलब्ध होता है उस का वर्त्तमान में अनित्यत्व और परमसूक्ष्म कारण को अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता। जो वेदान्ती लोग ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्म के सत्य होने से उस का कार्य असत्य कभी नहीं हो सकता। जो स्वप्न रज्जू सर्प्पादिवत् कल्पित कहैं तो भी नहीं बन सकता। क्योंकि कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य और गुण द्रव्य से पृथक़् नहीं रह सकता। जब कल्पना का कर्त्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिए, नहीं तो उस को भी अनित्य मानो। जैसे स्वप्न विना देखे सुने कभी नहीं आता। जो जागृत अर्थात् वर्त्तमान समय में सत्य पदार्थ हैं उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उन का वासनारूप ज्ञान आत्मा में स्थित होता है; स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे सुषुप्ति होने से बाह्य पदार्थों के ज्ञान के अभाव में भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं वैसे प्रलय में भी कारण द्रव्य वर्त्तमान रहता है। जो संस्कार के विना स्वप्न होवे तो जन्मान्ध को भी रूप का स्वप्न होवे। इसलिये वहां उन का ज्ञानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्त्तमान हैं।
(प्रश्न) जैसे जागृत के पदार्थ स्वप्न और दोनों के सुषुप्ति में अनित्य हो जाते हैं वैसे जागृत के पदार्थों को भी स्वप्न के तुल्य मानना चाहिये।
(उत्तर) ऐसा कभी नहीं मान सकते क्योंकि स्वप्न और सुषप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है; अभाव नहीं। जैसे किसी के पीछे की ओर बहुत से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं उनका अभाव नहीं होता; वैसे ही स्वप्न और सुषुप्ति की बात है। इसलिये जो पूर्व कह आये कि ब्रह्म जीव और जगत् का कारण अनादि नित्य हैं, वही सत्य है।।५।।
छठा नास्तिक-कहता है कि पांच भूतों के नित्य होने से जगत् नित्य है।
(उत्तर) यह बात सत्य नहीं। क्योंकि जिन पदार्थों का उत्पत्ति और विनाश का कारण देखने में आता है वे सब नित्य हों तो सब स्थूल जगत् तथा शरीर घट

पटादि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं। इस से कार्य को नित्य नहीं मान सकते।।६।।

सातवां नास्तिक-कहता है कि सब पृथक्-पृथक् हैं। कोई एक पदार्थ नहीं है। जिस-जिस पदार्थ को हम देखते हैं कि उन में दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं दीखता। अवयवों में अवयवी, वर्त्तमानकाल, आकाश, परमात्मा और जाति पृथक्-पृथक् पदार्थ समूहों में एक-एक हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं किन्तु स्वरूप से पृथक्-पृथक् हैं और पृथक्-पृथक् पदार्थों में एक पदार्थ भी है।।७।।

आठवां नास्तिक-कहता है कि सब पदार्थों में इतरेतर अभाव की सिद्धि होने से सब अभावरूप हैं जैसे **'अनश्वो गौः। अगौरश्वः'** गाय घोड़ा नहीं और घोड़ा गाय नहीं। इसलिये सब को अभावरूप मानना चाहिए।

(उत्तर) सब पदार्थों में इतरेतराभाव का योग हो परन्तु **'गवि गौरश्वेऽश्वो भावरूपो वर्तत एव'** गाय में गाय और घोड़े में घोड़े का भाव ही है; अभाव कभी नहीं हो सकता। जो पदार्थों का भाव न हो तो इतरेतराभाव भी किस में कहा जावे? ।।८।।

नववां नास्तिक-कहता है कि स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होती है। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़ने से कृमि उत्पन्न होते हैं। और बीज पृथिवी जल के मिलने से घास वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं। जैसे समुद्र वायु के योग से तरंग और तरंगों से समुद्रफेन; हल्दी, चूना और नींबू के रस मिलाने से रोरी बन जाती है वैसे सब जगत् तत्त्वों के स्वभाव गुणों से उत्पन्न हुआ है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं।

(उत्तर) जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे और जो विनाश भी स्वभाव से मानो तो उत्पत्ति न होगी। और जो दोनों स्वभाव युगपत् द्रव्यों में मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी और जो निमित्त के होने से उत्पत्ति और नाश मानोगे तो 'निमित्त' से उत्पत्ति और विनाश होने वाले द्रव्यों से पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वभाव ही से उत्पत्ति और विनाश होता तो एक समय ही में उत्पत्ति और विनाश का होना सम्भव नहीं। जो स्वभाव से उत्पन्न होता हो तो इस भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल, चन्द्र, सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते? और जिस-जिस के योग से जो-जो उत्पन्न होता है वह-वह ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बीज, अन्न, जलादि के संयोग से घास, वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं; विना उन के नहीं। जैसे हल्दी,

चूना और नीबू का रस दूर-दूर देश से आकर आप नहीं मिलते; किसी के मिलाने से मिलते हैं। उस में भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है। अधिक न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं बनती। वैसे ही प्रकृति परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति से परमेश्वर के मिलाये वि ना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती, परमेश्वर की रचना से होती है।।९।।

(प्रश्न) इस जगत् का कर्त्ता न था, न है और न होगा किन्तु अनादि काल से यह जैसा का वैसा बना है। न कभी इस की उत्पत्ति हुई; न कभी विनाश होगा।

(उत्तर) विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दीखती है; वे अनादि कभी नहीं हो सकते। और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इस को न मानो तो कठिन से कठिन पाषाण हीरा और पोलाद आदि तोड़, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इन में परमाणु पृथव्फ़-पृथव्फ़ मिले हैं वा नहीं? जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग-अलग भी अवश्य होते हैं।।१०।।

(प्रश्न) अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्यास से अणिमादि ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सर्वज्ञादि गुणयुक्त केवल ज्ञानी होता है वही जीव परमेश्वर कहाता है।

(उत्तर) जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तो साधनों से सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत्, शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते? इनके विना जीव साधन नहीं कर सकता। जब साधन न होते तो सिद्ध कहां से होता? जीव चाहै जैसा साधन कर सिद्ध होवे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है; जिस में अनन्त सिद्धि है; उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्य वाला कभी नहीं हो सकता। देखो! कोई भी आज तक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम को बदलनेहारा नहीं हुआ है और न होगा। जैसा अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का निबन्ध किया है इस को कोई भी योगी बदल नहीं सकता। जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता।

(प्रश्न) कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण-विलक्षण बनाता है अथवा एक सी?

(उत्तर) जैसी कि अब है वैसी पहले थी और आगे होगी; भेद नहीं करता।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिव्ꣳ च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

-ऋ० मं० १०। सू० १९०। मं० ३।।

(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि बनाता था। वैसे ही अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा।।१।। इसलिये परमेश्वर के काम विना भूल चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिस का ज्ञान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है उसी के काम में भूल चूक होती है; ईश्वर के काम में नहीं।

(प्रश्न) सृष्टि-विषय में वेदादि शास्त्रें का अविरोध है वा विरोध?

(उत्तर) अविरोध है।

(प्रश्न) जो अविरोध है तो-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।। -यह तैत्तिरीय उपनिषत् का वचन है। उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उस को इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न सा होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सकें?

आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है। यहां आकाशादि क्रम से और छान्दोग्य में अग्न्यादि; ऐतरेय में जलादि क्रम से सृष्टि हुई। वेदों में कहीं पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ आदि से मीमांसा में कर्म, वैशेषिक काल, न्याय में परमाणु, योग में पुरुषार्थ, सांख्य में प्रकृति और वेदान्त में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। अब किस को सच्चा और किस को भफ़ूठा मानें?

(उत्तर) इस में सब सच्चे कोई भफ़ूठा नहीं। भफ़ूठा वह है जो विपरीत समझता है। क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है उस के पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है; अग्न्यादि-क्रम से और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल-क्रम से सृष्टि होती है। अर्थात्

जिस-जिस प्रलय में जहां-जहां तक प्रलय होता है; वहां-वहां से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। पुरुष और हिरण्यगर्भादि प्रथम समुल्लास में लिख भी आये हैं; वे सब नाम परमेश्वर के हैं। परन्तु विरोध उस को कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रें में अविरोध देखो इस प्रकार है- मीमांसा में-'ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिस के बनाने में कर्मचेष्टा न की जाय'। वैशेषिक में-'समय न लगे विना बने ही नहीं'। न्याय में-'उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता'। योग में-'विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता'। सांख्य में-'तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता'। और वेदान्त में-'बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न हो न सके'। इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिए उनमें विरोध कुछ भी नहीं? जैसे छः पुरुष मिल के एक छप्पर उठा कर भित्तियों पर धरैं वैसा ही सृष्टिरूप कार्य की व्याख्या छः शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है। जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उन से पूछा कि हाथी कैसा है? उन में से एक ने कहा-खम्भे, दूसरे ने कहा-सूप, तीसरे ने कहा-मूसल, चौथे ने कहा-भफ़ाडू, पांचवें ने कहा-चौतरा और छठे ने कहा- काला-काला चार खम्भों के ऊपर कुछ भैंसा सा आकार वाला है। इसी प्रकार आज कल के अनार्ष नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषा वालों ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर, नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके भफ़ूठा भफ़गड़ा मचाया है। इन का कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धों के पीछे अन्धे चलें तो दुःख क्यों न पावें? वैसे ही आज कल के अल्प विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करने वाली है।

(प्रश्न) जब कारण के विना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण क्यों नहीं?

(उत्तर) अरे भोले भाइयो! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते?

देखो! संसार में दो ही पदार्थ होते हैं-एक कारण दूसरा कार्य। जो कारण है वह कार्य्य नहीं और जिस समय कार्य्य है वह कारण नहीं। जब तक मनुष्य सृष्टि को यथावत् नहीं समझता तब तक उस को यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता-

नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथक्फ़ पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषाद-वस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते।।

अनादि नित्य स्वरूप सत्त्व, रजस् और तमो गुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म पृथक्‌-पृथक्‌ तत्त्वावयव विद्यमान हैं उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है; संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी-दूसरी अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल-स्थूल बनते बनाते विचित्ररूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है। भला जो प्रथम संयोग में मिलने और मिलाने वाला पदार्थ है; जो संयोग का आदि और वियोग का अन्त अर्थात् जिस का विभाग नहीं हो सकता उस को कारण और जो संयोग के पीछे बनता और वियोग के पश्चात् वैसा नहीं रहता वह कार्य्य कहाता है। जो उस कारण का कारण, कार्य का कार्य, कर्त्ता का कर्त्ता, साधन का साधन और साध्य का साध्य कहाता है; वह देखता अन्धा, सुनता बहिरा और जानता हुआ मूढ़ है। क्या आंख की आंख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है। जो जिस से उत्पन्न होता है वह कारण और जो उत्पन्न होता है वह कार्य्य और जो कारण को कार्यरूप बनानेहारा है वह कर्त्ता कहाता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदिर्शभिः।। भगवद्गीता।।

कभी असत् का भाव वर्त्तमान और सत् का अभाव अवर्त्तमान नहीं होता। इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है। अन्य पक्षपाती आग्रही मलीनात्मा अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं? क्योंकि जो मनुष्य, विद्वान्, सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमजाल में पड़ा रहता है। धन्य वे पुरुष हैं जो कि सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिए परिश्रम करते हैं। जानकर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं। इस से जो कोई कारण के विना सृष्टि मानता है वह कुछ भी नहीं जानता। जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उस की प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उस का नाम महत्तत्त्व और जो उस से कुछ स्थूल होता है उस का नाम अहंकार और अहंकार से भिन्न-भिन्न पांच सूक्ष्मभूत; **श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पांच ज्ञानेन्द्रियां; वाक्‌, हस्त, पाद, उपस्थ, और गुदा ये पांच कर्म-इन्द्रियां हैं** और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पञ्चतन्मात्रओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिन को हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं। उन से नाना प्रकार की ओषधियां, वृक्ष आदि; उन से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है।

देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिस को विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़; नाड़ियों का बन्धन; मांस का लेपन; चमड़ी का ढक्कन; प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन; रुधिरशोधन, प्रचालन; विद्युत् का स्थापन; जीव का संयोजन; शिरोरूप मूलरचन; लोम, नखादि का स्थापन; आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन; इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन; जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण; सब धातु का विभागकरण; कला, कौशल, स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना परमेश्वर के कौन कर सकता है? इसके विना नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि; विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से युक्त पत्र; पुष्प, फल, मूलनिर्माण; मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस; सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन; अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल, सूर्य, चन्द्रादि लोकनिर्माण; धारण; भ्रामण; नियमों में रखना आदि परमेश्वर के विना कोई भी नहीं कर सकता।

जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उनमें रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है। जैसे किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया। देखा तो विदित हुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान् कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना बनाने वाले परमेश्वर को सिद्ध करती है।

(प्रश्न) मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या पृथिवी आदि की?

(उत्तर) पृथिवी आदि की। क्योंकि पृथिव्यादि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या?

(उत्तर) अनेक। क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उन का जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता है। क्योंकि **'मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त'** यह यजुर्वेद में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों, सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए । और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक माँ बाप के सन्तान हैं।

(प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व

प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि; अनादि काल से चक्र चला आता है। इस का आदि वा अन्त नहीं किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि हैं। जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता, कभी कभी नहीं दीखता फिर बरसात में दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता। ऐसे व्यवहारों को **प्रवाहरूप** जानना चाहिए। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उस के कर्त्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

(प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म; किन्हीं को सिहादि क्रूर जन्म; किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु; किन्हीं को वृक्षादि, कृमि, कीट, पतंगादि जन्म दिये हैं। इस से परमात्मा में पक्षपात आता है।

(उत्तर) पक्षपात नहीं आता। क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से। जो कर्म के विना जन्म देता तो पक्षपात आता।

(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई?

(उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिस को 'तिब्बत' कहते हैं।

(प्रश्न) आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक?

(उत्तर) एक मनुष्य जाति थी। पश्चात् **'विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः'** यह ऋग्वेद का वचन है। श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान् देव और दुष्टों के **दस्यु** अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए। **'उत शूद्रे उतार्ये'** वेद-वचन। आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।

(प्रश्न) फिर वे यहाँ कैसे आये?

(उत्तर) जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर, उन में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी से देश का नाम **'आर्यावर्त्त'** हुआ।

(प्रश्न) आर्यावर्त्त की अवधि कहां तक है?

(उत्तर) आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः।।१।।
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते।।२।। मनु०।

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र।।१।। तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिस को ब्रह्मपुत्र कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में अटक मिली है। हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सब को आर्यावर्त्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त्त कहाया है।

(प्रश्न) प्रथम इस देश का नाम क्या था और इस में कौन बसते थे?

(उत्तर) इस के पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

(प्रश्न) कोई कहते हैं कि ये लोग ईरान से आये। इसी से इन लोगों का नाम आर्य हुआ है। इन के पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिन को असुर और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उन का जब संग्राम हुआ उसका नाम देवासुर संग्राम कथाओं में ठहराया।

(उत्तर) यह बात सर्वथा भफ़ूठ है। क्योंकि-

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बिर्हष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।।

-प्र मं० १। सू० ५१। मं० ८।।

उत शूद्रे उतार्ये ।। -यह भी वेद का प्रमाण है।

यह लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इन से विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है। जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते और देवासुर संग्राम में आर्यावर्त्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि; हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु म्लेच्छ असुरों

का जो युद्ध हुआ था; उस में देव अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने को सहायक हुए थे। इस से यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान देश में मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब-जब हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे तब-तब यहां के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों के सहायक होते थे। और श्रीरामचन्द्र जी से दक्षिण में युद्ध हुआ है। उस का नाम देवासुर संग्राम नहीं है किन्तु उस को राम-रावण अथवा आर्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं। किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों को लड़कर, जय पाके, निकाल के इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? और-

आर्यवाचो म्लेच्छवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः।।१।।

म्लेच्छदेशस्त्वतः परः।।२।। मनु०।।

जो आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे **दस्युदेश** और **म्लेच्छदेश** कहाते हैं। इस से भी यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम **दस्यु** और **म्लेच्छ** तथा **असुर** है और नैर्ऋत, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त्त देश से भिन्न रहने वाले मनुष्यों का नाम राक्षस है। अब भी देख लो! हबशी लोगों का स्वरूप भयंकर जैसा राक्षसों का वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है और आर्य्यावर्त्त की सूध पर नीचे रहने वालों का नाम नाग और उस देश का नाम पाताल इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों के पाद अर्थात् पग के तले है और उन के नागवंशी अर्थात् नाग नाम वाले पुरुष के वंश के राजा होते थे। उसी की उलोपी राजकन्या से अजुर्न का विवाह हुआ था अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पाण्डव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्य्यावर्त्त से भिन्न देशों में भी रहा। इस में यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश इनके स्वायम्भुवादि सात राजा और उन के सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्य्यावर्त्त के प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्य्यावर्त्त बसाया है। अब अभाग्योदय से और आर्य्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्य्यावर्त्त में भी आर्य्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है।

कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। **कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।** परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्‌-पृथक्‌ शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।

(प्रश्न) जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

(उत्तर) एक अर्ब, छानवें क्रोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इस का स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका[१] में लिखा है देख लीजिये। इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में हैं और यह भी है कि सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उस का नाम परमाणु, **साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्व्यणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्व्यणुक का अग्नि, चार द्व्यणुक का जल, पांच द्व्यणुक की पृथिवी अर्थात् तीन द्व्यणुक का त्रसरेणु और उस का दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं।** इसी प्रकार क्रम से मिला कर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं।

(प्रश्न) इस का धारण कौन करता है। कोई कहता है शेष अर्थात् सहस्र फण वाले सर्प्प के शिर पर पृथिवी है। दूसरा कहता है कि बैल के सींग पर, तीसरा कहता है कि किसी पर नहीं, चौथा कहता है कि वायु के आधार, पांचवां कहता है सूर्य के आकर्षण से खैंची हुई अपने ठिकाने पर स्थित, छठा कहता है कि पृथिवी भारी होने से नीचे-नीचे आकाश में चली जाती है इत्यादि में किस बात को सत्य मानें?

(उत्तर) जो शेष, सर्प्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित बतलाता है उस को पूछना चाहिये कि सर्प्प और बैल के मां बाप के जन्म समय किस पर थी? तथा सर्प्प और बैल आदि किस पर हैं? बैल वाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे। परन्तु सर्प्प वाले कहेंगे कि सर्प्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर, वायु आकाश में ठहरा है। उन से पूछना चाहिये कि सब किस पर हैं? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर। जब उन से कोई पूछेगा कि शेष

और बैल किस का बच्चा है? कहेंगे **शेष** कश्यप कद्रू और बैल गाय का। कश्यप मरीची,

१- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय को देखो।

मरीची मनु, मनु विराट्, विराट् ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टि का था। जब शेष का जन्म ही नहीं हुआ था उसके पहले पांच पीढ़ी हो चुकी हैं तब किस ने धारण की थी? अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृथिवी किस पर थी? तो 'तेरी चुप मेरी भी चुप' और लड़ने लग जायेंगे। इस का सच्चा अभिप्राय यह है कि जो 'बाकी' रहता है उस को शेष कहते हैं। सो किसी कवि ने **'शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्'** ऐसा कहा कि शेष के आधार पृथिवी है। दूसरे ने उसके अभिप्राय को न समझ कर सर्प्प की मिथ्या कल्पना कर ली। परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय से बाकी अर्थात् पृथक् रहता है इसी से उस को 'शेष' कहते हैं और उसी के आधार पृथिवी है-

सत्येनोत्तभिता भूमिः ।। यह ऋग्वेद का वचन है।

(सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वर ने भूमि, आदित्य और सब लोकों का धारण किया है।

उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।। यह भी ऋग्वेद का वचन है।

इसी (उक्षा) शब्द को देख कर किसी ने बैल का ग्रहण किया होगा। क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है परन्तु उस मूढ़ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोल के धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहां से आवेगा? इसलिये **उक्षा** वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से **सूर्य्य** का नाम है। उस ने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है। परन्तु सूर्य्यादि का धारण करने वाला विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है।

(प्रश्न) इतने-इतने बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा?

(उत्तर) जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल कुछ भी अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् **'विभूः प्रजासु'** यह यजुर्वेद का वचन है-वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सब का धारण कर रहा है। जो वह ईसाई मुसलमान पुराणियों के कथनानुसार विभू न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी नहीं कर सकता क्योंकि विना प्राप्ति के किसी को कोई धारण नहीं कर सकता। कोई कहै कि ये सब लोक परस्पर आकर्षण से धारित होंगे पुनः परमेश्वर के धारण

करने की क्या अपेक्षा है? उन को यह उत्तर देना चाहिये कि यह सृष्टि अनन्त है वा सान्त? जो अनन्त कहैं तो आकार वाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती और जो सान्त कहैं तो उन के पर भाग सीमा अर्थात् जिस के परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है वहां किस के आकर्षण से धारण होगा? जैसे समष्टि और व्यष्टि अर्थात् जब सब समुदाय का नाम वन रखते हैं तो **समष्टि** कहाता है और एक-एक वृक्षादि को भिन्न-भिन्न गणना करें तो **व्यष्टि** कहाता है। वैसे सब भूगोलों को समष्टि गिन कर जगत् कहैं तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्त्ता विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। इसलिए जो सब जगत् को रचता है वही-

स दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।। यह यजुर्वेद का वचन है।

जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोकालोकान्तर पदार्थ तथा सूर्य्यादि प्रकाशसहित लोक और पदार्थों का रचन धारण परमात्मा करता है। जो सब में व्यापक हो रहा है, वही सब जगत् का कर्त्ता और धारण करने वाला है।

(प्रश्न) पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर?

(उत्तर) घूमते हैं।

(प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाय?

(उत्तर) ये दोनों आधे भफूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि-

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितर॑ं च प्रयन्त्स्वः।।

-यजुः० अ० ३। मं० ६।।

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है।

आ कृष्णने रजसा वत्तर्मानो निवश्े॑ायन्नमतृ॑ मत्यर््॑ा॑ च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।।

-यजुः० अ० ३३। मं० ४३।।

जो सविता अर्थात् सूर्य्य वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीयस्वरूप के साथ वर्त्तमान; सब प्राणी अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्तिमान् द्रव्यों को दिखलाता हुआ

सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्त्तमान; अपनी परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। वैसे ही एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य्य प्रकाशक और दूसरे सब लोकलोकान्तर प्रकाश्य हैं। जैसे-

दिवि सोमो अधि श्रितः।। -अथर्व० कां० १४। अनु० १। मं० १।।

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य्य से प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य्य के प्रकाश ही से प्रकाशित होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है उतने में रात। अर्थात् उदय, अस्त, सन्ध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देशदेशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं अर्थात् जब आर्य्यावर्त्त में सूर्योदय होता है उस समय पाताल अर्थात् 'अमेरिका' में अस्त होता है और जब आर्य्यावर्त्त में अस्त होता है तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्य्यावर्त्त में मध्य दिन वा मध्य रात है उसी समय पाताल देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है। जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं। क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते। अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्नः) है। यह पृथिवी से लाखों गुणा बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होते हैं; सूर्य के घूमने से नहीं। जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। और गुरु पदार्थ विना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता। और जो जैनी कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किन्तु नीचे-नीचे चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जम्बूद्वीप में बतलाते हैं वे तो गहरी भांग के नशे में निमग्न हैं। क्यों? जो नीचे-नीचे चली जाती तो चारों ओर वायु के चक्र न बनने से पृथिवी छिन्न भिन्न होती और निम्न स्थलों में रहने वालों को वायु का स्पर्श न होता। नीचे वालों को अधिक होता और एक सी वायु की गति होती। दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्णपक्ष का होना ही नष्ट भ्रष्ट होता है। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र, और अनेक चन्द्र, अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

(प्रश्न) जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं हैं तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए?

(उत्तर) जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टि का बनाने, जीवों के कर्मफलों के देने, सब का यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अल्प सामर्थ्य भी और जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हों? इसलिए जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र हैं। वैसे ही सर्वशक्तिमान् सृष्टि, संहार और पालन सब विश्व का कर्त्ता है।

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष विषय में लिखा जायेगा। यह आठवां समुल्लास पूरा हुआ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषये
अष्टमः समुल्लासः सम्पूर्णः।।८।।

अथ नवमसमुल्लासारम्भः

अथ विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषयान् व्याख्यास्यामः

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ्सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।

-यजुः० अ० ४०। मं० १४।।

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। अविद्या का लक्षण-

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।।

यह योगसूत्र का वचन है।

जो अनित्य संसार और देहादि में नित्य अर्थात् जो कार्य जगत् देखा, सुना जाता है सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है। अशुचि अर्थात् मलमय स्त्र्यादि के शरीर और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि। दूसरा अत्यन्त विषयसेवनरूप दुःख में सुखबुद्धि आदि, तीसरा-अनात्मा में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चौथा भाग है। यह चार प्रकार का विपरीत ज्ञान अविद्या कहाती है। इस के विपरीत अर्थात् अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है। अर्थात् **'वेत्ति यथावत्तत्त्वं पदार्थस्वरूपं यया सा विद्या। यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्नि- श्चिनोति साऽविद्या ।'** जिस से पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह **विद्या** और जिस से तत्त्वस्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह **अविद्या** कहाती है। अर्थात् कर्म और उपासना अविद्या इसलिये है कि यह बाह्य और अन्तर क्रियाविशेष नाम है; ज्ञानविशेष नहीं। इसी से मन्त्र में कहा है कि विना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दुःख से पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रेपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म पाषाणमूर्त्त्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध होता है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता। इसलिये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है।

(प्रश्न) मुक्ति किस को प्राप्त नहीं होती?

(उत्तर) जो बद्ध है!
(प्रश्न) बद्ध कौन है?
(उत्तर) जो अधर्म अज्ञान में फंसा हुआ जीव है।
(प्रश्न) बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है वा निमित्त से?
(उत्तर) निमित्त से। क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती।
(प्रश्न) न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तिरित्येषा परमार्थता ।।
यह श्लोक माण्डूक्योपनिषत् पर है।
जीव ब्रह्म होने से वस्तुतः जीव का निरोध अर्थात् न कभी आवरण में आया, न जन्म लेता, न बन्ध है और न साधक अर्थात् न कुछ साधना करनेहारा है। न छूटने की इच्छा करता और न इस की कभी मुक्ति है क्योंकि जब परमार्थ से बन्ध ही नहीं हुआ तो मुक्ति क्या?
(उत्तर) यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं। क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता, पापरूप कर्मों के फल भोगरूप बन्धन में फंसता, उस के छुड़ाने का साधन करता, दुःख से छूटने की इच्छा करता और दुःखों से छूट कर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है।
(प्रश्न) ये सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं। जीव के नहीं। क्योंकि जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म्म हैं; आत्मा निर्लेप है।
(उत्तर) देह और अन्तःकरण जड़ हैं उन को शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जैसे पत्थर को शीत और उष्ण का भान वा भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसका स्पर्श करता है उसी को शीत उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं। न उन को भूख न पिपासा किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा, तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है। न उस को हर्ष, न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष, शोक, दुःख, सुख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रदि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से संकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करने वाला दण्ड और मान्य का भागी होता है। जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं होती वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का

कर्त्ता जीव सुख दुःख का भोक्ता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है; वह ईश्वर साक्षी नहीं।

(प्रश्न) जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। जैसे दर्प्पण के टूटने फूटने से बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती, इसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव तब तक है कि जब तक वह अन्तःकरणोपाधि है। जब अन्तःकरण नष्ट हो गया तब जीव मुक्त है।

(उत्तर) यह बालकपन की बात है। क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है। जैसे मुख और दर्पण आकार वाले हैं और पृथक़् भी हैं; जो पृथक़् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार, सर्वव्यापक होने से उस का प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता।

(प्रश्न) देखो! गम्भीर स्वच्छ जल में निराकार और व्यापक आकाश का आभास पड़ता है। इसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्मा का आभास है। इसलिये इस को चिदाभास कहते हैं।

(उत्तर) यह बालबुद्धि का मिथ्या प्रलाप है। क्योंकि आकाश दृश्य नहीं तो उस को आंख से कोई भी क्योंकर देख सकता है।

(प्रश्न) यह जो ऊपर को नीला और धूंधलापन दीखता है वह आकाश नीला दीखता है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं।

(प्रश्न) तो वह क्या है?

(उत्तर) अलग-अलग पृथिवी, जल और अग्नि के त्रसरेणु दीखते हैं। उस में जो नीलता दीखती है वह अधिक जल जो कि वर्षता है सो वही नील; जो धूंधलापन दीखता है वह पृथिवी से धूली उड़कर वायु में घूमती है वह दीखती और उसी का प्रतिबिम्ब जल वा दर्प्पण में दीखता है; आकाश का कभी नहीं।

(प्रश्न) जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाश के भेद व्यवहार में होते हैं वैसे ही ब्रह्म के ब्रह्माण्ड और अन्तःकरण उपाधि के भेद से ईश्वर और जीव नाम होता है। जब घटादि नष्ट हो जाते हैं तब महाकाश ही कहाता है।

(उत्तर) यह भी बात अविद्वानों की है। क्योंकि आकाश कभी छिन्न-भिन्न नहीं होता। व्यवहार में भी 'घड़ा लाओ' इत्यादि व्यवहार होते हैं। कोई नहीं कहता कि घड़े का आकाश लाओ। इसलिये यह बात ठीक नहीं।

(प्रश्न) जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्तःकरण घूमते हैं। वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से लोहा; वैसे चेतन हो रहे हैं। जैसे वे चलते फिरते और आकाश तथा ब्रह्म निश्चल है वैसे जीव को ब्रह्म मानने में कोई दोष नहीं आता।

(उत्तर) यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं क्योंकि जो सर्वव्यापी ब्रह्म अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है तो सर्वज्ञादि गुण उस में होते हैं वा नहीं? जो कहो कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती तो कहो कि ब्रह्म आवृत्त और खण्डित है वा अखण्डित? जो कहो कि अखण्डित है तो बीच में कोई पड़दा नहीं डाल सकता। जब पड़दा नहीं तो सर्वज्ञता क्यों नहीं? जो कहो कि अपने स्वरूप को भूलकर अन्तःकरण के साथ चलता सा है स्वरूप से नहीं? जब स्वयं नहीं चलता तो अन्तःकरण जितना-जितना पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और आगे-आगे जहां-जहां सरकता जायेगा वहां-वहां का ब्रह्म भ्रान्त; अज्ञानी होता जायेगा और जितना-जितना छूटता जायेगा वहां-वहां ज्ञानी, पवित्र और मुक्त होता जायेगा। इसी प्रकार सर्वत्र सृष्टि के ब्रह्म को अन्तःकरण बिगाड़ा करेंगे और बन्ध मुक्ति भी क्षण-क्षण में हुआ करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणे जो वैसा होता तो किसी जीव को पूर्व देखे सुने का स्मरण न होता क्योंकि जिस ब्रह्म ने देखा वह नहीं रहा इसलिये ब्रह्म जीव, जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होता; सदा पृथक्-पृथक् हैं।

(प्रश्न) यह सब अध्यारोपमात्र है अर्थात् अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का स्थापन करना अध्यारोप कहाता है। वैसे ही ब्रह्म वस्तु में सब जगत् और इस के व्यवहार का अध्यारोप करने से जिज्ञासु को बोध कराना होता है वास्तव में सब ब्रह्म ही है।

(प्रश्न) अध्यारोप का करने वाला कौन है?

(उत्तर) जीव।

(प्रश्न) जीव किस को कहते हो?

(उत्तर) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन को।

(प्रश्न) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन दूसरा है वा वही ब्रह्म?

(उत्तर) वही ब्रह्म है।

(प्रश्न) तो क्या ब्रह्म ही ने अपने में जगत् की झूठी कल्पना कर ली?

(उत्तर) हो, ब्रह्म की इससे क्या हानि?

(प्रश्न) जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह झूँठा नहीं होता?
(उत्तर) नहीं। क्योंकि जो मन, वाणी से कल्पित वा कथित है वह सब झूंठा है।
(प्रश्न) फिर मन वाणी से झूठी कल्पना करने और मिथ्या बोलने वाला ब्रह्म कल्पित और मिथ्यावादी हुआ वा नहीं?
(उत्तर) हो, हम को इष्टापत्ति है।
वाह रे झूठे! तुम ने सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्यसंकल्प परमात्मा को मिथ्याचारी कर दिया। क्या यह तुम्हारी दुर्गति का कारण नहीं है? किस उपनिषत्, सूत्र वा वेद में लिखा है कि परमेश्वर मिथ्यासंकल्प और मिथ्यावादी है? क्योंकि जैसे किसी चोर ने कोतवाल को दण्ड दिया अर्थात् 'उलटि चोर कोतवाल को दण्डे' इस कहानी के सदृश तुम्हारी बात हुई। यह तो बात उचित है कि कोतवाल चोर को दण्डे परन्तु यह बात विपरीत है कि चोर कोतवाल को दण्ड देवे। वैसे ही तुम मिथ्या संकल्प और मिथ्यावादी होकर वही अपना दोष ब्रह्म में व्यर्थ लगाते हो। जो ब्रह्म मिथ्याज्ञानी, मिथ्यावादी, मिथ्याकारी होवे तो सब अनन्त ब्रह्म वैसा ही हो जाय क्योंकि वह एकरस है; सत्यस्वरूप, सत्यमानी, सत्यवादी और सत्यकारी है। ये सब दोष तुम्हारे हैं; ब्रह्म के नहीं। जिस को तुम विद्या कहते हो वह अविद्या है और तुम्हारा अध्यारोप भी मिथ्या है क्योंकि आप ब्रह्म न होकर अपने को ब्रह्म और ब्रह्म को जीव मानना यह मिथ्या ज्ञान नहीं तो क्या है? जो सर्वव्यापक है वह परिच्छिन्न न होने से अज्ञान और बन्ध में कभी नहीं गिरता क्योंकि अज्ञान परिच्छिन्न एकदेशी अल्प अल्पज्ञ जीव में होता है; सर्वज्ञ सर्वव्यापी ब्रह्म में नहीं।

अब मुक्ति बन्ध का वर्णन करते हैं

(प्रश्न) मुक्ति किसको कहते हैं?
(उत्तर) **'मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः'** जिस में छूट जाना हो उस का नाम मुक्ति है।
(प्रश्न) किस से छूट जाना?
(उत्तर) जिस से छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं?
(प्रश्न) किस से छूटने की इच्छा करते हैं?
(उत्तर) जिस से छूटना चाहते हैं?
(प्रश्न) किस से छूटना चाहते हैं।
(उत्तर) दुःख से।

(प्रश्न) छूट कर किस को प्राप्त होते और कहां रहते हैं?
(उत्तर) सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं।
(प्रश्न) मुक्ति और बन्ध किन-किन बातों से होता है?
(उत्तर) परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने; पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने; विद्या पढ़ने, पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने; सब से उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे। इत्यादि साधनों से मुक्ति और इन से विपरीत ईश्वराज्ञाभंग करने आदि काम से बन्ध होता है।
(प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है।
(उत्तर) विद्यमान रहता है।
(प्रश्न) कहां रहता है?
(उत्तर) ब्रह्म में।
(प्रश्न) ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है?
(उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् उस को कहीं रुकावट नहीं; विज्ञान, आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।
(प्रश्न) मुक्त जीव का स्थूल शरीर रहता है वा नहीं?
(उत्तर) नहीं रहता।
(प्रश्न) फिर वह सुख और आनन्द भोग कैसे करता है?
(उत्तर) उस के सत्यसंकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं; भौतिक संग नहीं रहता। जैसे-
शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तम्भवत्यहङ् कुर्वाणोऽहंक्यनरो भवति।। -शतपथ कां० १४।।
मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये घ्राण, संकल्प विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिए चित्त और अहंकार के अर्थ अहंकाररूप अपनी स्वशक्ति से

जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और संकल्पमात्र शरीर होता है जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।

(प्रश्न) उस की शक्ति कै प्रकार की और कितनी है?

(उत्तर) मुख्य एक प्रकार की शक्ति है परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्धग्रहण तथा ज्ञान इन २४ चौबीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव हैं। इस से मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्तिरूप भोग करता है। जो मुक्ति में जीव का लय होता तो मुक्ति का सुख कौन भोगता? और जो जीव के नाश ही को मुक्ति समभफ़ते हैं वे तो महामूढ़ हैं क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूट कर आनन्दस्वरूप, सर्वव्यापक, अनन्त, परमेश्वर में जीवों का आनन्द में रहना। देखो वेदान्त शारीरक सूत्रें में-

अभावं बादरिराह ह्येवम्।

जो बादरि व्यास जी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और उस के साथ मन का भाव मानता है अर्थात् जीव और मन का लय पराशर जी नहीं मानते। वैसे ही-

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्।

और जैमिनि आचार्य्य मुक्त पुरुष का मन के समान सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियां, प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं। अभाव नहीं।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः।

व्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव इन दोनों को मानते हैं। अर्थात् शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है। अपवित्रता, पापाचरण, दुःख, अज्ञानादि का अभाव मानते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्।। यह उपनिषत् का वचन है।

जब शुद्ध मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है। उस को परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति।।

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते।
य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषां सर्वे च लोका आत्ता सर्वे च कामाः स सर्वा¦श्च लोकानाप्नोति सर्वा¦श्च कामान्यस्तमा- त्मानमनुविद्य विजानातीति।।
मघवन्मर्त्यँ वा इदँ्शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृतस्याऽशरीरस्यात्मनो-ऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययो-रपहतिस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।। -छान्दोग्य।।
जो परमात्मा अपहतपाप्मा सर्व पाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा से रहित, सत्यकाम, सत्यसंकल्प है उस की खोज और उसी की जानने की इच्छा करनी चाहिए। जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब कामों को प्राप्त होता है; जो परमात्मा को जान के मोक्ष के साधन और अपने को शुद्ध करना जानता है सो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से कामों को देखता, प्राप्त होता हुआ रमण करता है।
जो ये ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होके मोक्ष सुख को भोगते हैं और इसी परमात्मा का जो कि सब का अन्तर्यामी आत्मा है उस की उपासना मुक्ति की प्राप्ति करने वाले विद्वान् लोग करते हैं। उस से उन को सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात् जो-जो संकल्प करते हैं वह-वह लोक और वह-वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं। क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते।
जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा है कि हे परमपूजित धनयुक्त पुरुष! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है और जैसे सिह के मुख में बकरी होवे वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच है सो शरीर इस मरण और शरीर रहित जीवात्मा का निवास स्थान है। इसीलिये यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती ही है और जो शरीर रहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उस को सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्द में रहता है।
(प्रश्न) जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म मरणरूप दुःख में कभी आते हैं वा नहीं? क्योंकि-
न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तत्त इति।। उपनिषद्वचनम्।।
अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्।। शारीरक सूत्र।।

यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।। भगवद्गीता।।
इत्यादि वचनों से विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्त होकर पुनः संसार में कभी नहीं आता।
(उत्तर) यह बात ठीक नहीं; क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है-

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पनु दार्त् पितरं च दृशय्ेाां मातरं च ।।१।।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेय्ां मातरं च ।।२।।
- ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० १ । २ ।।

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।। -सांख्यसूत्र।।
(प्रश्न) हम लोग किस का नाम पवित्र जानें? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है। हम को मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है? ।।१।।
(उत्तर) हम इस स्वप्रकाशस्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हम को मुक्ति में आनन्द भुगा कर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है।।२।।
जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं, अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती।
(प्रश्न) तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।
दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।।
-न्यायसूत्र।।
जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है क्योंकि जब मिथ्याज्ञान अविद्या, लोभादि दोष, विषय, दुष्टव्यसनों में प्रवृत्ति, जन्म और दुःख का उत्तर-उत्तर के छूटने से पूर्व-पूर्व के निवृत्त होने ही से मोक्ष होता है जो कि सदा बना रहता है।
(उत्तर) यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभाव ही का नाम होवे। जैसे **'अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्त्तते'** बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्य को है। इस से यही विदित होता है कि इस को बहुत सुख वा दुःख है।

इसी प्रकार यहां भी अत्यन्त शब्द का अर्थ जानना चाहिये। **(प्रश्न)** जो मुक्ति से भी जीव फिर आता है तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता है?
(उत्तर) ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।
यह मुण्डक उपनिषत् का वचन है।
वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः **महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं।** इसकी संख्या यह है कि **तेंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रें का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का परान्तकाल होता है।** इसको गणित की रीति से यथावत् समझ लीजिए। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।
(प्रश्न) सब संसार और ग्रन्थकारों का यही मत है कि जिस से पुनः जन्म मरण में कभी न आवें।
(उत्तर) यह बात कभी नहीं हो सकती क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं पुनः उस का फल अनन्त कैसे हो सकता है? अनन्त आनन्द का भोगने का असीम सामर्थ्य; कर्म और साधन जीवों में नहीं, इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिन के साधन अनित्य हैं उन का फल नित्य कभी नहीं हो सकता। और जो मुक्ति में से कोई भी लौट कर जीव इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहिये।
(प्रश्न) जितने जीव मुक्त होते हैं उतने ईश्वर नये उत्पन्न करके संसार में रख देता है इसलिये निश्शेष नहीं होते।
(उत्तर) जो ऐसा होवे तो जीव अनित्य हो जायें क्योंकि जिस की उत्पत्ति होती है उस का नाश अवश्य होता है फिर तुम्हारे मतानुसार मुक्ति पाकर भी विनष्ट हो जायें। मुक्ति अनित्य हो गई और मुक्ति के स्थान में बहुत सा भीड़ भड़क्का हो जायेगा क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ भी नहीं होने से बढ़ती का पारावार न रहेगा और दुःख के अनुभव के विना सुख कुछ भी नहीं हो सकता। जैसे कटु न हो तो मधुर क्या, जो मधुर न हो तो कटु क्या कहावे? क्योंकि एक स्वाद के एक रस के विरुद्ध होने से दोनों की परीक्षा होती है। जैसे कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता पीता जाय उस को वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के रसों के भोगने वाले को होता है। और जो ईश्वर अन्त वाले कर्मों का अनन्त फल देवे तो उस का न्याय नष्ट हो जाय। जो जितना भार उठा सके उतना उस पर धरना बुद्धिमानों का काम है। जैसे एक मन भर उठाने वाले के शिर पर

दश मन धरने से भार धरने वाले की निन्दा होती है वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वर के लिए ठीक नहीं। और जो परमेश्वर नये जीव उत्पन्न करता है तो जिस कारण से उत्पन्न होते हैं वह चुक जायेगा। क्योंकि चाहैं कितना ही बड़ा धनकोश हो परन्तु जिस में व्यय है और आय नहीं उसका कभी न कभी दिवाला निकल ही जाता है। इसलिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्ति में जाना वहां से पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़े से कारागार से जन्मकारागार दण्ड, काले पानी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानता है? जब वहां से आना ही न हो तो जन्म कारागार से इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्म में लय होना समुद्र में डूब मरना है।

(प्रश्न) जैसे परमेश्वर नित्यमुक्त, पूर्ण सुखी है वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा तो कोई दोष न आवेगा।

(उत्तर) परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म स्वभाववाला है इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन में नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाला रहता है, परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।

(प्रश्न) जब ऐसी है तो मुक्ति भी जन्म मरण के सदृश है इसलिये श्रम करना व्यर्थ है।

(उत्तर) मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं, क्योंकि जब तक ३६००० छत्तीस सहस्र वार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना, क्या छोटी बात है? जब आज खाते पीते हो कल भूख लगने वाली है पुनः इस का उपाय क्यों करते हो? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिये क्यों न करना? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है वैसे ही मुक्ति से लौट कर जन्म में आना है तथापि उस का उपाय करना अत्यावश्यक है?

(प्रश्न) मुक्ति के क्या-क्या साधन हैं?

(उत्तर) कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं परन्तु विशेष उपाय ये हैं। जो मुक्ति चाहै वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है; उन को छोड़ सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहै वह अधर्म को छोड़

धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है। सत्पुरुषों के संग से **विवेक** अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय अवश्य करें, पृथक्‌-पृथक्‌ जानें। और शरीर अर्थात् जीव पञ्चकोशों का विवेचन करें। एक **'अन्नमय'** जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। दूसरा **'प्राणमय'** जिस में 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर जाता, 'अपान' जो बाहर से भीतर आता, 'समान' जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता, 'उदान' जिस से कण्ठस्थ अन्न पान खैंचा जाता और बल पराक्रम होता है, 'व्यान' जिस से सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। तीसरा **'मनोमय'** जिस में मन के साथ अहंकार, वाक्‌, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म-इन्द्रियां हैं। चौथा **'विज्ञानमय'** जिस में बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञान-इन्द्रियाँ जिन से जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पांचवां **'आनन्दमयकोश'** जिस में प्रीति प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिकानन्द, आनन्द और आवमार कारण रूप प्रकृति है। ये पांच कोष कहाते हैं। इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

तीन अवस्था-एक 'जागृत' दूसरी 'स्वप्न' और तीसरी 'सुषुप्ति' अवस्था कहाती है।

तीन शरीर हैं-एक 'स्थूल' जो यह दीखता है। दूसरा पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्त्वों का समुदाय 'सूक्ष्मशरीर' कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इस के दो भेद हैं-एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप हैं। यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है। तीसरा कारण जिस में सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है। चौथा तुरीय शरीर वह कहाता है जिस में समाधि से परमात्मा के आनन्दस्वरूप में मग्न जीव होते हैं। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।

इन सब कोष, अवस्थाओं से जीव पृथक्‌ है, क्योंकि यह सब को विदित है कि अवस्थाओं से जीव पृथक्‌ है। क्योंकि जब मृत्यु होता है तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया, यही जीव सब का प्रेरक, सब का धर्त्ता, साक्षीकर्त्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता भोक्ता नहीं तो उस को

जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है। क्योंकि विना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं इन को सुख-दुःख का भोग वा पाप पुण्य कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हां, इन के सम्बन्ध से जीव पाप पुण्यों का कर्त्ता और सुख दुःखों का भोक्ता है। जब इन्द्रियां अर्थों में मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।

दूसरा साधन 'वैराग्य'-अर्थात् जो विवेक से सत्यासत्य को जाना हो उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना **विवेक** है-जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर उस की आज्ञापालन और उपासना में तत्पर होना, उस से विरुद्ध न चलना, सृष्टि से उपकार लेना **विवेक** कहाता है।

तत्पश्चात् **तीसरा साधन-'षट्क सम्पत्ति'** अर्थात् छः प्रकार के कर्म करना-एक 'शम' जिस से अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में प्रवृत्त रखना। दूसरा 'दम' जिस से श्रोत्रदि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटा कर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना। तीसरा 'उपरति' जिस से दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहना। चौथा 'तितिक्षा' चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोक को छोड़ मुक्ति साधनों में सदा लगे रहना। पांचवां 'श्रद्धा' जो वेदादि सत्य शास्त्र और इन के बोध से पूर्ण आप्त विद्वान् सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना। छठा 'समाधान' चित्त की एकाग्रता ये छः मिलकर एक 'साधन' तीसरा कहाता है।

चौथा 'मुमुक्षुत्व' अर्थात् जैसे क्षुधा तृषातुर को सिवाय अन्न जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता वैसे विना मुक्ति के साधन और मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना। ये चार साधन और चार **अनुबन्ध** अर्थात् साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते हैं। इन में से जो न-इन चार साधनों से युक्त पुरुष होता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है।

दूसरा 'सम्बन्ध' ब्रह्म की प्राप्ति रूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि शास्त्र प्रतिपादक को यथावत् समझ कर अन्वित करना।

तीसरा 'विषयी' सब शास्त्रें का प्रतिपादन विषय ब्रह्म उस की प्राप्तिरूप विषय वाले पुरुष का नाम **विषयी** है।

चौथा 'प्रयोजन' सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द को प्राप्त होकर मुक्ति सुख का होना। ये चार अनुबन्ध कहाते हैं।

तदनन्तर **'श्रवणचतुष्टय'** एक **'श्रवण'** जब कोई विद्वान् उपदेश करे तब शान्त, ध्यान देकर सुनना, विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में अत्यन्त ध्यान देना चाहिये कि यह सब विद्याओं में सूक्ष्म विद्या है। सुन कर दूसरा **'मनन'** एकान्त देश में बैठ के सुने हुए का विचार करना। जिस बात में शंका हो पुनः पूछना और सुनते समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझें तो पूछना और समाधान करना। तीसरा **'निदिध्यासन'** जब सुनने और मनन करने से निसन्देह हो जाय तब समाधिस्थ हो कर उस बात को देखना समझना कि वह जैसा सुना था विचारा था वैसा ही है वा नहीं? ध्यानयोग से देखना। चौथा **'साक्षात्कार'** अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप गुण और स्वभाव हो वैसा याथातथ्य जान लेना ही 'श्रवणचतुष्टय' कहाता है। सदा तमोगुण अर्थात् क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि; रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्त्व अर्थात् शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार आदि गुणों को धारण करे। (मैत्री) सुखी जनों में मित्रता, (करुणा) दुःखी जनों पर दया, (मुदिता) पुण्यात्माओं से हर्षित होना, (उपेक्षा) दुष्टात्माओं में न प्रीति और न वैर करना।

नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घण्टा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे जिस से भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों।

देखो! अपने चेतनस्वरूप हैं इसी से ज्ञानस्वरूप और मन के साक्षी हैं क्योंकि जब मन शान्त, चञ्चल, आनन्दित वा विषादयुक्त होता है उस को यथावत् देखते हैं वैसे ही इन्द्रियां प्राण आदि का ज्ञाता, पूर्वदृष्ट का स्मरणकर्त्ता और एक काल में अनेक पदार्थों के वेत्ता, धारणाकर्षणकर्त्ता और सब से पृथक्ः हैं। जो पृथक्ः न होते तो स्वतन्त्र कर्त्ता इन के प्रेरक अधिष्ठाता कभी नहीं हो सकते।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः। -योगेशास्त्रे पादे २। सू० ३।।

इन में से **अविद्या** का स्वरूप कह आये। पृथक्ः वर्त्तमान बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समभफ़ना **अस्मिता,** सुख में प्रीति **राग**, दुःख में अप्रीति **द्वेष** और सब प्राणिमात्र को यह इच्छा सदा रहती है कि 'मैं सदा शरीरस्थ रहूं, मरूँ नहीं'

मृत्यु दुःख से त्रस **अभिनिवेश** कहाता है। इन पांच क्लेशों को योगाभ्यास विज्ञान से छुड़ा के ब्रह्म को प्राप्त हो के मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिये।

(प्रश्न) जन्म एक है वा अनेक?

(उत्तर) अनेक।

(प्रश्न) जो अनेक हों तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं?

(उत्तर) जीव अल्पज्ञ है त्रिकालदर्शी नहीं इसलिये स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा पांचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं उन का स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और जागृत वा स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है तब जागृत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पांचवें महीने के नवमे दिन दस बजे पर पहली मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किस ओर किस प्रकार का था? और मन में क्या विचार था? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्व जन्म की बातों के स्मरण में शंका करनी केवल लड़कपने की बात है। और जो स्मरण नहीं होता है इसी से जीव सुखी है। नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख-देख दुखित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्त्तमान को जानना चाहै तो भी नहीं जान सकता क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है; जीव के नहीं।

(प्रश्न) जब जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इस को दण्ड देता है तो जीव का सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जब उस को ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था उसी का यह फल है तभी वह पापकर्मों से बच सके ?

(उत्तर) तुम ज्ञान कै प्रकार का मानते हो?

(प्रश्न) प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का।

(उत्तर) तो जब तुम जन्म से लेकर समय-समय में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता आदि सुख-दुःख संसार में देखकर पूर्वजन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते? जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो उस का निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता और अविद्वान् नहीं जान सकता। उस ने वैद्यक विद्या पढ़ी है और दूसरे ने नहीं। परन्तु ज्वरादि रोग होने से अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझ से कोई कुपथ्य हो गया है जिस से मुझे यह रोग हुआ

है। वैसे ही जगत् में विचित्र सुख दुःख आदि की घटती बढ़ती देख के पूर्वजन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते ? और जो पूर्वजन्म को न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है क्योंकि विना पाप के दारिद्र्यादि दुःख और विना पूर्वसिञ्चत पुण्य के राज्य धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उस को क्यों दी? और पूर्वजन्म के पाप पुण्य के अनुसार दुःख सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

(प्रश्न) एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय। जैसे माली अपने उपवन में छोटे और बड़े वृक्ष लगाता किसी को काटता उखाड़ता और किसी की रक्षा करता बढ़ाता है। जिस की जो वस्तु है उसको वह चाहे जैसे रक्खे। उस के ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करने वाला नहीं जो उस को दण्ड दे सके वा ईश्वर किसी से डरे।

(उत्तर) परमात्मा जिस लिए न्याय चाहता करता; अन्याय कभी नहीं करता इसीलिये वह पूजनीय और बड़ा है। जो न्यायविरुद्ध करे वह ईश्वर ही नहीं। जैसे माली युक्ति के विना मार्ग वा अस्थान में वृक्ष लगाने, न काटने योग्य को काटने, अयोग्य को बढ़ाने, योग्य को न बढ़ाने से दूषित होता है इसी प्रकार विना कारण के करने से ईश्वर को दोष लगे। परमेश्वर के ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है क्योंकि वह स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है। जो उन्मत्त के समान काम करे तो जगत् के श्रेष्ठ न्यायाधीश से भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे। क्या इस जगत् में विना योग्यता के उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुष्ट काम किये विना दण्ड देने वाला निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता ? इसीलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता इसी से किसी से नहीं डरता।

(प्रश्न) परमात्मा ने प्रथम ही से जिस के लिए जितना देना विचारा है उतना देता और जितना काम करना है उतना करता है।

(उत्तर) उस का विचार जीवों के कर्मानुसार होता है अन्यथा नहीं। जो अन्यथा हो तो वह भी अपराधी अन्यायकारी होवे।

(प्रश्न) बड़े छोटों को एक सा ही सुख दुःख है। बड़ों को बड़ी चिन्ता और छोटों को छोटी। जैसे-किसी साहूकार का विवाद राजघर में लाख रुपये का हो तो वह अपने घर से पालकी में बैठ कर कचहरी में उष्णकाल में जाता हो, बाजार में हो के उस को जाता देख कर अज्ञानी लोग कहते हैं कि देखो पुण्य पाप का फल, एक पालकी में आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे विना जूते पहिरे नीचे से तप्यमान होते हुए पालकी को उठा कर ले जाते हैं। परन्तु बुद्धिमान् लोग इस

में यह जानते हैं कि जैसे-जैसे कचहरी निकट आती जाती है वैसे-वैसे साहूकार को बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारों को आनन्द होता जाता है। जब कचहरी में पहुंचते हैं तब सेठ जी इधर उधर जाने का विचार करते हैं कि प्राड्विवाक (वकील) के पास जाऊँ वा सरिश्तेदार के पास। आज हारूंगा वा जीतूँगा न जाने क्या होगा? और कहार लोग तमाखू पीते परस्पर बातें चीतें करते हुए प्रसन्न होकर आनन्द में सो जाते हैं। जो वह जीत जाय तो कुछ सुख और हार जाये तो सेठ जी दुःखसागर में डूब जाय और वे कहार जैसे के वैसे रहते हैं। इसी प्रकार जब राजा सुन्दर कोमल बिछोने में सोता है तो भी शीघ्र निद्रा नहीं आती और मजूर कंकर पत्थर और मट्टी ऊँचे नीचे स्थल पर सोता है उस को भफ़ट ही निद्रा आती है। ऐसे ही सर्वत्र समभफ़ो।

(उत्तर) यह समभफ़ अज्ञानियों की है। क्या किसी साहूकार से कहें कि तू कहार बन जा और कहार से कहें कि तू साहूकार बन जा तो साहूकार कभी कहार बनना नहीं और कहार साहूकार बनना चाहते हैं। जो सुख दुःख बराबर होता तो अपनी-अपनी अवस्था छोड़ नीच और ऊंच बनना दोनों न चाहते। देखो! एक जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान् राजा की राणी के गर्भ में आता और दूसरा महादरिद्र घसियारी के गर्भ में आता है। एक को गर्भ से लेकर सर्वथा सुख और दूसरे को सब प्रकार दुःख मिलता है। एक जब जन्मता है तब सुन्दर सुगन्धितयुक्त जलादि से स्नान, युक्ति से नाड़ी छेदन, दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होते हैं। जब वह दूध पीना चाहता है तो उस के साथ मिश्री आदि मिला कर यथेष्ट मिलता है। उसको प्रसन्न रखने के लिये नौकर चाकर खिलौना सवारी उत्तम स्थानों में लाड़ से आनन्द होता है। दूसरे का जन्म जंगल में होता, स्नान के लिये जल भी नहीं मिलता, जब दूध पीना चाहता तब दूध के बदले में घूंसा थपेड़ा आदि से पीटा जाता है। अत्यन्त आर्तस्वर से रोता है। कोई नहीं पूछता। इत्यादि जीवों को विना पुण्य पाप के सुख दुःख होने से परमेश्वर पर दोष आता है। दूसरा जैसे विना किये कर्मों के सुख दुःख मिलते हैं तो आगे नरक स्वर्ग भी न होना चाहिये। क्योंकि जैसे परमेश्वर ने इस समय विना कर्मों के सुख दुःख दिया है वैसे मरे पीछे भी जिस को चाहेगा उस को स्वर्ग में और जिस को चाहे नरक में भेज देगा। पुनः सब जीव अधर्मयुक्त हो जायेंगे, धर्म क्यों करें? क्योंकि धर्म का फल मिलने में सन्देह है। परमेश्वर के हाथ है, जैसे उस की प्रसन्नता होगी वैसा करेगा तो पापकर्मों में भय न होकर संसार में पाप की वृद्धि और

धर्म का क्षय हो जायेगा। इसलिये पूर्व जन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्त्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।
(प्रश्न) मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एक सा है वा भिन्न-भिन्न जाति के?
(उत्तर) जीव एक से हैं परन्तु पाप पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।
(प्रश्न) मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नहीं?
(उत्तर) हां! जाता आता है। क्योंकि जब पाप बढ़ जाता पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य जन्म होता है। इस में भी पुण्य पाप के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं। और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता है और पुण्य के फल भोग कर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है। जब शरीर से निकलता है उसी का नाम 'मृत्यु' और शरीर के साथ संयोग होने का नाम 'जन्म' है। जब शरीर छोड़ता तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है क्योंकि **'यमेन वायुना'** वेद में लिखा है कि यम नाम वायु का है; पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देता है। वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य्य में जा गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है। जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। और नपुंसक गर्भ की स्थिति-समय स्त्री पुरुष के शरीर में सम्बन्ध करके रज वीर्य के बराबर होने से होता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है कि जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता। क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्यों में उत्तम जन्म और मुक्ति में महाकल्प पर्यन्त जन्म मरण दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है।
(प्रश्न) मुक्ति एक जन्म में होती है वा अनेकों में ?
(उत्तर) अनेक जन्मों में। क्योंकि-
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे॥१॥ -मुण्डक॥

जब इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है; उस में निवास करता है। **(प्रश्न)** मुक्ति में परमेश्वर में जीव मिल जाता है वा पृथक्‌ रहता है ? **(उत्तर)** पृथक्‌ रहता है। क्योंकि जो मिल जाय तो मुक्ति का सुख कौन भोगे और मुक्ति के जितने साधन हैं वे सब निष्फल हो जावें। वह मुक्ति तो नहीं किन्तु जीव का प्रलय जानना चाहिये। जब जीव परमेश्वर की आज्ञापालन, उत्तम कर्म, सत्संग, योगाभ्यास पूर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्ति को पाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥ -तैनिरीन॥

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थित सत्य ज्ञान और अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्मा को जानता है वह उस व्यापकरूप ब्रह्म में स्थित होके उस 'विपश्चित्' अनन्तविद्यायुक्त ब्रह्म के साथ कामों को प्राप्त होता है। अर्थात् जिस-जिस आनन्द की कामना करता है उस-उस आनन्द को प्राप्त होता है। यही **मुक्ति** कहाती है।

(प्रश्न) जैसे शरीर के विना सांसारिक सुख नहीं भोग सकता वैसे मुक्ति में विना शरीर आनन्द कैसे भोग सकेगा?

(उत्तर) इस का समाधान पूर्व कह आये हैं और इतना अधिक सुनो-जैसे सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है वैसे परमेश्वर के आधार मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है। वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टिविद्या को क्रम से देखता हुआ सब लोकलोकान्तरों में अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं, और नहीं दीखते उन सब में घूमता है। वह सब पदार्थों को जो कि उस के ज्ञान के आगे हैं सब को देखता है। जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उस को सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है। यही सुखविशेष स्वर्ग और विषय तृष्णा में फंस कर दुःखविशेष भोग करना नरक कहाता है। **'स्वः'** सुख का नाम है। **'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः' 'अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति'** जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है। सब जीव स्वभाव से

सुखप्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उन को सुख का मिलना और दुःख का छूटना न होगा। क्योंकि जिस का कारण अर्थात् मूल होता है वह नष्ट कभी नहीं होता। जैसे-

छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति।

जैसे मूल कट जाने से वृक्ष नष्ट हो जाता है वैसे पाप को छोड़ने से दुःख नष्ट होता है। देखो! मनुस्मृति में पाप और पुण्य की बहुत प्रकार की गति-

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाऽशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्।।१।।
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्।।२।।
यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्।।३।।
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजःस्मृतम्।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः।।४।।
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्।।५।।
यत्तु दुःखसमायुक्तम् अप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात् सततं हारि देहिनाम्।।६।।
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यम् अविज्ञेयं तमस्तद् उपधारयेत्।।७।।
त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः।।८।।
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम्।।९।।
आरम्भरुचिताऽधैर्य्यम् असत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्।।१०।।
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्।।११।।
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम्।।१२।।

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्।
न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम्।।१३।।
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।
तेन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम्।।१४।।
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्।।१५।। मनु० अ० १२।।

अर्थात् मनुष्य इस प्रकार अपने श्रेष्ठ, मध्य और निकृष्ट स्वभाव को जानकर उत्तम स्वभाव का ग्रहण; मध्य और निकृष्ट का त्याग करे और यह भी निश्चय जाने कि यह जीव मन से जिस शुभ वा अशुभ कर्म को करता है उस को मन, वाणी से किये को वाणी और शरीर से किये को शरीर से अर्थात् सुख दुःख को भोगता है।।१।।

जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है उस को **स्थावर** का जन्म; वाणी से किये पाप कर्मों से पक्षी और मृगादि तथा मन से किये दुष्ट कर्मों से चाण्डाल आदि का शरीर मिलता है।।२।।

जो गुण इन जीवों के देह में अधिकता से वर्त्तता है वह गुण उस जीव को अपने सदृश कर देता है।।३।।

जब आत्मा में ज्ञान हो तब सत्त्व; जब अज्ञान रहे तब तम; और जब राग द्वेष में आत्मा लगे तब रजोगुण जानना चाहिये। ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त हो कर रहते हैं।।४।।

उस का विवेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब आत्मा में प्रसन्नता मन प्रसन्न प्रशान्त के सदृश शुद्धभानयुक्त वर्त्ते तब समभफ़ना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान हैं।।५।।

जब आत्मा और मन दुःखसंयुक्त प्रसन्नतारहित विषय में इधर उधर गमन आगमन में लगे तब समभफ़ना कि रजोगुण प्रधान, सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रधान है।।६।।

जब मोह अर्थात् सांसारिक पदार्थों में फंसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मन में कुछ विवेक न रहै; विषयों में आसक्त तर्क वितर्क रहित जानने के योग्य न हो; तब निश्चय समभफ़ना चाहिये कि इस समय मुभफ़ में तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण अप्रधान है।।७।।

अब जो इन तीनों गुणों का उत्तम, मध्यम और निकृष्ट फलोदय होता है उस को पूर्णभाव से कहते हैं।।८।।

जो वेदों का अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इन्द्रियों का निग्रह, धर्म क्रिया और आत्मा का चिन्तन होता है यही सत्त्वगुण का लक्षण है।।९।।
जब रजोगुण का उदय, सत्त्व और तमोगुण का अन्तर्भाव होता है तब आरम्भ में रुचिता, धैर्य-त्याग, असत् कर्मों का ग्रहण, निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है तभी समभफ़ना कि रजोगुण प्रधानता से मुभफ़ में वर्त्त रहा है।।१०।।
जब तमोगुण का उदय और दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यन्त लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य्य का नाश, क्रूरता का होना, नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वर में श्रद्धा का न रहना, भिन्न-भिन्न अन्तःकरण की वृत्ति और एकाग्रता का अभाव जिस किसी से याचना अर्थात् मांगना, प्रमाद अर्थात् मद्यपानादि दुष्ट व्यसनों में फंसना होवे तब समभफ़ना कि तमोगुण मुझ में बढ़ कर वर्त्तता है।।११।।
यह सब तमोगुण का लक्षण विद्वान् को जानने योग्य है तथा जब अपना आत्मा जिस कर्म को करके करता हुआ और करने की इच्छा से लज्जा, शंका और भय को प्राप्त होवे तब जानो कि मुभफ़ में प्रवृद्ध तमोगुण है।।१२।।
जिस कर्म से इस लोक में जीवात्मा पुष्कल प्रसिद्धि चाहता, दरिद्रता होने में भी चारण, भाट आदि को दान देना नहीं छोड़ता तब समभफ़ना कि मुभफ़ में रजोगुण प्रबल है।।१३।।
और जब मनुष्य का आत्मा सब से जानने को चाहै, गुण ग्रहण करता जाय, अच्छे कर्मों में लज्जा न करे और जिस कर्म से आत्मा प्रसन्न होवे अर्थात् धर्माचरण में ही रुचि रहे तब समझना कि मुझ में सत्त्वगुण प्रबल है।।१४।।
तमोगुण का लक्षण काम, रजोगुण का अर्थसंग्रह की इच्छा और सत्त्वगुण का लक्षण धर्मसेवा करना है परन्तु तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्त्वगुण श्रेष्ठ है।।१५।।
इसी प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुण युक्त वेग से जिस-जिस प्रकार का कर्म जीव करता है उस-उस को उसी-उसी प्रकार फल प्राप्त होता है। जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फंसकर महायोगी होके मुक्ति का साधन करें। क्योंकि-
योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।।१।।
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।।२।। -ये योगशास्त्र पातञ्जल के सूत्र हैं।

मनुष्य रजोगुण, तमोगुण युक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना।।१।।
जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है।।२।। इत्यादि साधन मुक्ति के लिये करे। और-
अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।। यह सांख्य का सूत्र है।
जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीर सम्बन्धी पीड़ा, आधिभौतिक जो दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, आधिदैविक जो अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन इन्द्रियों की चञ्चलता से होता है; इस त्रिविध दुःख को छुड़ा कर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है।
इसके आगे आचार अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य का विषय लिखेंगे।।९।।
इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये
नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः।।९।।

अथ दशमसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषयान् व्याख्यास्यामः

अब जो धर्मयुक्त कामों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार और इन से विपरीत अनाचार कहाता है; उस को लिखते हैं-

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत।।१।।
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।।२।।
संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।।३।।
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्।।४।।
वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।५।।
सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै।।६।।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।।७।।८।।
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।।९।।
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।१०।।
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।११।।
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।।१२।।
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः।।१३।। मनु० अ० २।।

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिस का सेवन रागद्वेषरहित विद्वान् लोग नित्य करें; जिस को हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जानें, वही धर्म माननीय और करणीय है।।१।।
क्योंकि इस संसार में अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है। वेदार्थज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं।।२।।
जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं वा हो जाऊँ तो वह कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषणादि व्रत, यम नियमरूपी धर्म आदि संकल्प ही से बनते हैं।।३।।
क्योंकि जो-जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं। जो इच्छा न हो तो आंख का खोलना और मीचना भी नहीं हो सकता।।४।।
इसलिये सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिस में न हों उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो! जब कोई मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उस के आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं।।५।।
मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति-प्रमाण से स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करे।।६।।
क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है वह इस लोक में कीर्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है।।७।।
श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं। इन से सब कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये।।८।।
जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थों का अपमान करे उस को श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें। क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है वही **नास्तिक** कहाता है।।९।।
इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण, ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है।।१०।।

परन्तु जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषयसेवा में फंसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म को जानने की इच्छा करें उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है।।११।।
इसी से सब मनुष्यों को उचित है कि वेदोक्त पुण्यरूप कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानों का निषेकादि संस्कार करें। जो इस जन्म वा परजन्म में पवित्र करने वाला है।।१२।।
ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म और मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य डाढ़ी मूँछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है; चाहै जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। डाढ़ी मूँछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है।।१३।।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।।१।।
इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।।२।।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।३।।
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्।।४।।
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम्।।५।।
श्रुत्वा स्पृष्टवा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः।।६।।
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्।।७।।
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्।।८।।
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।

अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्।।९।।
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्।।१०।।
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः।।११।।
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।।१२।।
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति।।१३।।
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक्‌ चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।।१४।। मनु० अ० २।।

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त का हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उन को रोकने में प्रयत्न करे। जैसे घोड़ों को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इस प्रकार इन को अपने वश में करके अधर्ममार्ग से हटा के धर्ममार्ग में सदा चलाया करे।।१।।

क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है और जब इन को जीत कर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है।।२।।

यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है। इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये।।३।।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष है उसको 'विप्रदुष्ट' कहते हैं। उस के करने से न वेदज्ञान, न त्याग, न यज्ञ, न नियम और न धर्माचरण सिद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु ये सब जितेन्द्रिय धार्मिक जन को सिद्ध होते हैं।।४।।

इसलिये पांच कर्म पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहार विहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे।।५।।

जितेन्द्रिय उस को कहते हैं जो स्तुति सुन के हर्ष और निन्दा सुन के शोक; अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप देख के प्रसन्न और दुष्ट रूप देख के अप्रसन्न, उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित, सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता है।।६।। कभी विना

पूछे वा अन्याय से पूछने वाले को कि जो कपट से पूछता हो उस को उत्तर न देवे। उन के सामने बुद्धिमान् जड़ के समान रहें। हां! जो निष्कपट और जिज्ञासु हों उन को विना पूछे भी उपदेश करे।।७।।
एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं। परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं।।८।।
क्योंकि चाहै सौ वर्ष का भी हो परन्तु जो विद्या विज्ञानरहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये। क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान् अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं।।९।।
अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता। किन्तु ऋषि महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक है; वही वृद्ध पुरुष कहाता है।।१०।।
ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है।।११।।
शिर के बाल श्वेत होने से बुढ्ढा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है उसी को विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं।।१२।।
और जो विद्या नहीं पढ़ा है वह जैसा काष्ठ का हाथी; चमड़े का मृग होता है वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत् में नाममात्र मनुष्य कहाता है।।१३।।
इसलिये विद्या पढ़, विद्वान् धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे। और उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले। जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं।।१४।।
नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान सब शुद्ध रक्खे क्योंकि इन के शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। शौच उतना करना योग्य है कि जितने से मल दुर्गन्ध दूर हो जाये।
आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।। मनु०।।
जो सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ।
आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणमिच्छते ।।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।।
-तैनिरीन।।
माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है। और जिस-जिस कर्म से जगत् का उपकार हो वह-वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, चोर, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे। आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।
(प्रश्न) आर्यावर्त्त देशवासियों का आर्यावर्त्त देश से भिन्न-भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं?
(उत्तर) यह बात मिथ्या है। क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी, सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा। और जो आर्य्यावर्त्त में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा। जो ऐसा ही होता तो-
मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्।।१।।
स देशान् विविधान् पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान् ।।२।।
ये श्लोक महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म में व्यास-शुक-संवाद में हैं।
अर्थात् एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिस को इस समय 'अमेरिका' कहते हैं; उस में निवास करते थे। शुकाचार्य्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है वा अधिक ? व्यास जी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र! तू मिथिलापुरी में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर। वह इस का यथायोग्य उत्तर देगा। पिता का वचन सुन कर शुकाचार्य्य पाताल से मिथिलापुरी की ओर चले। प्रथम मेरु अर्थात् हिमालय से ईशान उत्तर और वायव्य दिशा में जो देश बसते हैं उन का नाम हरिवर्ष था। अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को, उस देश के मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् वानर के समान भूरे नेत्र वाले होते हैं। जिन देशों का नाम इस समय 'यूरोप' है उन्हीं को संस्कृत में 'हरिवर्ष' कहते थे। उन देशों को देखते हुए और जिन को हूण 'यहूदी' भी कहते हैं उन देशों को देख कर चीन में आये। चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल में अश्वतरी अर्थात् जिस को अग्नियान नौका कहते हैं; पर बैठ के पाताल

में जाके महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार जिस को 'कन्धार' कहते हैं वहीं की राजपुत्री से हुआ। माद्री पाण्डु की स्त्री 'ईरान' के राजा की कन्या थी। और अर्जुन का विवाह पाताल में जिस को 'अमेरिका' कहते हैं वहां के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। जो देशदेशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तर में न जाते होते तो ये सब बातें क्यों कर हो सकतीं ? मनुस्मृति में जो समुद्र में जाने वाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्य्यावर्त्त से द्वीपान्तर में जाने के कारण है। और जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उस में सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे, जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्य्यावर्त्तदेशीय लोग व्यापार, राजकार्य्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्मनष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है।

जो मनुष्य देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं करते वे देशदेशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम, रीति भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचारभ्रष्ट धर्महीन नहीं होते किन्तु देशदेशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं!!! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है ? हाँ, इतना कारण तो है कि जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं उन के शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं इसलिये उनके संग करने से आर्य्यों को भी ये कुलक्षण न लग जायें यह तो ठीक है। परन्तु जब इन से व्यवहार और गुणग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है किन्तु इन के मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं। जब इन के स्पर्श और देखने से भी मूर्ख जन पाप गिनते हैं इसी से उन से युद्ध कभी नहीं कर सकते क्योंकि युद्ध में उन को देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगों को राग, द्वेष अन्याय मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर प्रीति परोपकार सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समभफ़ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हम को देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता। दोष तो पाप के काम

करने में लगते हैं। हां, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्डमत का खण्डन करना अवश्य सीख लें। जिस से कोई हम को भफ़ूठा निश्चय न करा सके। क्या विना देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और **परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।**

पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इन को विद्या पढ़ावेंगे और देशदेशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड-जाल में न फंसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जावेगी। इसीलिये भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें। हां, इतना अवश्य चाहिये कि मद्य, मांस का ग्रहण कदापि भूल कर भी न करें। क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध- समय में भी चौका लगा कर रसोई बना के खाना अवश्य पराजय का हेतु है ? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते, जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े, हाथी, रथ पर चढ़ वा पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते विरोध करते कराते, सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। हां! जहां भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, भफ़ाड़ू लगाने, कूड़ा कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये न कि मुसलमान वा ईसाइयों के समान भ्रष्ट पाकशाला करना।

(प्रश्न) सखरी निखरी क्या है?

(उत्तर) सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी दूध में पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिस में घी दूध अधिक लगे उस को खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसलिये यह प्रप ञ्च रचा है। नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है। जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं। क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

(प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें?

(उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालने और पशुपालन खेती और व्यापार के काम में तत्पर रहैं और शूद्र के पात्र में तथा उस के घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें। सुनो प्रमाण-

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः । -यह आपस्तम्ब का सूत्र है। आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहैं। आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें, क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े। आठवें दिन क्षौर, नखच्छेदन करावें। स्नान करके पाक बनाया करें। आर्यों को खिला के आप खावें।

(प्रश्न) शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं तो उस के हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं?

(उत्तर) यह बात कपोलकल्पित भफ़ूठी है। क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत् भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खा लिया। क्योंकि जब शूद्र, चमार, भंगी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते, छीलते, पीलकर रस निकालते हैं तब मलमूत्रेत्सर्ग करके उन्हीं विना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते आधा सांठा चूँस रस पीके आधा उसी में डाल देते और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पकाकर खाते हैं। जब चीनी बनाते हैं तब पुराने जूते कि जिस के तले में विष्ठा, मूत्र, गोबर, धूली लगी रहती है उन्हीं जूतों से उस को रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रें का जल डालते उसी में घृतादि रखते और आटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटे में टपकता जाता है इत्यादि और फल मूल कन्द में भी ऐसी ही लीला होती है। जब इन पदार्थों को खाया तो जानो सब के हाथ का खा लिया।

(प्रश्न) फल, मूल, कन्द और रस इत्यादि अदृष्ट में दोष नहीं मानते?

(उत्तर) अच्छा तो भंगी वा मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बनाकर तुम को आके देवे तो खा लोगे वा नहीं? जो कहो कि नहीं तो अदृष्ट में भी दोष है। हां! मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य, मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है परन्तु **आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता। जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत**

कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना; विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्ष के पहले हुई थीं उन को भी भूल गये ? देखो! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते पीते थे, आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। **न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र-हत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चल कर दुःख बढ़ा रहे हैं।** परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।

भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है। एक धर्मशास्त्रेक्त दूसरा वैद्यकशास्त्रेक्त।

जैसे धर्मशास्त्र में-

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च।। मनु०।।

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को मलीन विष्ठा मूत्रदि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधुमांसं च।। मनु०।।

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि-

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।।

जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उन का सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्य, मांसाहारी म्लेच्छ कि जिन का शरीर मद्य, मांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें। जिस में उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है वैसे पशुओं को न मारें; न मारने दें। जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उस का मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है। कोई गाय अठारह

और कोई छः महीने दूध देती है, उस का भी मध्य भाग बारह महीने हुए। अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४९६० (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक बार में तृप्त हो सकते हैं। उसके छः बछियां छः बछड़े होते हैं उन में से दो मर जायें तो भी दश रहे।

उनमें से पांच बछड़ियों के जन्म भर के दूध को मिला कर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पांच बैल, वे जन्म भर में ५००० (पांच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला कर ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर हजार आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एक वार पालित होते हैं और पीढ़ी परपीढ़ी बढ़ा कर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है। इस से भिन्न बैलगाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है परन्तु जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी हैं। परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं। इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे । तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्त्तते थे। क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। **जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गो आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।** क्योंकि-

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहां से हों?

(प्रश्न) जो सभी अहिसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायें तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ जाय?

(उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उन्हें दण्ड देवें और प्राण भी वियुक्त कर दें।
(प्रश्न) फिर क्या उन का मांस फेंक दें?
(उत्तर) चाहें फेंक दें, चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धिबलपराक्रमवृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं **जिस-जिस के लिये जो-जो पदार्थ वैद्यकशास्त्र में वर्जित किये हैं,** उन-उन का सर्वथा त्याग करना और जो-जो जिस के लिये विहित हैं उन-उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।
(प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं?
(उत्तर) दोष है। क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है; सुधार नहीं। इसीलिये-
नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।। मनु०।।
न किसी को अपना झूँठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे। न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये विना कहीं इधर-उधर जाय।
(प्रश्न) **'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्'** इस वाक्य का क्या अर्थ होगा?
(उत्तर) इस का यह अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उस का भोजन करना अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन कराके पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये।
(प्रश्न) जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो मक्खियों का उच्छिष्ट सहत, बछड़े का उच्छिष्ट दूध और एक ग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है; पुनः उन को भी न खाना चाहिये।

(उत्तर) सहत कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु वह बहुत सी औषधियों का सार ग्राह्य; बछड़ा अपनी मां के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता, इसलिये उच्छिष्ट नहीं परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उस की मां का स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिये। और अपना उच्छिष्ट अपने को विकारकारक नहीं होता। देखो! स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे। जैसे अपने मुख, नाक, कान, आंख, उपस्थ और गुह्येन्द्रियों के मलमूत्रदि के स्पर्श में घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरे के मल मूत्र के स्पर्श में होती है। इस से यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत नहीं है। इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जूँठा न खायें।
(प्रश्न) भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें?
(उत्तर) नहीं। क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है।
(प्रश्न) कहो जी! मनुष्यमात्र के हाथ की की हुई रसोई उस अन्न के खाने में क्या दोष है? क्योंकि ब्राह्मण से लेके चाण्डाल पर्यन्त के शरीर हाड़, मांस, चमड़े के हैं और जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर में वैसा ही चाण्डाल आदि के; पुनः मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है?
(उत्तर) दोष है। क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोष रहित रज वीर्य उत्पन्न होता है वैसा चाण्डाल और चाण्डाली के शरीर में नहीं। क्योंकि चाण्डाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं। इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चाण्डालादि नीच भंगी चमार आदि का न खाना। भला जब कोई तुम से पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है वैसा ही अपनी स्त्री का भी है तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ स्वस्त्री के समान वर्तोगे? तब तुम को संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा। जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है तो क्या मलादि भी खाओगे? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है?
(प्रश्न) जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो तो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते ? और गोबर के चौके में जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता?
(उत्तर) गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्य के मल से। यह चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता न कपड़ा बिगड़ता न मलीन होता है। जैसा

मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अतिसुन्दर होता है। और जहां रसोई बनती है वहां भोजनादि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है। उस से मक्खी, कीड़ी आदि बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। जो उस में झाड़ू लेपन से शुद्धि प्रतिदिन न की जावे तो जानो पाखाने के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना। और जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये। इस से पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति हो जाती है। जैसे मियां जी के रसोई के स्थान में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, जूंठी रकेबी, कहीं हाड़ गोड़ पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना! वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वान्त होने का भी सम्भव है और उस दुर्गन्ध स्थान के समान ही वह स्थान दीखता है। भला जो कोई इन से पूछे कि यदि गोबर से चौका लगने में तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चूल्हे में कण्डे जलाने, उस की आग से तमाखू पीने, घर की भीति पर लेपन करने आदि से मियां जी का भी चौका भ्रष्ट हो जाता होगा इस में क्या सन्देह!

(प्रश्न) चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के?

(उत्तर) जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहां भोजन करना चाहिये। परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े-खड़े भी खाना पीना अत्यन्त उचित है।

(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं?

(उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के हाथ का खाने में कुछ भी हानि नहीं। क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, वर्त्तन भांडे मांजने आदि बखेड़ों में पड़े रहैं तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके।

देखो! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि, महर्षि आये थे। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले; आपस में वैर विरोध हुआ; उन्होंने मद्यपान, गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा हो गया। देखो! काबुल, कन्धार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्य्यावर्त्तदेशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे। शकुनि आदि, कौरव पाण्डवों के साथ खाते पीते थे;

कुछ विरोध नहीं करते थे। क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था। उसी में सब की निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख-दुःख हानि-लाभ आपस में अपने समान समझते थे। तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत से मत वाले होने से बहुत सा दुःख विरोध बढ़ गया है। इस का निवारण करना बुद्धिमानों का काम है।

परमात्मा सब के मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इस में सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के अविरुद्धमत के स्वीकार से सब जने मिल कर सब के आनन्द को बढ़ावें।

यह थोड़ा सा आचार अनाचार भक्ष्याभक्ष्य विषय में लिखा।

इस ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध इसी दशमे समुल्लास के साथ पूरा हो गया। इन समुल्लासों में विशेष खण्डन-मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जब तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ाते तब तक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नहीं समझ सकते-इसलिये प्रथम सब को सत्य शिक्षा का उपदेश करके अब उत्तरार्द्ध अर्थात् जिसमें चार समुल्लास हैं उन में विश्ेाष खण्डन-मण्डन लिखेंगे। और पश्चात् चौदहवें समुल्लास के अन्त में स्वमत भी दिखलाया जायगा। जो कोई विशेष खण्डन मण्डन देखना चाहें वे इन चारों समुल्लासों में देखें। परन्तु सामान्य करके कहीं-कहीं दश समुल्लासों में भी कुछ थोड़ा सा खण्डन-मण्डन किया है। इन चौदह समुल्लासों को पक्षपात छोड़ न्यायदृष्टि से जो देखेगा उस के आत्मा में सत्य अर्थ का प्रकाश होकर आनन्द होगा। और जो हठ दुराग्रह और ईर्ष्या से देखे सुनेगा उस को इस ग्रन्थ का अभिप्राय यथार्थ विदित होना बहुत कठिन है। इसलिये जो कोई इस को यथावत् न विचारेगा वह इस का अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा। और विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को प्राप्त हो कर प्रसन्न रहते हैं।।१०।।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित आचारानाचारभक्ष्याभक्ष्यविषये
दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः।।१०।।
समाप्तोऽयं पूर्वार्द्धः।।

अनुभूमिका (१)

यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत युद्ध हुआ । इन की अप्रवृत्ति से अविद्याऽन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिस के मन में जैसा आया वैसा मत चलाया । इन के चेलों और अन्य सब को परस्पर सत्याऽसत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो इसलिए यह ग्रन्थ बनाया है । जो-जो इस में सत्य मत का मण्डन और असत्य मत का खण्डन लिखा है वह सब को जनाना ही प्रयोजन समभ़ा गया है । इस में जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है उस को सब के आगे निवेदित कर देना मैंने उत्तम समभ़ा है क्योंकि विज्ञान गुप्त हुए का पुनर्मिलना सहज नहीं है । पक्षपात छोड़कर इस को देखने से सत्याऽसत्य मत सब को विदित हो जायेगा । पश्चात् सब को अपनी-अपनी समभ़ के अनुसार सत्यमत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा । इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें । क्योंकि मेरा तात्पर्य्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्याऽसत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है । मनुष्यजन्म का होना सत्याऽसत्य का निर्णय करने कराने के लिये है; न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मतामतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और आगे होंगे उन को पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहैं तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सब को विरोध-जाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंस कर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहैं तो अभी ऐक्यमत हो जायें । इस के होने की युक्ति इस की पूर्ति में लिखेंगे । सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु ।

अथैकादशसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

अब आर्य्य लोगों के कि जो आर्य्यावर्त्त देश में वसने वाले हैं उन के मत का खण्डन तथा मण्डन का विधान करेंगे। यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य्य लोग इसी देश में आकर बसे। इसलिए हम सृष्टिविषय में कह आये हैं कि आर्य्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्य्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्य्यावर्त्त देश ही सच्चा **पारसमणि** है कि जिस को लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मन ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा ।। मनु०।।

सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव पाण्डव पर्यन्त यहां के राज्य और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चले थे क्योंकि यह **मनुस्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई है** उस का प्रमाण है। इसी आर्य्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने-अपने योग्य विद्या चरित्रें की शिक्षा और विद्याभ्यास करें। और महाराजा युधिष्ठिर जी के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्धपर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे।

सुनो! चीन का भगदत्त, अमेरिका का बब्रुवाहन, यूरोपदेश का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश आंखवाले, यवन जिस को यूनान कह आये और ईरान का शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध में सब आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहां के आधीन था। जब रामचन्द्र के समय में विरुद्ध हो गया तो उस को रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्ट कर उस के भाई विभीषण को राज्य दिया था।

स्वायम्भुव राजा से लेकर पाण्डवपर्यन्त आर्य्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़ कर नष्ट हो गये क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन तक नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता; ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इस से देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट हो कर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं। जैसे कि मद्य-मांससेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। और जब युद्धविभाग में युद्धविद्याकौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिस का सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष हो जाते हैं तब आपस में विरोध हो कर अथवा उन से अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उन का पराजय करने में समर्थ होवे। जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवा जी, गोविन्दसिह जी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिन केचित् सुद्युम्न-भूरद्यम्ुनन्ेद्रद्यम्ुनकु वलयाश्वयावै नाश्ववदध्््ग्र श्वाश्वपतिशशविन्दहु रिश्चन्द्राऽम्बरीष- ननक्तुशर्यातिययात्यनरण्याक्षसेनादय । अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजान ।। -मैत्र्युपनि०

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारतपर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य्यकुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरत सार्वभौम सब भूमि में प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओं के नाम लिखे हैं वैसे स्वायम्भुवादि चक्रवर्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थों में लिखे हैं। इस को मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है।

(प्रश्न) जो आग्नेयास्त्र आदि विद्या लिखी हैं वे सत्य हैं वा नहीं? और तोप तथा बन्दूक तो उस समय में थीं वा नहीं?

(उत्तर) यह बात सच्ची है। ये शस्त्र भी थे, क्योंकि पदार्थविद्या से इन सब बातों का सम्भव है।

(प्रश्न) क्या ये देवताओं के मन्त्रें से सिद्ध होते थे?

(उत्तर) नहीं। ये सब बातें जिन से अस्त्र शस्त्रें को सिद्ध करते थे वे 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे। और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उस से कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहे कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्र के जप करने वाले के हृदय और जिह्वा को भस्म कर देवे। मारने जाय शत्रु को और मर रहे आप। इसलिये मन्त्र नाम है विचार का जैसा 'राजमन्त्री' अर्थात् राजकर्मों का विचार करने वाला कहाता है, वैसा मन्त्र अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई एक लोहे का बाण वा गोला बनाकर उस में ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्नि के लगाने से वायु में धुआं फैलने और सूर्य की किरण वा वायु के स्पर्श होने से अग्नि जल उठे इसी का नाम 'आग्नेयास्त्र' है। जब दूसरा इस का निवारण करना चाहै तो उसी पर 'वारुणास्त्र छोड़ दे। अर्थात् जैसे शत्रु ने शत्रु की सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़कर नष्ट करना चाहा वैसे ही अपनी सेना की रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से आग्नेयास्त्र का निवारण करे। वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है जिस का धुआं वायु के स्पर्श होते ही बद्दल होके झफ़ट वर्षने लग जावे; अग्नि को बुझफ़ा देवे। ऐसे ही 'नागपाश' अर्थात् जो शत्रु पर छोड़ने से उस के अंगों को जकड़ के बांध लेता है। वैसे ही एक 'मोहनास्त्र' अर्थात् जिस में नशे की चीज डालने से जिस के धुएं के लगने से सब शत्रु की सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित हो जाय। इसी प्रकार सब शस्त्रस्त्र होते थे। और एक तार से वा शीसे से अथवा किसी और पदार्थ से विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करते थे उसको भी 'आग्नेयास्त्र' तथा 'पाशुपतास्त्र' कहते हैं। 'तोप' और 'बन्दूक' ये नाम अन्य देशभाषा के हैं। संस्कृत और आर्य्यावर्त्तीय भाषा के नहीं किन्तु जिस को विदेशी जन तोप कहते हैं संस्कृत और भाषा में उस का नाम 'शतघ्नी' और जिस को बन्दूक कहते हैं उस को संस्कृत और आर्य्यभाषा में 'भुशुण्डी' कहते हैं। जो संस्कृत विद्या को नहीं पढ़े वे भ्रम में पड़ कर कुछ का कुछ लिखते और कुछ का कुछ बकते हैं। उस का बुद्धिमान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते। और जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उन से यूनानी, उन से रूम और उन से यूरोप देश में, उन से अमेरिका आदि देशों में फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्य्यावर्त्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि-जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा। यह बात कहनेमात्र है क्योंकि

'यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते।' अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं। वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा सा पढ़ा वही उस देश के लिये अधिक है। परन्तु आर्य्यावर्त्त देश की ओर देखें तो उन की बहुत न्यून गणना है। क्योंकि मैंने जर्मनी देशनिवासी के एक 'प्रिन्सिपल' के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं। और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देख कर मुभफ़ को विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर उधर आर्य्यावर्त्तीय लोगों की की हुई टीका देख कर कुछ-कुछ यथा तथा लिखा है। जैसा कि-

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ।।

इस मन्त्र का अर्थ घोड़ा किया है। इस से तो जो सायणाचार्य्य ने सूर्य्य अर्थ किया है सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है सो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिये। उस में इस मन्त्र का अर्थ यथार्थ किया है। इतने से जान लीजिये कि जर्मनी देश और मोक्षमूलर साहब में संस्कृत विद्या का कितना पाण्डित्य है।

यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं वे सब आर्य्यावर्त्त देश ही से प्रचरित हुए हैं। देखो! एक गोल्डस्टकर साहब पैरस अर्थात् फ्रांस देश निवासी अपनी 'बायबिल इन इण्डिया' में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्य्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं। और परमात्मा की प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्य्यावर्त्त देश की पूर्वकाल में थी वैसी ही हमारे देश की कीजिये; लिखते हैं उस ग्रन्थ में देख लो। तथा 'दाराशिकोह' बादशाह ने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या संस्कृत में है वैसी किसी भाषा में नहीं। वे ऐसा उपनिषदों के भाषान्तर में लिखते हैं कि मैंने अर्बी आदि बहुत सी भाषा पढ़ीं परन्तु मेरे मन का सन्देह छूट कर आनन्द न हुआ । जब संस्कृत देखा और सुना तब निस्सन्देह हो कर मुभफ़ को बड़ा आनन्द हुआ है।

देखो काशी के 'मानमन्दिर' में शिशुमारचक्र को कि जिस की पूरी रक्षा भी नहीं रही है तो भी कितना उत्तम है जिस में अब तक भी खगोल का बहुत सा वृत्तान्त विदित होता है। जो 'सवाई जयपुराधीश' उस को संभाल और टूटे फूटे को बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा। परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत

के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह?
विनाशकाले विपरीतबुद्धि। -यह किसी कवि का वचन है। जब नाश होने का समय निकट आता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उन को सूधा समझावे तो उलटा मानें और उलटा समझावें उस को सूधी मानें। जब बड़े-बड़े विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गये और बहुत से मर गये तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, आपस में करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दाब कर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में खण्ड-बण्ड राज्य हो गया। पुनः द्वीपद्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे! जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अविद्वान् होने में कथा ही क्या कहनी? जो परम्परा से वेदादि शास्त्रों का अर्थसहित पढ़ने का प्रचार था वह भी छूट गया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे सो पाठमात्र भी क्षत्रिय आदि को न पढ़ाया। क्योंकि जब अविद्वान् हुए गुरु बन गये तब छल, कपट, अधर्म भी उन में बढ़ता चला। ब्राह्मणों ने विचारा कि अपनी जीविका का प्रबन्ध बांधना चाहिये। सम्मति करके यही निश्चय कर क्षत्रिय आदि को उपदेश करने लगे कि हम ही तुम्हारे पूज्यदेव हैं। विना हमारी सेवा किये तुम को स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी। किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे तो घोर नरक में पड़ोगे। जो-जो पूर्ण विद्या वाले धार्मिकों का नाम ब्राह्मण और पूजनीय वेद और ऋषि मुनियों के शास्त्र में लिखा था उन को अपने मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा बैठे। भला वे आप्त विद्वानों के लक्षण इन मूर्खों में कब घट सकते हैं ? परन्तु जब क्षत्रियादि यजमान संस्कृत विद्या से अत्यन्त रहित हुए तब उनके सामने जो-जो गप्प मारी सो-सो विचारों ने सब मान ली। तब इन नाममात्र ब्राह्मणों की बन पड़ी। सब को अपने वचन जाल में बांध कर वशीभूत कर लिया और कहने लगे कि-
ब्रह्मवाक्यं जनार्दन।
अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणों के मुख में से वचन निकलता है वह जानो साक्षात् भगवान् के मुख से निकला। जब क्षत्रियादि वर्ण आंख के अन्धे और गांठ के पूरे अर्थात् भीतर विद्या की आंख फूटी हुई और जिन के पास धन पुष्कल है ऐसे-ऐसे चेले मिले। फिर इन व्यर्थ ब्राह्मण नाम वालों को विषयानन्द का उपवन मिल गया। यह भी उन लोगों ने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथिवी में उत्तम

पदार्थ हैं वे सब ब्राह्मणों के लिये हैं। अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी उस को नष्ट कर जन्म पर रक्खी और मृतकपर्यन्त का भी दान यजमानों से लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहां तक किया कि 'हम भूदेव हैं' हमारी सेवा के विना देवलोक किसी को नहीं मिल सकता। इन से पूछना चाहिये कि तुम किस लोक में पधारोगे? तुम्हारे काम तो घोर नरक भोगने के हैं; कृमि, कीट, पतंगादि बनोगे। तब तो बड़े क्रोधित होकर कहते हैं-हम 'शाप' देंगे तो तुम्हारा नाश हो जायेगा क्योंकि लिखा है-**'ब्रह्मद्रोही विनश्यति'** कि जो ब्राह्मणों से द्रोह करता है उस का नाश हो जाता है। हां! यह बात तो सच्ची है कि जो पूर्ण वेद और परमात्मा को जानने वाले, धर्मात्मा सब जगत् के उपकारक पुरुषों से कोई द्वेष करेगा, वह अवश्य नष्ट होगा। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों, उन का न ब्राह्मण नाम और न उन की सेवा करनी योग्य है।

(प्रश्न) तो हम कौन हैं?

(उत्तर) तुम पोप हो।

(प्रश्न) पोप किस को कहते हैं?

(उत्तर) उस की सूचना रूमन् भाषा में तो बड़ा और पिता का नाम पोप है परन्तु अब छल कपट से दूसरे को ठग कर अपना प्रयोजन साधने वाले को पोप कहते हैं।

(प्रश्न) हम तो ब्राह्मण और साधु हैं क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम अमुक साधु के चेले हैं।

(उत्तर) यह सत्य है परन्तु सुनो भाई! माँ बाप ब्राह्मण होने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से होते हैं जो कि परोपकारी हों। सुना है कि जैसे रूम के 'पोप' अपने चेलों को कहते थे कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे तो हम क्षमा कर देंगे। विना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वर्ग में नहीं जा सकता। जो तुम स्वर्ग में जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतने ही की सामग्री स्वर्ग में तुम को मिलेगी। ऐसा सुन कर जब कोई आंख के अन्धे और गांठ के पूरे स्वर्ग में जाने की इच्छा करके 'पोप जी' को यथेष्ट रुपया देता था तब वह 'पोप जी' ईसा और मरियम की मूर्त्ति के सामने खड़ा होकर इस प्रकार की हुण्डी लिखकर देता था-'हे खुदावन्द ईसामसी! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्ग में आने के लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं। जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में पच्चीस सहस्र

रुपयों में बागबगीचा और मकानात, पच्चीस सहस्र में सवारी शिकारी और नौकर चाकर, पच्चीस सहस्र रुपयां े में खाना पीना कपड़ा लत्ता और पच्चीस सहस्र रुपये इस के इष्ट मित्र भाई बन्धु आदि के जियाफत Σँ् वास्ते दिला देना।' फिर उस हुण्डी के नीचे पोप जी अपनी सही करके हुण्डी उसके हाथ में देकर कह देते थे कि 'जब तू मरे तब इस हुण्डी को कबर में अपने सिराने धर लेने के लिए अपने कुटुम्ब को कह रखना। फिर तुभफ़े ले जाने के लिये फरिश्ते आवेंगे तब तुभफ़े और तेरी हुण्डी को स्वर्ग में ले जा कर लिखे प्रमाणे सब चीजें तुभफ़ को दिला देंगे।'

अब देखिये जानो स्वर्ग का ठेका पोप जी ने ही ले लिया हो। जब तक यूरोप देश में मूर्खता थी तभी तक वहां पोप जी की लीला चलती थी परन्तु अब विद्या के होने से पोप जी की भफ़ूठी लीला बहुत नहीं चलती किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई। वैसे ही आर्य्यावर्त्त देश में भी जानो पोप जी ने लाखों अवतार लेकर लीला फैलाई हो। अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरुषों का संग न होने देना, रात दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना है। परन्तु यह बात ध्यान में रखना कि जो-जो छलकपटादि कुत्सित व्यवहार करते हैं वे ही पोप कहाते हैं। जो कोई उन में भी धार्मिक विद्वान् परोपकारी हैं वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं।

अब उन्हीं छली कपटी स्वार्थी लोगों (मनुष्यों को ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करने वालों ही का ग्रहण 'पोप' शब्द से करना और ब्राह्मण तथा साधु नाम से उत्तम पुरुषों का स्वीकार करना योग्य है। देखो! जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधु न होता तो वेदादि सत्यशास्त्रें के पुस्तक स्वरसहित का पठन-पाठन मुसलमान, ईसाई आदि के जाल से बचाकर आर्यों को वेदादि सत्यशास्त्रें में प्रीतियुक्त वर्णाश्रमों में रखना ऐसा कौन कर सकता? सिवाय ब्राह्मण साधुओं के! जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ पूजा पढ़ कर अभिमान में आके सब लोगों ने परस्पर सम्मति करके राजा आदि से कहा कि ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं। देखो-**'ब्राह्मणो न हन्तव्य ' 'साधुर्न हन्तव्य '** ऐसे ऐसे वचन जो कि सच्चे ब्राह्मण और सच्चे साधुओं के विषय में थे सो पोपों ने अपने पर घटा लिये। और भी भफ़ूठे-भफ़ूठे वचनयुक्त ग्रन्थ रच कर उन में ऋषि मुनियों के नाम धर के उन्हीं के नाम से सुनाते रहे। उन प्रतिष्ठित ऋषि महर्षियों के नाम से अपने पर से दण्ड की व्यवस्था उठवा दी। पुनः यथेष्टाचार करने लगे अर्थात् ऐसे करडे नियम चलाये कि उन पोपों की आज्ञा के विना सोना, उठना, बैठना,

जाना, आना, खाना, पीना, आदि भी नहीं कर सकते थे। राजाओं को ऐसा निश्चय कराया कि पोप संज्ञक कहने मात्र के ब्राह्मण साधु चाहे सो करें। उन को कभी दण्ड न देना अर्थात् उन पर मन में भी दण्ड देने की इच्छा न करनी चाहिये। जब ऐसी मूर्खता हुई तब जैसी पोपों की इच्छा हुई वैसा करने कराने लगे। अर्थात् इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये। जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्य्यावर्त्त में अविद्या फैलकर परस्पर लड़ने भफ़गड़ने लगे। क्योंकि-
उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धि ।। इतरथान्धपरम्परा।। -सांख्यसू०।।
अर्थात् जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्ध परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है। पुनः वे पोप लोग अपनी और अपने चरणों की पूजा कराने लगे और कहने लगे कि इसी में तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग इन के वश में हो गये तब प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर गड़रिये के समान भफ़ूठे गुरु और चेले फंसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभगुण सब नष्ट होते चले। पश्चात् जब विषयासक्त हुए तो मांस, मद्य का सेवन गुप्त-गुप्त करने लगे। पश्चात् उन्हीं में से एक ने वाममार्ग खड़ा किया। 'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव उवाच' इत्यादि नाम लिख कर उन का तन्त्र नाम धरा। उन में ऐसी-ऐसी विचित्र लीला की बातें लिखीं कि-

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकारा स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे।।१।।
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातय ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा पृथक्फ़ पृथक्फ़।।२।।
पीत्वा पीत्वा पुन पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।३।।
मातृयोनि परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु।।४।।
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव।।५।।

अर्थात् देखो इन गवर्गण्ड पोपों की लीला जो कि वेदविरुद्ध महा अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ वाममर्गियों ने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी, मुद्रा

पूरी कचौरी और बड़े रोटी आदि चर्वण, योनि, पात्रधार, मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वती के समान मान कर-

अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु संगमः ।।

चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो इस ऊटपटांग वचन को पढ़ के समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते । अर्थात् जिन नीच स्त्रियों को छूना नहीं उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है। जैसे शास्त्रें में रजस्वला आदि स्त्रियों के स्पर्श का निषेध है उन को वाममार्गियों ने अतिपवित्र माना है। सुनो इन का श्लोक खण्ड बण्ड-

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी । चर्मकारी प्रयाग स्याद्रजकी मथुरा मता ।। अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता।। इत्यादि । रजस्वला के साथ समागम करने से जानो पुष्कर का स्नान, चाण्डाली से समागम में काशी की यात्र, चमारी से समागम करने से मानो प्रयागस्नान, धोबी की स्त्री के साथ समागम करने में मथुरा यात्र और कंजरी के साथ लीला करने से मानो अयोध्या तीर्थ कर आये। मद्य का नाम धरा 'तीर्थ', मांस का नाम शुद्धि और 'पुष्प' मच्छी का नाम 'तृतीया' और 'जलतुम्बिका', मुद्रा का नाम 'चतुर्थी', मैथुन का नाम 'पञ्चमी'। इसलिये ऐसे-ऐसे नाम धरे हैं कि जिस से दूसरा न समभफ़ सके। अपने कौल, आर्द्रवीर, शाम्भव और गण आदि नाम रक्खे हैं। और जो वाममार्ग मत में नहीं हैं, उनका 'कण्टक' 'विमुख', शुष्कपशु' आदि नाम धरे हैं । और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र हो तब उस में ब्राह्मण से लेकर चाण्डालपर्यन्त का नाम द्विज हो जाता है । और जब भैरवीचक्र से अलग हों तब सब अपने-अपने वर्णस्थ हो जायें। भैरवीचक्र में वाममार्गी लोग भूमि वा पट्टे पर एक विन्दु त्रिकोण, चतुष्कोण, वर्त्तुलाकार बना कर उस पर मद्य का घड़ा रखके उस की पूजा करते हैं। फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते हैं-**'ब्रह्मशापं विमोचथ'** हे मद्य! तू ब्रह्मा आदि के शाप से रहित हो। एक गुप्त स्थान में कि जहां सिवाय वाममार्गी के दूसरे को नहीं आने देते वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। वहां एक स्त्री को नंगी कर पूजते और स्त्री लोग किसी पुरुष को नंगा कर पूजती हैं। पुनः कोई किसी की स्त्री कोई अपनी वा दूसरे की कन्या, कोई किसी की वा अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती हैं।

पश्चात् एक पात्र में मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक स्थाली में धर रखते हैं। उस मद्य के प्याले को जो कि उन का आचार्य्य होता है वह हाथ में लेकर बोलता है कि-**'भैरवोऽहम्' 'शिवोऽहम्'** मैं भैरव वा शिव हूं कह कर पी जाता

है। फिर उसी भ़फ़ूठे पात्र से सब पीते हैं। और जब किसी की स्त्री वा वेश्या नंगी कर अथवा किसी पुरुष को नंगा कर हाथ में तलवार दे के उस का नाम देवी और पुरुष का नाम महादेव धरते हैं। उन के उपस्थ इन्द्रिय की पूजा करते हैं तब उस देवी वा शिव को मद्य का प्याला पिला कर उसी भ़फ़ूठे पात्र से सब लोग एक-एक प्याला पीते हैं। फिर उसी प्रकार क्रम से पी-पी के उन्मत्त होकर चाहें कोई किसी की बहिन, कन्या वा माता क्यों न हो, जिस की जिस के साथ इच्छा हो उस के साथ कुकर्म करते हैं। कभी-कभी बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुक्कामुक्की, केशाकेशी, आपस में लड़ते हैं किसी-किसी को वहीं वमन होता है। उन में जो पहुंचा हुआ अघोरी अर्थात् सब में सिद्ध गिना जाता है; वह वमन हुई चीज को भी खा लेता है। अर्थात् इन के सबसे बड़े सिद्ध की ये बातें हैं कि-
हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु। विराजते कौलवचक्रवर्ती।।
जो दीक्षित अर्थात् कलार के घर में जाके बोतल पर बोतल चढ़ावे। रण्डियों के घर में जाके उन से कुकर्म करके सोवे जो इत्यादि कर्म निर्लज्ज, निःशंक होकर करे वही वाममार्गियों में सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्ती राजा के समान माना जाता है। अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उन में बड़ा और जो अच्छे काम करे और बुरे कामों से डरे वही छोटा। क्योंकि- **पाशबद्धो भवेज्जीव पाशमुक्त सदा शिव ।।** ऐसा तन्त्र में कहते हैं कि जो लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा, देशलज्जा आदि पाशों में बंधा है वह जीव और जो निलर््ाज्ज होकर बुरे काम करे वही सदा शिव है। उड्डीस तन्त्र आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलय हों। उन में मद्य के बोतल भर के धर देवे। इस आलय से एक बोतल पी के दूसरे आलय पर जावे। उसमें से पी तीसरे और तीसरे में से पीके चौथे आलय में जावे। खड़ा-खड़ा तब तक मद्य पीवे कि जब तक लकड़ी के समान पृथिवी में न गिर पड़े। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े। पुनः तीसरी वार इसी प्रकार पीके गिर के उठे तो उस का पुनर्जन्म न हो अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे-ऐसे मनुष्यों का पुनः मनुष्यजन्म होना ही कठिन है किन्तु नीच योनि में पड़ कर बहुकालपर्यन्त पड़ा रहेगा।
वामियों के तन्त्र ग्रन्थों में यह नियम है कि एक माता को छोड़ Σ●ँ्‌ किसी स्त्री को भी न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहे कन्या हो वा भगिनी आदि क्यों न हो; सब के साथ संगम करना चाहिये। इन वाममर्गियों में **दश महाविद्या** प्रसिद्ध हैं उनमें से एक मातंगी विद्यावाला कहता है कि **'मातरमपि न त्यजेत्'** अर्थात्

माता को भी समागम किये विना न छोड़ना चाहिये। और स्त्री पुरुष के समागम समय में मन्त्र जपते हैं कि हम को सिद्धि प्राप्त हो जायें। ऐसे पागल महामूर्ख मनुष्य भी संसार में बहुत न्यून होंगे!!! जो मनुष्य भफ़ूंठ चलाना चाहता है वह सत्य की निन्दा अवश्य ही करता है। देखो! वाममार्गी क्या कहते हैं ? वेद, शास्त्र और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओं के समान हैं और जो यह शाम्भवी वाममार्ग की मुद्रा है वह गुप्त कुल की स्त्री के तुल्य है। इसीलिये इन लोगों ने केवल वेद-विरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन लोगों का मत बहुत चला। तब धूर्त्तत्ता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की थोड़ी-थोड़ी लीला चलाई। अर्थात्-

सौत्रमण्यां सुरां पिबेत् । प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्।
वैदिकी हिसा हिसा न भवति।।
न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।। मनु०।।

सौत्रमणि यज्ञ में मद्य पीवे। इस का अर्थ तो यह है कि सौत्रमणि यज्ञ में सोमरस अर्थात् सोमवल्ली का रस पीये। प्रोक्षित अर्थात् यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैंं। उन से पूछना चाहिये कि जो वैदिकी हिसा हिसा न हो तो तुझ और तेरे कुटुम्ब को मार के होम कर डालें तो क्या चिन्ता है ? मांसभक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदि में दोष नहीं है; यह कहना छोकड़पन है। क्योंकि विना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता और विना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है क्योंकि अब तक वाममार्गियों के विना किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध है। और विना विवाह के मैथुन में भी दोष है। इस को निर्दोष कहनेवाला सदोष है। ऐसे-ऐसे वचन भी ऋषियों के ग्रन्थ में डाल के कितने ही ऋषि मुनियों के नाम से ग्रन्थ बना कर गोमेध, अश्वमेध नाम यज्ञ भी कराने लगे थे। अर्थात् इन पशुओं को मारके होम करने से यजमान और पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है; ऐसी प्रसिद्धि की। निश्चय तो यह है कि जो ब्राह्मणग्रन्थों में अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्द हैं उन का ठीक-ठीक अर्थ नहीं जाना है क्योंकि जो जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों करते?

(प्रश्न) अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है?

(उत्तर) इन का अर्थ तो यह है कि-

राष्ट्रं वा अश्वमेध । अन्नँ्हि गौ ।

अग्निर्वा अश्व । आज्यं मेध ।। शतपथब्राह्मणे।।

घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीें नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थांे में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई। और जहाँ-जहाँ लेख है वहाँ-वहाँ भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो ! राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देनेहारा और यजमान द्वारा अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध, अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।

(प्रश्न) यज्ञकर्त्ता कहते हैें कि यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी तथा होम करके फिर पशु को जीता करते थे। यह बात सच्ची है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं। जो स्वर्ग को जाते हों तो ऐसी बात कहने वाले को मार के होम कर स्वर्ग में पहुंचाना चाहिये वा उस के प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रदि को मार होम कर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुंचाते? वा वेदी में से पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं?

(प्रश्न) जब यज्ञ करते हैें तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदों में न होता तो कहांँ से पढ़ते?

(उत्तर) मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उन का अर्थ ऐसा नहीं है कि पशु को मारके होम करना। जैसे-**'अग्नये स्वाहा'** इत्यादि मन्त्रें का अर्थ अग्नि में हवि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पदार्थों के होम करने से वायु, वृष्टि, जल शुद्ध होकर जगत् को सुखकारक होते हैं। परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि होते हैं। वे केवल अपने स्वार्थ करने के दूसरा कुछ भी नहीें जानते; मानते। जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरे का तर्पण श्राद्धादि करने को देख कर एक महाभयंकर वेदादि शास्त्रें का निन्दक बौद्ध वा जैन मत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि एक इसी देश में गोरखपुर का राजा था। उस से पोपों ने यज्ञ कराया। उस की प्रिय राणी का समागम घोड़े के साथ कराने से उसके मर जाने पर पश्चात् वैराग्यवान् होकर अपने पुत्र को राज्य दे, साधु हो, पोपों की पोल निकालने लगा। इसी की शाखारूप चारवाक और आभाणक मत भी हुआ था। उन्होंने इस प्रकार के श्लोक बनाये हैं-

पशुश्चेन्निहत स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिस्यते।।

मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।।

जो पशु मार कर अग्नि में होम करने से पशु स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता आदि को मार के स्वर्ग में क्यों नहीं भेजते। जो मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्प्पण होता है तो विदेश में जाने वाले मनुष्य को मार्ग का खर्च खाने पीने के लिये बांधना व्यर्थ है। क्योंकि जब मृतक को श्राद्ध, तर्पण से अन्न, जल पहुंचता है तो जीते हुए परदेश में रहने वाले वा मार्ग में चलनेहारों को घर में रसोई बनी हुई का पत्तल परोस, लोटा भर के उस के नाम पर रखने से क्यों नहीं पहुँचता? जो जीते हुए दूर देश अथवा दश हाथ पर दूर बैठे हुए को दिया हुआ नहीं पहुंचता तो मरे हुए के पास किसी प्रकार नहीं पहुंच सकता। उन के ऐसे युक्तिसिद्ध उपदेशों को मानने लगे और उन का मत बढ़ने लगा। जब बहुत से राजा भूमिये उन के मत में हुए तब पोप जी भी उन की ओर झुके क्योंकि इन को जिधर गफ्फा अच्छा मिले वहीं चले जायें। उस के पठनपाठन यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्य्यादि नियमों को भी नाश किया। जहां जितने पुस्तक वेदादि के पाये नष्ट किये। आर्य्यों पर बहुत सी राजसत्ता भी चलाई; दुःख दिया। जब उन को भय शंका न रही तब अपने मत वाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेदमार्गियों का अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे। और आप सुख आराम और घमण्ड में आ फूलकर फिरने लगे। प्रायः वेदार्थज्ञान से शून्य हो गये थे। इस बात को अनुमान से अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे। बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रें को पढ़कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना बड़ी हानि की बात हुई है; इन को किसी प्रकार हटाना चाहिये। शंकराचार्य्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु उन की युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इन को किस प्रकार हटावें? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रर्थ करने से ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये। वहां उस समय सुधन्वा राजा था, जो कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहाँ जाकर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिल कर कहा कि आप पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रर्थ कराइये। इस प्रतिज्ञा पर, जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार कर ले। और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कीजियेगा। सुधन्वा की बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था। इस से उन के मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी। क्योंकि जो विद्वान् होता है वह सत्याऽसत्य की परीक्षा

करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था तब तक सन्देह में थे कि इन में कौन सा सत्य और कौन सा असत्य है। जब शंकराचार्य्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रर्थ कराके सत्याऽसत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। शंकराचार्य्य का पक्ष वेदमत का स्थापन था। शास्त्रर्थ कई दिनों तक हुआ। शंकराचार्य्य का मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है। यह जगत् और जीव झूठा है क्योंकि उस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया; वही धारण और प्रलय कर्त्ता है। और यह जीव और प्रपञ्च स्वप्नवत् है। परमेश्वर आप ही सब रूप होकर लीला कर रहा है। बहुत दिन तक शास्त्रर्थ होता रहा परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से शंकराचार्य्य का मत अखण्डित रहा। तब उन पण्डित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को स्वीकार कर लिया। पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिखकर शंकराचार्य्य से शास्त्रर्थ कराया। पश्चात् शंकराचार्य्य के सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने कर दिया और उन की रक्षा के लिये साथ में नौकर चाकर भी रख दिये। उसी समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन-पाठन भी चला। दस वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूम कर वेदों का मण्डन किया। वाममार्ग का खण्डन किया। उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेशभक्ति भी थी। जब वेदमत का स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करने का विचार करते ही थे। उतने में दो कपटमुनि थे; शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उन की क्षुधा मन्द हो गई। पश्चात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साही हो गये और जो विद्या का प्रचार होने वाला था वह भी न होने पाया। जो-जो उन्होंने शारीरक भाष्यादि बनाये थे उन का प्रचार शंकराचार्य्य के शिष्य करने लगे। अर्थात् ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की थी उस का उपदेश करने लगे। दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोशी और द्वारिका में शारदामठ बांध कर शंकराचार्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे क्योंकि शंकराचार्य्य के पश्चात् उन के शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

शंकराचार्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ। जिस ने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटा कर शान्ति स्थापन की। तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्य में भी कुछ-कुछ विद्वान् हुआ। उसने वैराग्यवान् होकर राज्य को छोड़ दिया। विक्रमादित्य के पाँच सौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ। उसने थोड़ा सा व्याकरण और काव्यालंकरादि का इतना प्रचार किया कि जिस के राज्य में कालिदास बकरी चराने वाला भी रघुवंश काव्य का कर्त्ता हुआ। राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बना कर ले जाता था उस को बहुत सा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी। उस के पश्चात् राजाओं श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया। यद्यपि शंकराचार्य्य के पूर्व वाममार्गियों के पश्चात् शैव आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे परन्तु उन का बहुत बल नहीं था। महाराजा विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता आया। शैवों में पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थीं; जैसी वाममार्गियों में दश महाविद्यादि की शाखा हैं। लोगों ने शंकराचार्य को शिव का अवतार ठहराया। उन के अनुयायी संन्यासी भी शैवमत में प्रवृत्त हो गये और वाममार्गियों को भी मिलते रहे। वाममार्गी, देवी जो शिव जी की पत्नी है उसके उपासक और शैव महादेव के उपासक हुए। ये दोनों रुद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं परन्तु वाममार्गी वेदविरोधी हैं वैसे शैव नहीं हैं।

राजा भोज को कुछ-कुछ वेदों का संस्कार था। इन के भोजप्रबन्ध में लिखा है कि-

घट्येकया त्रफ़ोशदशैकमश्व सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या ।
वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम्।।

राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे-ऐसे शि्ाल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार एक यान यन्त्रकलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोश्ा और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोश्ा जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था। और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि विना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।

पवित्र्ांं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्रणि पर्येषि विश्वतः ।

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ।।१।।
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे ।।२।। - ऋ० मं० ९ । सू० ८३ । मं० १ । २ ।।

हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करने वाले प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त सर्वशक्तिमन्! आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है। उस आपका जो व्यापक पवित्र स्वरूप है उस को ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्य्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा अन्तःकरणयुक्त है वह उस तेरे स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध हैं। वे ही इस तप का आचरण करते हुए उस तेरे शुद्धस्वरूप को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं।।१।।
जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्रचरणरूप तप करते हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त होने में योग्य होते हैं।।२।।

(प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है?
(उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति भफ़ूठी है
(प्रश्न) हमारी कैसी रीति है?
(उत्तर) वेदविरुद्ध।
(प्रश्न) भला अब आप हम को वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलायें?
(उत्तर) नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये- जैसे 'न्यायकारी' ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इस का अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है वैसे उस को ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना; अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।
सुनो यह है-
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याम्रताः ।।१।।
-यजुः० अ० ४० । मं० ९ ।।
न तस्य प्रतिमाऽअस्ति ।।२।। -यजुः० अ० ३२ । मं० ३ ।।
यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।१।।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।२।।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।३।।
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।४।।
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राण प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।५।। केनोपनि०।।

जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं। और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं।।१।।

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण नहीं है।।२।।

जो वाणी की 'इदन्ता' अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिस के धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर। और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं।।१।।

जो मन से 'इयत्ता' करके मन में नहीं आता, जो मन को जानता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो उस से भिन्न जीव और अन्तःकरण है उस की उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर।।२।।

जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिस से सब अंाखें देखती हैं, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और जो उस से भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उन की उपासना मत कर।।३।।

जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिस से श्रोत्र सुनता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और उस से भिन्न शब्दादि की उपासना उस के स्थान में मत कर।।४।।

जो प्राणों से चलायमान नहीं होता जिस से प्राण गमन को प्राप्त होता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो यह उस से भिन्न वायु है उस की उपासना मत कर।।५।।

जो-जो ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उन-उन का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो-

नास्तिको वेदनिन्दक ।।१।।

या वेदबाह्या स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टय ।
सर्वास्ता निष्फला प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ता स्मृता ।।२।।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।।३।। मनु० अ० १२।।

मनु जी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है।।१।।

जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःखसागर में डुबोने वाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं।।२।।

जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उन का मानना निष्फल और भफूंठा है।।३।।

इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों? वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है । छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़िया हैं जैसी ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है।

जो सच्ची पञ्चायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा है वह सुनो-

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ।।१।। यजु०।।
आचार्यऽउपनयमानो ब्रह्मचारिणमिच्छते ।।२।।
अतिथिर्गृहानुपगच्छेत् ।।३।। अथर्व०।।
अचर्त पा्रचर्त प्रियमधोसो अचर्त ।।४।। ऋग्वेदे०।।
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।।५।। -तैनिरीयोप०।।
कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते।।६।।
-शतपथ प्रपाठ० ५। ब्राह्मण ७। कण्डिका १०।।

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव।।७।।
-तैनिरीयोप०।।
पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभि ।।८।।
पूज्यो देववत्पतिः।।९।। मनुस्मृतौ।।
प्रथम माता मूर्त्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन, मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव। उस की भी माता के समान सेवा करनी।।१।। तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उस की तन, मन, धन से सेवा करनी।।२।। चौथा अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उस की सेवा करें।।३।।
पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये स्वपत्नी पूजनीय है।।८।। ये पांच मूर्त्तिमान् देव जिन के संग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती हैं ये परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियां हैं।

(प्रश्न) ग्रहों का फल होता है वा नहीं?
(उत्तर) जैसा पोपलीला का है वैसा नहीं किन्तु जैसा सूर्य्य चन्द्रमा की किरण द्वारा उष्णता शीतलता अथवा ऋतुवत्कालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनूकुल प्रतिकूल सुख-दुःख के निमित्त होते हैं।
(प्रश्न) कुपात्र और सुपात्र का लक्षण क्या है?
(उत्तर) जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करने वाले लम्पटी, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसंगी, आलसी; जो कोई दाता हो उसके पास बारम्बार मांगना, धरना देना, ना किये पश्चात् भी हठता से मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उस की निन्दा करना, शाप और गालिप्रदानादि देना। अनेक वार जो सेवा करे और एक वार न करे तो उस का शत्रु बन जाना, ऊपर से साधु का वेश बना लोगों को बहकाकर ठगना और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सब को फुसला फुसलू कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भंगादि मादक द्रव्य खा पीकर बहुत सा पराया पदार्थ खाना, पुनः उन्मत्त होकर प्रमादी होना, सत्य-मार्ग का विरोध और भफ़ूठ-मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना, वैसे ही अपने चेलों को केवल अपनी ही सेवा

करने का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा करने का नहीं, सद्विद्यादि प्रवृत्ति के विरोधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा इष्टमित्रें में अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं और जगत् भी मिथ्या है। इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रें के लक्षण हैं। और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने पढ़ाने हारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्म की निरन्तर उन्नति करनेहारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुति में हर्ष शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा, ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावानुकूल वर्त्तमान करनेहारे, न्याय की रीति युक्त, पक्षपातरहित, सत्योपदेश और सत्यशास्त्रें के पढ़ने पढ़ानेहारे के परीक्षक, किसी की लल्लो पत्तो न करें, प्रश्नों के यथार्थ समाधानकर्त्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख, दुःख, हानि, लाभ समभफ़ने वाले, अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृत के समान अपमान और विष के समान मान को समभफ़ने वाले, सन्तोषी, जो कोई प्रीति से जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक वार आपत्काल में मांगे भी न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा बुरी चेष्टा न करना, वहां से भफ़ट लौट जाना, उस की निन्दा न करना, सुखी पुरुषों के साथ मित्रता, दुखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियों से उपेक्षा अर्थात् रागद्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्याद्वेषरहित, गम्भीराशय, सत्पुरुष, धर्म से युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित अपने तन मन धन को परोपकार करने में लगाने वाले, पराये सुख के लिये अपने प्राणों को भी समिर्पतकर्त्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं। परन्तु दुिर्भक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और औषधि पथ्य स्थान के अधिकारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं।

(प्रश्न) दाता कितने प्रकार के होते हैं?

(उत्तर) तीन प्रकार के-उनम, मध्यम और निकृष्ट। उत्तम दाता उस को कहते हैं जो देश काल और पात्र को जानकर सत्यविद्या, धर्म की उन्नतिरूप परोपकारार्थ देवे। मध्यम वह है जो कीिर्त वा स्वार्थ के लिए दान करे। नीच वह है कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड भाटों आदि को देवे, देते समय तिरस्कार अपमानादि कुचेष्टा भी करे, पात्र कुपात्र का कुछ भी भेद न जाने किन्तु **'सब अन्न बारह पसेरी'** बेचने वालों के समान विवाद लड़ाई, दूसरे धर्मात्मा को दुःख देकर सुखी होने के लिये दिया करे, वह अधम दाता है। अर्थात् जो परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माओं का सत्कार करे वह उत्तम

और जो कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिस में अपनी प्रशंसा हो उस को मध्यम और जो अन्धाधुन्ध परीक्षारहित निष्फल दान दिया करे वह नीच दाता कहाता है।

(प्रश्न) दान के फल यहां होते हैं वा परलोक में?

(उत्तर) सर्वत्र होते हैं।

(प्रश्न) स्वयं होते हैं वा कोई फल देने वाला है?

(उत्तर) फल देने वाला ईश्वर है। जैसे कोई चोर डाकू स्वयं बन्दीघर में जाना नहीं चाहता, राजा उस को अवश्य भेजता है, धर्मात्माओं के सुख की रक्षा करता, भुगाता, डाकू आदि से बचाकर उन को सुख में रखता है वैसे ही परमात्मा सब को पाप पुण्य के दुःख और सुखरूप फलों को यथावत् भुगाता है।

वाममार्गी बड़े भारी अपराधी हैं। जब वे चेला करते हैं तब साधारण को-

दं दुर्गायै नम । भं भैरवाय नम । ऐं ह्रीं क्ली ं चामुण्डायै विच्चे।।

इत्यादि मन्त्रें का उपदेश कर देते हैं और बंगाले में विशेष करके एकाक्षरी मन्त्रेपदेश करते हैं। जैसा-

ह्रीं, श्रीं, क्लीं।।

इत्यादि और धनाढ्यों का पूर्णाभिषेक करते हैं। ऐसे दश महाविद्याओं के मन्त्र-

ह्रां ह्रीं ह्रूं बगलामुख्यै फट् स्वाहा।।

कहीं-कहीं-

हूं फट् स्वाहा।।

और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग करते हैं।

सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रिया से सब कुछ करते हैं। जब किसी को मारने का प्रयोग करते हैं तब इधर कराने वाले से धन ले के आटे वा मिट्टी का पूतला जिस को मारना चाहते हैं उस का बना लेते हैं! उस की छाती, नाभि, कण्ठ में छुरे प्रवेश कर देते हैं। आंख, हाथ, पग में कीलें ठोकते हैं। उस के ऊपर भैरव वा दुर्गा की मूर्त्ति बना हाथ में त्रिशूल दे उस के हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर मांस आदि का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेज के उस को विष आदि से मारने का उपाय करते हैं जो अपने पुरश्चरण के बीच में उस को मार डाला तो अपने को भैरव देवी की सिद्धि वाले बतलाते हैं।

"भैरवो भूतनाथश्च" इत्यादि का पाठ करते हैं।

मारय-मारय, उच्चाटय-उच्चाटय, विद्वेषय-विद्वेषय, छिन्धि-छिन्धि, भिन्धि-भिन्धि, वशीकुरु-वशीकुरु, खादय-खादय, भक्षय-भक्षय, त्रेटय-त्रेटय, नाशय-नाशय, मम शत्रून् वशीकुरु-वशीकुरु, हुं फट् स्वाहा।।

इत्यादि मन्त्र जपते, मद्य मांसादि यथेष्ट खाते-पीते, भृकुटी के बीच में सिन्दूर रेखा देते, कभी-कभी काली आदि के लिये किसी आदमी को पकड़ मार होम कर कुछ-कुछ उस का मांस खाते भी हैं। जो कोई भैरवीचक्र में जावे, मद्य मांस न पीवे, न खावे तो उस को मार होम कर देते हैं। उन में से जो अघोरी होता है वह मृत मनुष्य का भी मांस खाता है। अजरी बजरी करने वाले विष्ठा मूत्र भी खाते-पीते हैं। एक चोलीमार्ग और बीजमार्गी भी होते हैं। चोली मार्गवाले एक गुप्त स्थान वा भूमि में एक स्थान बनाते हैं । वहां सब की स्त्रियां, पुरुष, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्ठे हो सब लोग मिलमिला कर मांस खाते, मद्य पीते, एक स्त्री को नंगी कर उस के गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब पुरुष करते हैं और उस का नाम दुर्गादेवी धरते हैं। एक पुरुष को नंगा कर उस के गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब स्त्रियां करती हैं। जब मद्य पी-पी के उन्मत्त हो जाते हैं तब सब स्त्रियों के छाती के वस्त्र जिसको चोली कहते हैं एक बड़ी मिट्टी की नांद में सब वस्त्र मिलाकर रखके एक-एक पुरुष उस में हाथ डाल के जिस के हाथ में जिस का वस्त्र आवे वह माता, बहिन, कन्या और पुत्रववमू क्यों न हो उस समय के लिये वह उस की स्त्री हो जाती है। आपस में कुकर्म करने और बहुत नशा चढ़ने से जूते आदि से लड़ते भिड़ते हैं। जब प्रातःकाल कुछ अन्धेरे में अपने-अपने घर को चले जाते हैं तब माता माता, कन्या कन्या, बहिन बहिन और पुत्रवधू पुत्रवधू हो जाती हैं। और बीजमार्गी स्त्री पुरुष के समागम कर जल में वीर्य डाल मिलाकर पीते हैं। ये पामर ऐसे कर्मों को मुक्ति के साधन मानते हैेंं। विद्या विचार सज्जनतादि रहित होते हैं।

अब इन में बहुत से खाखी लकड़े की लंगोली लगा धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेश कर लेते हैं। बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं। गांजा, भांग चरस के दम लगाते; लाल नेत्र कर रखते; सब से चुटकी-चुटकी अन्न, पिसान, कौड़ी, पैसे मांगते, गृहस्थों के लड़कों को बहकाकर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उन में होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देते किन्तु कहते हैं कि-

पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति कि कर्त्तव्यम्।।
सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम क्योंकि विद्या पढ़ने वाले भी मर जाते हैं फिर दन्त कटाकट क्यों करना? साधुओं को चार धाम फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, राम जी का भजन करना। जो किसी ने मूर्ख अविद्या की मूर्त्ति न देखी हो तो खाखी जी का दर्शन कर आवें। उन के पास जो कोई जाता है उन को बच्चा बच्ची कहते हैं चाहें वे खाखी जी के बाप माँ के समान क्यों न हों। जैसे खाखी जी हैं वैसे ही रूखड़, सूंखड़, गोदड़िये और जमात वाले सुतरेसाई और अकाली, कानफटे, जोगी, औघड़, आदि सब एक से हैं।
एक खाखी का चेला **'श्रीगणेशाय नम '** घोखता-घोखता कुवें पर जल भरने को गया। वहां पण्डित बैठा था। वह उस को **'स्रीगने साजनमें'** घोखते देखकर बोला, अरे साधु! अशुद्ध घोखता है **'श्रीगणेशाय नम '** ऐसा घोख। उस ने भफ़ट लोटा भर गुरु जी के पास जा कहा कि ए बम्मन मेरे घोखने को असुद्ध कहता है। ऐसा सुन कर भफ़ट खाखी जी उठा, कूप पर गया और पण्डित से कहा-तू मेरे चेले को बहकाता है? तूं गुरु की लंडी क्या पढ़ा है? देख तूं एक प्रकार का पाठ जानता है हम तीन प्रकार का जानते हैं। **'स्रीगनेसाजन्नमें' 'स्रीगनेसा यन्नमें' 'श्रीगनेसाय नमें'।**
(पण्डित) सुनो साधु जी! विद्या की बात बहुत कठिन है। विना पढ़े नहीं आती।
(खाखी) चल बे, सब विद्वान् को हम ने रगड़ मारे, गांजे भांग में घोट एकदम सब उड़ा दिये। सन्तों का घर बड़ा है। तू बाबूडा क्या जाने?
(पण्डित) देखो! जो तुम ने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते? सब प्रकार का तुम को ज्ञान होता।
(खाखी) अबे तू हमारा गुरु बनता है? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते। **(पण्डित)** सुनो कहां से? बुद्धि ही नहीं है। उपदेश सुनने समभफ़ने के लिये विद्या चाहिये।
(खाखी) जो सब वेद शास्त्र पढ़े, सन्तों को न माने तो जानो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा।
(पण्डित) हां! हम सन्तों की सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारे से हुर्दंगों की नहीं करते, क्योंकि सन्त, सज्जन, विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी पुरुषों को कहते हैं।
(खाखी) देख! हम रात दिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा चरस के सैकड़ों दम लगाते, तीन-तीन लोटा भांग पीते, गांजे, भांग, धतूरा की पत्ती की भाजी (शाक) बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशा में गर्क रात दिन बेगम रहते, दुनिया को कुछ नहीं समभफ़ते, भीख मांगकर टिक्कड़ बना

खाते, रात भर ऐसी खांसी उठती जो पास में सोवे उस को भी नींद कभी न आवे, इत्यादि सिद्धियां और साधूपन हम में हैं, फिर तू हमारी निन्दा क्यांे करता है? चेत बाबूड़े! जो हम को दिक्क करेगा हम तुम को भस्म कर डालेंगे।
(पण्डित) ये सब लक्षण असाधु मूर्ख और गवर्गण्डों के हैं; साधुओं के नहीं! सुनो! **'साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधु '** जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान्, सत्योपदेश से सब का उपकार करे उस को 'साधु' कहते हैं।
(खाखी) चल बे, तू साधू के कर्म क्या जाने? सन्तों का घर बड़ा है। किसी सन्त से अटकना नहीं, नहीं तो देख एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा।
(पण्डित) अच्छा खाखी! जाओ अपने आसन पर, हम से बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य कैसा है? किसी को मारोगे तो पकड़े जाओगे, कारावास भोगोगे, बेंत खाओगे वा कोई तुम को भी मार बैठेगा फिर क्या करोगे? यह साधु का लक्षण नहीं।
(खाखी) चल बे चेले! किस राक्षस का मुख दिखलाया। (पण्डित) तुम ने कभी किसी महात्मा का संग नहीं किया है। नहीं तो ऐसे जड़, मूर्ख नहीं रहते।
(खाखी) हम आप ही महात्मा हैं। हम को किसी दूसरे की गर्ज नहीं।
(पण्डित) जिन के भाग्य नष्ट होते हैं उन की तुम्हारी सी बुद्धि और अभिमान होता है। खाखी चला गया आसन पर और पण्डित घर को गये। जब सन्ध्या आर्ती हो गई तब उस खाखी को बुड्ढा समभ़ बहुत से खाखी 'डण्डोत-डण्डोत' कहते साष्टांग करके बैठे। उस खाखी ने पूछा अबे रामदासिया! तू क्या पढ़ा है?
(रामदास) महाराज! मैंने **'वेस्नुसहसरनाम'** पढ़ा है। अबे गोविन्ददासिये! तू क्या पढ़ा है? **(गोविन्ददास)** मैेंं **'रामसतबराज'** पढ़ा हूं; अमुक खाखी जी के पास से। तब रामदास बोला कि महाराज आप क्या पढ़े हैं?
(खाखी) हम गीता पढ़े हैं। **(रामदास)** किसके पास? **(खाखी)** चल बे छोकरे! हम किसी को गुरु नहीं करते। देख! हम 'परागराज' में रहते थे हम को अक्खर नहीं आता था। जब किसी लम्बी धोती वाले पण्डित को देखता था तब गीता के गोटके में पूछता था। कि कलंगीवाले अक्खर का क्या नाम है? ऐसे पूछता-पूछता अठारा अध्याय गीता रगड़ मारी। गुरु एक भी नहीं किया। भला ऐसे विद्या के शत्रुओं को अविद्या घर करके ठहरे नहीं तो कहां जाय?
ये लोग विना नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, भफ़ांभफ़ पीटना, घण्टा घड़ियाल शंख बजाना, धूनी चिता रखनी, नहाना, धोना, सब दिशाओं में व्यर्थ

घमूते फिरने के अन्य कुछ भी अच्छा काम नहीं करते। चाहे कोई पत्थर को भी पिघला लेवे, परन्तु इन खाखियों के आत्माओं को बोध कराना कठिन है क्योंकि बहुधा वे शूद्रवर्ण मजूर, किसान, कहार आदि अपनी मजूरी छोड़ केवल खाख रमा के वैरागी खाखी आदि हो जाते हैं। उन को विद्या वा सत्संग आदि का माहात्म्य नहीं
जान पड़ सकता। और ऐसी-ऐसी शिक्षा करते हैं कि बच्चे! तूंबे का मन्त्र पढ़ ले-
जल पवितर सथल पवितर और पवितर कुआ।
शिव कहे सुन पार्वती तूंबा पवितर हुआ।।
भला ऐसे की योग्यता साधु वा विद्वान् होने अथवा जगत् के उपकार करने की कभी हो सकती है? खाखी रात दिन लक्कड़, छाने (जंगली कण्डे) जलाया करते हैं। एक महीने में कई रुपये की लकड़ी फूंक देते हैं। जो एक महीने की लकड़ी के मूल्य से कम्बलादि वस्त्र ले लें तो शतांश धन से आनन्द में रहैं। उन को इतनी बुद्धि कहां से आवे? और अपना नाम उसी धूनी में तपने ही से तपस्वी धर रखा है। जो इस प्रकार तपस्वी हो सकें तो जंगली मनुष्य इन से भी अधिक तपस्वी हो जावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक करने से तपस्वी हो जाय तो सब कोई कर सके। ये ऊपर के त्यागस्वरूप और भीतर के महासंग्रही होते हैं।
(प्रश्न) पंजाब देश में नानक जी ने एक मार्ग चलाया है। मुसलमान होने से बचाये। वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बने रहे। देखो! उन्होंने यह मन्त्र उपदेश किया है इसी से विदित होता है कि उन का आशय अच्छा था-
ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त्त अजोनि सहभं गुरु प्रसाद जप आदिसच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच।।
(ओ३म्) जिस का सत्य नाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और वैररहित अकाल मूर्ि्त्त जो काल में और जोनि में नहीं आता; प्रकाशमान है उसी का जप गुरु की कृपा से कर। वह परमात्मा आदि में सच था; जुगों की आदि में सच; वर्त्तमान में सच; और होगा भी सच ।
(उत्तर) नानक जी का आशय अच्छा था। यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने लोगों को बचाया। नानक जी के सामने कुछ उन का सम्प्रदाय वा बहुत से शिष्य नहीं हुए थे। क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उन को सिद्ध बना लेते हैेंं, पश्चात् बहुत सा माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते हैं। हां! नानक जी बड़े धनाढ्य और रईस भी नहीं थे

परन्तु उन के चेलों ने 'नानकचन्द्रोदय' और 'जन्मशाखी' आदि में बड़े सिद्ध और बड़े-बड़े ऐश्वर्य वाले थे; लिखा है। नानक जी ब्रह्मा आदि से मिले; बड़ी बातचीत की, सब ने इन का मान्य किया। नानक जी के विवाह में बहुत से घोड़े, रथ, हाथी, सोने, चांदी, मोती, पन्ना, आदि रत्नों से सजे हुए और अमूल्य रत्नों का पारावार न था; लिखा है। भला ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं? इस में इनके चेलों का दोष है, नानक जी का नहीं। इन का गुरु गोविन्दसिह जी दशमा हुआ। गोविन्दसिह जी शूरवीर हुए। जो मुसलमानों ने उनके पुरुषाओं को बहुत सा दुःख दिया था। उन से वैर लेना चाहते थे परन्तु इन के पास कुछ सामग्री न थी और इधर मुसलमानों की बादशाही प्रज्वलित हो रही थी। इन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि मुभफ़ को देवी ने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानों से लड़ो; तुम्हारा विजय होगा। बहुत से लोग उन के साथी हो गये और उन्होंने; जैसे वाममार्गियों ने 'पञ्च मकार' चक्रांकितों ने 'पञ्च संस्कार' चलाये थे वैसे 'पञ्च ककार' चलाये। अर्थात् इनके पञ्च ककार युद्ध में उपयोगी थे। एक 'केश' अर्थात् जिस के रखने से लड़ाई में लकड़ी और तलवार से कुछ बचावट हो। दूसरा 'कंगण' जो शिर के ऊपर पगड़ी में अकाली लोग रखते हैं और हाथ में 'कड़ा' जिस से हाथ और शिर बच सकें। तीसरा 'काछ' अर्थात् जानु के ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने और कूदने में अच्छा होता है बहुत करके अखाड़मल्ल और नट भी इस को धारण इसीलिये करते हैं कि जिस से शरीर का मर्मस्थान बचा रहै और अटकाव न हो। चौथा 'कंगा' कि जिस से केश सुधरते हैं। पांचवां 'काचू' कि जिस से शत्रु से भेंट भड़क्का होने से लड़ाई में काम आवे। इसीलिये यह रीति गोविन्दसिह जी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये की थी।

ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तो अच्छा है वा नहीं?

(उत्तर) कुछ-कुछ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं।

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज सब से अच्छा है क्योंकि इस के नियम बहुत अच्छे हैं।

(उत्तर) नियम सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ-कुछ पाषाणादि

मूर्त्तिपूजा को हटाया अन्य जाल ग्रन्थों के फन्द से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं।

१-परन्तु इन लोगों में **स्वदेशभक्ति बहुत न्यून** है। ईसाइयों के आचरण बहुत से ले लिये हैं। खानपान विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं।

२-**अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर उस के स्थान में पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंगरेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं।** ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि **विना अंगरेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्य्यावर्त्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इन की उन्नति कभी नहीं हुई।**

३-वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक़ नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में **साधुओं की संख्या में 'ईसा', 'मूसा', 'मुहम्मद', 'नानक' और 'चैतन्य' लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा।** इस से जाना जाता है कि इन लोगों ने जिन का नाम लिखा है उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। **भला ! जब आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया, अब भी खाते पीते हैं। अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक भफ़ुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर भफ़टिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना, मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है**?

४-अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने का भेद नहीं रक्खा। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जातिभेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायेगा परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहां है, उल्टा बिगाड़ होता है।

५-**(प्रश्न)** जातिभेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत?

(उत्तर) ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

(प्रश्न) कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत?

(उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियां परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्र आदि; पक्षियों में हंस, काक, वकादि; जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं । वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद हैं; ईश्वरकृत हैं परन्तु

मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य हैं। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है। भोजनभेद भी ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी है। जैसे सिह मांसाहारी और अर्णाभैंसा घासादि का आहार करते हैं यह ईश्वरकृत और देशकाल वस्तु भेद से भोजनभेद मनुष्यकृत है। देखो! यूरोपियन लोग मुंडे जूते, कोट पतलून पहरते, होटल में सब के हाथ का खाते हैं इसीलिए अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

(उत्तर) यह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं पुनः उन की उन्नति क्यों नहीं होती? जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का-लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे-बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता। वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते, जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं। अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो ! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय (आफिस) और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लेओ कि अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं, उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। देखो ! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहिरते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे परन्तु **उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं।** अनुकरण का करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं। और जो जिस काम पर रहता है उस को यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं; इत्यादि गुणों और अच्छे-अच्छे कर्मों से उन की उन्नति है। मुण्डे जूते, कोट, पतलून, होटल में खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं। और इन में जातिभेद भी है। देखो ! जब कोई यूरोपियन चाहै कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो किसी अन्य देश अन्य मत वालों की लड़की वा यूरोपियन की लड़की अन्य देशवाले से विवाह कर लेती है तो उसी समय उस का निमन्त्रण, साथ बैठ कर खाने और विवाह आदि को अन्य लोग

बंध कर देते हैं। यह जातिभेद नहीं तो क्या है? और तुम भोले भालों को बहकाते हैं कि हम में जातिभेद नहीं। तुम अपनी मूर्खता से मान भी लेते हो। इसलिये जो कुछ करना वह सोच-विचार कर करना चाहिये जिसमें पुनः पश्चात्ताप करना न पड़े।

देखो! वैद्य और औषध की आवश्यकता रोगी के लिए है; नीरोग के लिये नहीं। विद्यावान् नीरोग और विद्यारहित अविद्यारोग से ग्रस्त रहता है। उस रोग के छुड़ाने के लिये सत्य विद्या और सत्योपदेश है। उन को अविद्या से यह रोग है कि खाने पीने ही में धर्म्म रहता और जाता है। जब किसी को खाने पीने में अनाचार करता देखते हैं तब कहते और जानते हैं कि वह धर्म्मभ्रष्ट हो गया। उस की बात न सुनते और न उस के पास बैठते, न उस को अपने पास बैठने देते।

अब कहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थ के लिये है अथवा परमार्थ के लिये। परमार्थ तो तभी होता कि जब तुम्हारी विद्या से उन अज्ञानियों को लाभ पहुंचता। जो कहो कि वे नहीं लेते हम क्या करें? यह तुम्हारा दोष है उन का नहीं। क्योंकि तुम जो अपना आचरण अच्छा रखते तो तुम से प्रेम कर वे उपकृत होते, सो तुम ने सहस्रों का उपकार-नाश करके अपना ही सुख किया सो यह तुम को बड़ा अपराध लगा, क्योंकि **परोपकार करना धर्म्म और परहानि करना अधर्म्म कहाता है। इसलिए विद्वान् को यथायोग्य व्यवहार करके अज्ञानियों को दुखसागर से तारने के लिये नौकारूप होना चाहिये। सर्वथा मूर्खों के सदृश कर्म न करने चाहिए किन्तु जिस में उन की और अपनी दिन प्रतिदिन उन्नति हो वैसे कर्म करने उचित हैं।**

(प्रश्न) हम कोई पुस्तक ईश्वरप्रणीत वा सर्वांश सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती, इस से उन के बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सब से सत्य ग्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य वेद में, बाइबिल में वा कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो; हम को ग्राह्य है; असत्य किसी का नहीं।

(उत्तर) जिस बात से तुम सत्यग्राही होना चाहते हो उसी बात से असत्यग्राही भी ठहरते हो क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होने से भ्रान्तिसहित हो। जब भ्रान्तिसहित के वचन सर्वांश में प्रामाणिक नहीं होते तो तुम्हारे वचन का भी विश्वास नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्न के समान

त्याग के योग्य हैं। फिर तुम्हारे व्याख्यान पुस्तक बनाये का प्रमाण किसी को भी न करना चाहिये। **'चले तो चौबे जी छब्बे जी बनने को, गांठ के दो खोकर दुबे जी बन गये।'** कुछ तुम सर्वज्ञ नहीं जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कदाचित् भ्रम से असत्य को ग्रहण कर सत्य को छोड़ भी देते होगे। इसलिये सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिए। जैसा कि वेद के व्याख्यान में लिख आये हैं वैसा तुम को अवश्य ही मानना चाहिए। नहीं तो **'यतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट '** हो जाना है। जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है, जिन में असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है। इसी बात से तुम को आर्य्यावर्त्तीय लोग अपने नहीं समझते और तुम आर्य्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके क्योंकि तुम सब घर के भिक्षुक ठहरे। तुम ने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे सो न कर सकोगे। जैसे किसी के दो ही माता-पिता सब संसार के लड़कां े का पालन करने लगें। सब का पालन करना तो असम्भव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें, वैसे ही आप लोगों की गति है। भला! वेदादि सत्य शास्त्रें को माने विना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो? जिस देश को रोग हुआ है उस की औषधि तुम्हारे पास नहीं और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्यावर्त्तीय लोग तुम को अन्य मतियों के

सदृश समझते हैं। अब भी समझ कर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है। जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकाशित होता है पुनः ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुए सत्यार्थ वेदों को क्यों नहीं मानते? हां ! यही कारण है कि तुम लोग वेद नहीं पढ़े और न पढ़ने की इच्छा करते हो। क्योंकर तुम को वेदोक्त ज्ञान हो सकेगा?

६-दूसरा जगत् के उपादान कारण के विना जगत् की उत्पत्ति और जीव को भी उत्पन्न मानते हो, जैसा ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। इस का उत्तर सृष्ट्युत्पत्ति और जीवेश्वर की व्याख्या में देख लीजिए। कारण के विना कार्य का होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न वस्तु का नाश न होना भी वैसा ही असम्भव है।

७-एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चात्ताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो। इसी बात से जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं। क्योंकि पुराणी लोग

तीर्थादि यात्र से, जैनी लोग भी नवकार मन्त्र जप और तीर्थादि से; ईसाई लोग ईसा के विश्वास से; मुसलमान लोग 'तोबाः' करने से पाप का छूट जाना विना भोग के मानते हैं। इस से पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत हो गई है। इस बात में ब्राह्म और प्रार्थनासमाजी भी पुराणी आदि के समान हैं। जो वेदों को सुनते तो विना भोग के पाप पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त रहते। जो भोग के विना निवृत्ति मानें तो ईश्वर अन्यायकारी होता है।

८-जो तुम जीव की अनन्त उन्नति मानते हो सो कभी नहीं हो सकती क्योंकि ससीम जीव के गुण, कर्म, स्वभाव का फल भी ससीम होना अवश्य है।

(प्रश्न) परमेश्वर दयालु है। ससीम कर्मों का फल अनन्त दे देगा।

(उत्तर) ऐसा करे तो परमेश्वर का न्याय नष्ट हो जाय और सत्कर्मों की उन्नति भी कोई न करेगा। क्योंकि थोड़े से भी सत्कर्म का अनन्त फल परमेश्वर दे देगा और पश्चात्ताप वा प्रार्थना से पाप चाहें जितने हों छूट जायेंगे। ऐसी बातों से धर्म की हानि और पापकर्मों की वृद्धि होती है।

(प्रश्न) हम स्वाभाविक ज्ञान को वेद से बड़ा मानते हैं; नैमित्तिक को नहीं। क्योंकि जो स्वाभाविक ज्ञान परमेश्वरदत्त हम में न होता तो वेदों को भी कैसे पढ़ पढ़ा, समभफ़ समभफ़ा सकते। इसलिए हम लोगों का मत बहुत अच्छा है।

(उत्तर) यह तुम्हारी बात निरर्थक है। क्योंकि जो किसी का दिया हुआ ज्ञान होता है वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है वह सहज ज्ञान होता है और न वह बढ़ घट सकता। उस से उन्नति कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि जंगली मनुष्यों में भी स्वाभाविक ज्ञान है तो भी वे अपनी उन्नति नहीं कर सकते? और जो नैमित्तिक ज्ञान है वही उन्नति का कारण है। देखो! तुम हम बाल्यावस्था में कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म कुछ भी ठीक-ठीक नहीं जानते थे। जब हम विद्वानों से पढ़े तभी कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म को समझने लगे। इसलिए स्वाभाविक ज्ञान को सर्वोपरि मानना ठीक नहीं।

९-जो आप लोगों ने पूर्व और पुनर्जन्म नहीं माना है वह ईसाई मुसलमानों से लिया होगा। इस का भी उत्तर पुनर्जन्म की व्याख्या से समझ लेना। परन्तु इतना समझो कि **जीव शाश्वत अर्थात् नित्य है और उस के कर्म भी प्रवाहरूप से**

नित्य हैं। कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है। क्या वह जीव कहीं निकम्मा बैठा रहा था? वा रहेगा? और परमेश्वर भी निकम्मा तुम्हारे कहने से

होता है पूर्वापर जन्म न मानने से कृतहानि और **अकृताभ्यागम, नैर्घृण्य** और **वैषम्य** दोष भी ईश्वर में आते हैं, क्योंकि जन्म न हो तो पाप पुण्य के फल-भोग की हानि हो जाय। क्योंकि जिस प्रकार दूसरे को सुख, दुःख, हानि, लाभ पहुँचाया होता है वैसा उस का फल विना शरीर धारण किये नहीं होता। दूसरा पूर्वजन्म के पाप पुण्यों के विना सुख, दुःख की प्राप्ति इस जन्म में क्योंकर होवे? जो पूर्वजन्म के पाप पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और विना भोग किये नाश के समान कर्म का फल हो जावे इसलिए यह भी बात आप लोगों की अच्छी नहीं।

१०-और एक यह कि ईश्वर के विना दिव्य गुणवाले पदार्थों और विद्वानों को भी देव न मानना ठीक नहीं क्योंकि परमेश्वर महादेव और देव न होता तो सब देवों का स्वामी होने से महादेव क्यों कहाता?

११-एक अग्निहोत्रदि परोपकारक कर्मों को कर्त्तव्य न समझना अच्छा नहीं।

१२-ष्पि महर्षियों के किये उपकारों को न मानकर ईसा आदि के पीछे भफ़ुक पड़ना अच्छा नहीं।

१३-और विना कारणविद्या वेदों के अन्य कार्यविद्याओं की प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है।

१४-और जो विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना यह भी व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और 'तमगों' की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था?

१५-और ब्रह्मा से लेकर पीछे-पीछे आर्यावर्त्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं। उन की प्रशंसा न करके यूरोपियन ही की स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के विना क्या कहा जाए?

१६-और बीजांकुर के समान जड़चेतन के योग से जीवोत्पत्ति मानना, उत्पत्ति के पूर्व जीवतत्त्व का न मानना और उत्पन्न का न नाश मानना पूर्वापर विरुद्ध है। जो उत्पत्ति के पूर्व चेतन और जड़ वस्तु न था तो जीव कहां से आया और संयोग किन का हुआ? जो इन दोनों को सनातन मानते हो तो ठीक है परन्तु सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना दूसरे किसी तत्त्व को न मानना यह आपका पक्ष व्यर्थ हो जायेगा। **इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो उस के उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना; अब भी**

पालन होता है; आगे होगा; उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।

(प्रश्न) आप सब का खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपने-अपने धर्म में सब अच्छे हैं। खण्डन किसी का न करना चाहिए। जो करते हो तो आप
इन से विशेष क्या बतलाते हो। जो बतलाते हो तो क्या आप से अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था? और न है? ऐसा अभिमान करना आप को उचित नहीं, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक-एक से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं। किसी को घमण्ड करना उचित नहीं?

(उत्तर) धर्म सब का एक होता है वा अनेक? जो कहो अनेक होते हैं तो एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एक के विना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो कि अविरुद्ध हैं तो पृथक़्-पृथक़् होना व्यर्थ है। इसलिए धर्म और अधर्म एक ही हैं; अनेक नहीं। यही हम विशेष कहते हैं कि जैसे सब सम्प्रदायों के उपदेशकों को कोई राजा इकट्ठा करे । उन की सभा करके वा कोई जिज्ञासु होकर प्रथम वाममार्गी से पूछे-हे महाराज! मैंने आज तक न कोई गुरु और न किसी धर्म का ग्रहण किया है। कहिये ! सब धर्मों में से उत्तम धर्म किस का है? जिस को मैं ग्रहण करूं?

(वाममार्गी) हमारा है। **(जिज्ञासु)** ये नौ सौ निन्न्यानवे कैसे हैं?

(वाममार्गी) सब झूठे और नरकगामी हैं क्योंकि **'कौलात्परतरं नहि'**। इस वचन के प्रमाण से हमारे धर्म से परे कोई धर्म नहीं है। **(जिज्ञासु)** आप का क्या धर्म है?

(वाममार्गी) भगवती का मानना, मद्य-मांसादि पंच मकारों का सेवन और रुद्रयामल आदि चौसठ तन्त्रें का मानना इत्यादि, जो तू मुक्ति की इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा।

(जिज्ञासु) अच्छा! परन्तु और महात्माओं का भी दर्शन कर पूछपाछ आऊँगा। पश्चात् जिस में मेरी श्रद्धा और प्रीति होगी उस का चेला हो जाऊँगा।

(वाममार्गी) अरे! क्यों भ्रान्ति में पड़ा है। ये लोग तुझ को बहका कर अपने जाल में फंसा देंगे। किसी के पास मत जावे। हमारे ही शरणागत हो जा नहीं तो पछतावेगा। देख! हमारे मत में भोग और मोक्ष दोनों हैं।

(जिज्ञासु) अच्छा देख तो आऊँ। आगे चलकर ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब सवाल किये। इतना विशेष बतलाया 'सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्य से पाप नहीं छूटता। विना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर

मुक्ति को नहीं पा सकता। ईसा ने सब के प्रायश्चित्त के लिए अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा।'
जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया। उन से भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए। इतना विशेष कहा-'लाशरीक' खुदा उस के पैगम्बर और कुरानशरीफ के विना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मजहब को नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है वाजिबुल्कत्ल है। जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया। वैसा ही संवाद हुआ।
फिर आगे चला तो सब मतवालों ने अपने-अपने को सच्चा कहा। सहस्र से पूछ उन के परस्पर एक दूसरे का विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इन में कोई गुरु करने योग्य नहीं। क्योंकि एक-एक की भफूठ में नौ सौ निन्न्यानवे गवाह हो गये। जैसे झूठे दुकानदार वा वेश्या और भडुवा आदि अपनी-अपनी वस्तु की बड़ाई दूसरे की बुराई करते हैं वैसे ही ये हैं। ऐसा जान-
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।
समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।१।।
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।२।।
उपनिषद्
उस सत्य के विज्ञानार्थ वह **समित्पाणि** अर्थात् हाथ जोड़ अरिक्तहस्त होकर वेदवित् ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा को जाननेहारे गुरु के पास जावे। इन पाखण्डियों के जाल में न गिरे।।१।।
जब ऐसा जिज्ञासु विद्वान् के पास जाय, उस शान्तचित्त जितेन्द्रिय समीप प्राप्त जिज्ञासु को यथार्थ ब्रह्मविद्या परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव का उपदेश करे और जिस-जिस साधन से वह श्रोता धर्मार्थ, काम, मोक्ष और परमात्मा को जान
सके वैसी शिक्षा किया करे।।२।।
जब वह ऐसे पुरुष के पास जाकर बोला कि महाराज अब इन सम्प्रदायों के बखेड़ों से मेरा चित्त भ्रान्त हो गया क्योंकि जो मैं इन में से किसी एक का चेला होऊंगा तो नौ सौ निन्न्यानवे से विरोधी होना पड़ेगा। जिस के नौ सौ निन्न्यानवे शत्रु और एक मित्र है उस को सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिए आप मुझ को उपदेश कीजिये जिस को मैं ग्रहण करूं।
आप्तविद्वान्- देख! जिस बात में ये सहस्र एकमत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिस में परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।

(जिज्ञासु) इसकी परीक्षा कैसे हो?
(आप्त) तू जाकर इन-इन बातों को पूछ। सब की एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन सहस्र की मण्डली के बीच में खड़ा होकर बोला कि सुनो सब लोगो! सत्यभाषण में धर्म है वा मिथ्या में? सब एक स्वर होकर बोले कि सत्यभाषण में धर्म और असत्यभाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्संग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार, आदि में धर्म और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिसा, परहानि करने आदि कर्म्मों में? सब ने एक मत होके कहा कि विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म। तब जिज्ञासु ने सब से कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एकमत हो सत्य- धर्म की उन्नति और मिथ्यामार्ग की हानि क्यों नहीं करते हो? वे सब बोले-जो हम ऐसा करें तो हम को कौन पूछे? हमारे चेले हमारी आज्ञा में न रहैं। जीविका नष्ट हो जाय। फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं सो सब हाथ से जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने-अपने मत का उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं क्योंकि **'रोटी खाइये शक्कर से और दुनिया ठगिये मक्कर से'** ऐसी बात है। देखो! संसार में सूधे सच्चे मनुष्य को कोई नहीं देता और न पूछता। जो कुछ ढोंगबाजी और धूर्त्तता करता है वही पदार्थ पाता है।
(जिज्ञासु) जो तुम ऐसा पाखण्ड चलाकर अन्य मनुष्यों को ठगते हो तुम को राजा दण्ड क्यों नहीं देता?
(मत वाले) हम ने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हम ने पक्का प्रबन्ध किया है; छूटेगा नहीं।
(जिज्ञासु) जब तुम छल से अन्य मतस्थ मनुष्यों को ठग उन की हानि करते हो परमेश्वर के सामने क्या उत्तर दोगे? और घोर नरक में पड़ोगे। थोड़े जीवन के लिए इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते?
(मत वाले) जब जैसा होगा तब देखा जाएगा। नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा तब होगा अब तो आनन्द करते हैं। हम को प्रसन्नता से धनादि पदार्थ देते हैं कुछ बलात्कार से नहीं लेते फिर राजा दण्ड क्यों देवे?
(जिज्ञासु) जैसे कोई छोटे बालक को फुसला के धनादि पदार्थ हर लेता है जैसे उस को दण्ड मिलता है वैसे तुम को क्यों नहीं मिलता? क्योंकि-
अज्ञो भवति वै बाल पिता भवति मन्त्रद ।। -मनुन।।

जो ज्ञानरहित होता है वह बालक और जो ज्ञान का देने वाला है वह पिता और वृद्ध कहाता है। जो बुद्धिमान् विद्वान् है वह तो तुम्हारी बातों में नहीं फंसता किन्तु अज्ञानी लोग जो बालक के सदृश हैं उन को ठगने में तुम को राजदण्ड अवश्य होना चहिए।

(मत वाले) जब राजा प्रजा सब हमारे मत में हैं तो हम को दण्ड कौन देने वाला है? जब ऐसी व्यवस्था होगी तब इन बातों को छोड़ कर दूसरी व्यवस्था करेंगे।

(जिज्ञासु) जो तुम बैठे-बैठे व्यर्थ माल मारते हो सो विद्याभ्यास कर गृहस्थों के लड़के लड़कियों को पढ़ाओ तो तुम्हारा और गृहस्थों का कल्याण हो जाय।

(मत वाले) जब हम बाल्यावस्था से लेकर मरण तक के सुखों को छोड़ें; बाल्यावस्था से युवावस्था पर्यन्त विद्या पढ़ने में रहैं; पश्चात् पढ़ाने में और उपदेश करने में जन्म भर परिश्रम करें, हम को क्या प्रयोजन? हम को ऐसे ही लाखों रुपये मिल जाते हैं, चैन करते हैं। उस को क्यों छोड़ें?

(जिज्ञासु) इस का परिणाम तो बुरा है। देखो, तुम को बड़े रोग होते हैं। शीघ्र मर जाते हो। बुद्धिमानों में निन्दित होते हो। फिर भी क्यों नहीं समझते?

(मत वाले) अरे भाई!

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा ! टकां टकटकायते।।१।।
आना अंशकला प्रोक्ता रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम् ।
अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम्।।२।।

तू लड़का है संसार की बातें नहीं जानता। देख! टका के विना धर्म, टका के विना कर्म, टका के विना परमपद नहीं होता। जिस के घर में टका नहीं है वह हाय! टका-टका करता-करता उत्तम पदार्थों को टक-टक देखता रहता है कि हाय ! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थ को मैं भोगता।।१।। क्योंकि सब कोई सोलह कलायुक्त अदृश्य भगवान् का कथन श्रवण करते हैं सो तो नहीं दीखता, परन्तु सोलह आने और पैसे कौड़ीरूप अंश कलायुक्त जो रुपैया है वही साक्षात् भगवान् है। इसीलिए सब कोई रुपयों की खोज में लगे रहते हैं, क्योंकि सब काम रुपयों से सिद्ध होते हैं।।२।।

(जिज्ञासु) ठीक है। तुम्हारी भीतर की लीला बाहर आ गई। तुम ने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है वह सब अपने सुख के लिए किया है परन्तु इस में जगत् का नाश होता है। क्योंकि जैसा सत्योपदेश से संसार को लाभ पहुँचता है वैसी

ही असत्योपदेश से हानि होती है। जब तुम को धन का ही प्रयोजन था तो नौकरी और व्यापारादि कर्म करके धन इकट्ठा क्यों नहीं कर लेते हो?
(मत वाले) उस में परिश्रम अधिक और हानि भी हो जाती है परन्तु इस हमारी लीला में हानि कभी नहीं होती किन्तु सर्वदा लाभ ही लाभ होता है। देखो! तुलसीदल डाल के चरणामृत दे, कण्ठी बांध देते, चेला मूड़ने से जन्मभर को पशुवत् हो जाता है। फिर चाहैं जैसे चलावें; चल सकता है।

(जिज्ञासु) ये लोग तुमको बहुत सा धन किस लिये देते हैं?
(मत वाले) धर्म, स्वर्ग और मुक्ति के अर्थ।
(जिज्ञासु) जब तुम ही मुक्त नहीं और न मुक्ति का स्वरूप वा साधन जानते हो तो तुम्हारी सेवा करने वालों को क्या मिलेगा?
(मत वाले) क्या इस लोक में मिलता है? नहीं, किन्तु मरकर पश्चात् परलोक में मिलता है। जितना ये लोग हम को देते हैं और सेवा करते हैं वह सब इन लोगों को परलोक में मिल जाता है।
(जिज्ञासु) इन को तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं। तुम लेने वालों को क्या मिलेगा? नरक वा अन्य कुछ?
(मत वाले) हम भजन करा करते हैं। इस का सुख हम को मिलेगा।
(जिज्ञासु) तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये है। वे सब टके यहीं पड़े रहेंगे और जिस मांसपिण्ड को यहां पालते हो वह भी भस्म होकर यहीं रह जायेगा। जो तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता।
(मत वाले) क्या हम अशुद्ध हैं?
(जिज्ञासु) भीतर के बड़े मैले हो। **(मत वाले)** तुमने कैसे जाना ?
(जिज्ञासु) तुम्हारे चाल चलन व्यवहार से। **(मत वाले)** महात्माओं का व्यवहार हाथी के दांत के समान होता है। जैसे हाथी के दांत खाने के भिन्न और दिखलाने के भिन्न होते हैं। वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं।
(जिज्ञासु) जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी शुद्ध होते इसलिए भीतर भी मैले हो।
(मत वाले) हम चाहैं जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं।
(जिज्ञासु) जैसे तुम गुरु हो वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे।

(मत वाले) एक मत कभी नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

(जिज्ञासु) जो बाल्यावस्था में एक सी शिक्षा हो, सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्म का त्याग करें तो एकमत अवश्य हो जायें और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं वे तो रहैं। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से संसार में सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख। जब सब विद्वान् एक सा उपदेश करें तो एकमत होने में कुछ भी विलम्ब न हो।

(मत वाले) आजकल कलियुग है सतयुग की बात मत चाहो।

(जिज्ञासु) कलियुग नाम काल का है। काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्माधर्म के करने में साधक बाधक नहीं, किन्तु तुम ही कलियुग की मूर्त्तियां बन रहे हो। जो मनुष्य ही सत्ययुग कलियुग न हों तो कोई भी संसार में धर्मात्मा नहीं होता। ये सब संग के गुण दोष हैं; स्वाभाविक नहीं। इतना कहकर आप्त के पास गया। उन से कहा कि महाराज! तुम ने मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं भी किसी के जाल में फंसकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता। अब मैं भी इन पाखण्डियों का खण्डन और वेदोक्त सत्य मत का मण्डन किया करूँगा।

(आप्त) यही सब मनुष्यों का विशेष विद्वान् और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य का मण्डन और असत्य खण्डन पढ़ा सुना के सत्योपदेश से उपकार पहुंचाना चाहिये।

(प्रश्न) जो ब्रह्मचारी संन्यासी हैं वे तो ठीक हैं?

(उत्तर) ये आश्रम तो ठीक हैं परन्तु आजकल इन में भी बहुत सी गड़बड़ है। कितने ही नाम ब्रह्मचारी रखते हैं और झूठ-मूठ जटा बढ़ाकर सिद्धाई करते और जप पुरश्चरणादि में फंसे रहते हैं, विद्या पढ़ने का नाम नहीं लेते कि जिस हेतु से ब्रह्मचारी नाम होता है उस ब्रह्म अर्थात् वेद पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बकरी के गले के स्तन के सदृश निरर्थक हैं। और जो वैसे संन्यासी विद्याहीन, दण्ड कमण्डलु से भिक्षामात्र करते फिरते हैं, जो कुछ भी वेदमार्ग की उन्नति नहीं करते। छोटी अवस्था में संन्यास लेकर घूमा करते हैं और विद्याभ्यास को छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी और संन्यासी इधर उधर जल, स्थल, पाषाणादि मूर्त्तियों का दर्शन, पूजन करते फिरते, विद्या जानकर भी मौन हो रहते। एकान्त देश में यथेष्ट खा पीकर सोते पड़े रहते हैं और ईर्ष्या द्वेष में फंसकर निन्दा कुचेष्टा करके निर्वाह करते । काषाय वस्त्र और दण्ड

ग्रहणमात्र से अपने को कृतकृत्य समझते और सर्वोत्कृष्ट जानकर उत्तम काम नहीं करते, वैसे संन्यासी भी जगत् में व्यर्थ वास करते हैं। और जो सब जगत् का हित साधते हैं, वे ठीक हैं।

पुनः (लोकैषणा) लोक में प्रतिष्ठा (वित्तैषणा) धन बढ़ाने में तत्पर होकर विषयभोग (पुत्रैषणा) पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना, इन तीन एषणाओं का त्याग करना उचित है। जब एषणा ही नहीं छूटी पुनः संन्यास क्योंकर हो सकता है? अर्थात् पक्षपातरहित वेदमार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहिर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। जब अपने-अपने अधिकार कर्मों को नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धराना व्यर्थ है। नहीं तो जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में संन्यासी भी तत्पर रहैं तभी सब आश्रम उन्नति पर रहैं।

देखो! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं, ईसाई, मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुम से अपने घर की रक्षा और दूसरों का मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो! जब लों वर्त्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते तब लों आर्य्यावर्त्त और अन्य देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धि के कारण वेदादि सत्यशास्त्रें का पठनपाठन, ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है। चेत रक्खो! बहुत सी पाखण्ड की बातें तुम को सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु, दुकानदार पुत्रदि देने की सिद्धियां बतलाता है। तब उस के पास बहुत स्त्री जाती हैं और हाथ जोड़कर पुत्र मांगती हैं। और बाबा जी सब को पुत्र होने का आशीर्वाद देता है। उन में से जिस-जिस के पुत्र होता है वह-वह समझती हैं कि बाबा जी के वचन से ऐसा हुआ। जब उन से कोई पूछे कि सूअरी, कुत्ती, गधी और कुक्कुटी आदि के कच्चे बच्चे किस बाबा जी के वचन से होते हैं? तब कुछ भी उत्तर न दे सकेंगी! जो कोई कहे कि मैं लड़के को जीता रख सकता हूं तो आप ही क्यों मर जाता है?
कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी धोखा खा जाते हैं, जैसे धनसारी के ठग। ये लोग पांच सात मिल के दूर-दूर देश में जाते हैं। जो शरीर से डौलडाल में अच्छा होता है उस को सिद्ध बना लेते हैं। जिस नगर वा ग्राम में धनाढ्य होते हैं उस के समीप जंगल में उस सिद्ध को बैठाते

हैं। उसके साधक नगर में जाके अजान बनके जिस किसी को पूछते हैं-'तुम ने ऐसे महात्मा को यहां कहीं देखा वा नहीं? वे ऐसा सुनकर पूछते हैं कि वह महात्मा कौन और कैसा है?

साधक कहता है-बड़ा सिद्ध पुरुष है। मन की बातें बतला देता है। जो मुख से कहता है वह हो जाता है। बड़ा योगीराज है, उसके दर्शन के लिए हम अपने घर द्वार छोड़कर देखते फिरते हैं। मैंने किसी से सुना था कि वे महात्मा इधर की ओर आये हैं।

गृहस्थ कहता है-जब वह महात्मा तुम को मिले तो हम को भी कहना। दर्शन करेंगे और मन की बातें पूछेंगे। इसी प्रकार दिन भर नगर में फिरते और प्रत्येक को उस सिद्ध की बात कहकर रात्रि को इकट्ठे सिद्ध साधक होकर खाते पीते और सो रहते हैं। फिर भी प्रातःकाल नगर वा ग्राम में जाके उसी प्रकार दो तीन दिन कहकर फिर चारों साधक किसी एक-एक धनाढ्य से बोलते हैं कि वह महात्मा मिल गये। तुम को दर्शन करना हो तो चलो। वे जब तैय्यार होते हैं तब साधक उन से पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हम से कहो। कोई पुत्र की इच्छा करता, कोई धन की, कोई रोग-निवारण की और कोई शत्रु के जीतने की। उन को वे साधक ले जाते हैं। सिद्ध साधकों ने जैसा संकेत किया होता है अर्थात् जिस को धन की इच्छा हो उस को दाहिनी, और जिस को पुत्र की इच्छा हो उसको सम्मुख, और जिस को रोग-निवारण की इच्छा हो उस को बाईं ओर और जिस को शत्रु जीतने की इच्छा हो उस को पीछे से ले जा के सामने वाले के बीच में बैठाते हैं। जब नमस्कार करते हैं उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाई की भफ़पट से उच्च स्वर से बोलता है-'क्या यहां हमारे पास पुत्र रक्खे हैं जो तू पुत्र की इच्छा करके आया है? इसी प्रकार धन की इच्छा वाले से 'क्या यहां थैलियां रक्खी हैं जो धन की इच्छा करके आया है? 'फकीरों के पास धन कहां धरा है? ' रोगवाले से 'क्या हम वैद्य हैं जो तू रोग छुड़ाने की इच्छा से आया? हम वैद्य नहीं जो तेरा रोग छुड़ावें; जा किसी वैद्य के पास' परन्तु जब उस का पिता रोगी हो तो उस का साधक अंगूठा; जो माता रोगी हो तो तर्जनी; जो भाई रोगी हो मध्यमा, जो स्त्री रोगी हो तो अनामिका; जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली चला देता है। उस को देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है। तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री, और तेरी कन्या रोगी है। तब तो वे चारों के चारों बड़े मोहित हो जाते हैं। साधक लोग उन से कहते हैं-देखो! हम ने कहा था वैसे ही हैं वा नहीं?

गृहस्थ कहते हैं-हां जैसा तुमने कहा था वैसे ही हैं। तुम ने हमारा बड़ा उपकार किया और हमारा भी बड़ा भाग्योदय था जो ऐसे महात्मा मिले। जिस के दर्शन करके हम कृतार्थ हुए।

साधक कहता है-सुनो भाई! ये महात्मा मनोगामी हैं। यहां बहुत दिन रहने वाले नहीं। जो कुछ इन का आशीर्वाद लेना हो तो अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुकूल इन की तन, मन, धन से सेवा करो, क्योंकि 'सेवा से मेवा मिलती है।' जो किसी पर प्रसन्न हो गये तो जाने क्या वर दे दें। 'सन्तों की गति अपार है।' गृहस्थ ऐसे लल्लो-पत्तो की बातें सुनकर बड़े हर्ष से उनकी प्रशंसा करते हुए घर की ओर जाते हैं। साधक भी उनके साथ ही चले जाते हैं क्योंकि मार्ग में कोई उन का पाखण्ड खोल न देवे। उन धनाढ्यों का जो कोई मित्र मिला उस से प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार जो-जो साधकों के साथ जाते हैं उन-उन का वृत्तान्त सब कह देते हैं। जब नगर में हल्ला मचता है कि अमुक ठौर एक बड़े भारी सिद्ध आये हैं; चलो उन के पास। जब मेला का मेला जाकर बहुत से लोग पूछने लगते हैं कि महाराज! मेरे मन का वृत्तान्त कहिये। तब तो व्यवस्था के बिगड़ जाने से चुपचाप होकर मौन साध जाता है और कहता है कि हम को बहुत मत सताओ। तब तो भफ़ट उसके साधक भी कहने लग जाते हैं जो तुम इन को बहुत सताओगे तो चले जायेंगे और जो कोई बड़ा धनाढ्य होता है वह साधक को अलग बुला कर पूछता है कि हमारे मन की बात कहला दो तो हम सच मानें। साधक ने पूछा कि क्या बात है? धनाढ्य ने उस से कह दी। तब उस को उसी प्रकार के संकेत से ले जा के बैठाल देता है। उसे सिद्ध ने समझ के झट कह दिया, तब तो सब मेला भर ने सुन ली कि अहो ! बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं। कोई मिठाई, कोई पैसा, कोई रुपया, कोई अशर्फी, कोई कपड़ा और कोई सीधा सामग्री भेंट करता है। फिर जब तक मानता बहुत सी रही तब तक यथेष्ट लूट करते हैं और किन्हीं-किन्हीं दो एक **आंख के अन्धे गांठ के पूरों** को पुत्र होने का आशीर्वाद वा राख उठा के दे देता है और उस से सहस्रों रुपये लेकर कह देता है कि तेरी सच्ची भक्ति होगी तो तेरा पुत्र हो जायगा। इस प्रकार के बहुत से ठग होते हैं जिन को विद्वान् ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं। इसलिए वेदादि विद्या का पढ़ना, सत्संग करना होता है जिस से कोई उस को ठगाई में न फंसा सके। औरों को भी बचा सके क्योंकि मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। विना विद्या शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य

और विद्वान् होते हैं। जिन को कुसंग है वे दुष्ट पापी महामूर्ख हो कर बड़े दुःख पाते हैं। इसीलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है वही मानता है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति ।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ता परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जा ।।

यह किसी कवि का श्लोक है।

जो जिस का गुण नहीं जानता वह उस की निन्दा निरन्तर करता है। जैसे जंगली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुञ्जा का हार पहिन लेता है वैसे ही जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक सत्पुरुषों का संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय सुशील होता है वही धर्मार्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है। यह आर्यावर्त्तनिवासी लोगों के मत विषय में संक्षेप से लिखा है। इस के आगे जो थोड़ा सा आर्यराजाओं का इतिहास मिला है इस को सब सज्जनों को जनाने के लिये प्रकाशित किया जाता है। अब आर्यावर्त्तदेशीय राजवंश कि जिस में श्रीमान् महाराज 'युधिष्ठिर' से लेके महाराज 'यशपाल' पर्यन्त हुए हैं उस इतिहास को लिखते हैं। और श्रीमान् महाराज 'स्वायम्भुव मनु जी' से लेके महाराजा 'युधिष्ठिर' पर्यन्त का इतिहास महाभारतादि में लिखा ही है और इस से सज्जन लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्त्तमान विदित होगा। यद्यपि यह विषय विद्यार्थी सम्मिलित 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' और 'मोहनचन्द्रिका' जो कि पाक्षिकपत्र श्रीनाथद्वारे से निकलता था जो राजपूताना देश मेवाड़ राज उदयपुर, चितौड़गढ़ में सब को विदित है; यह उस से हम ने अनुवाद किया है। **यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकों का खोज कर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुंचेगा।** उस पत्र सम्पादक महाशय ने अपने मित्र से एक प्राचीन पुस्तक जो कि संवत् विक्रम के १७८२ (सत्रह सौ बयासी) का लिखा हुआ था, उस से ग्रहण कर अपने संवत् १९३९ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १९-२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक-पत्रें में छापा है सो निम्न लिखे प्रमाणे जानिये।

आर्य्यावर्त्तदेशीय राजवंशावली

इन्द्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमन्महाराज 'यशपाल' पर्यन्त राज्य किया। जिन में श्रीमन्महाराजे 'युधिष्ठिर' से महाराजे 'यशपाल' तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान १२४ (एक सौ चौबीस राजा); वर्ष ४१५७, मास ९, दिन १४, समय में हुए हैं।

इनका ब्यौरा-

राजा- आर्यराजा **शक-**१२४ **वर्ष-**४१५७ **मास-**९ **दिन-**१४
श्रीमन्महाराजे युधिष्ठिर वंश अनुमान पीढ़ी ३०, वर्ष १७७०, मास ११, दिन १० इनका विस्तार-

आर्यराजा वर्ष मास दिन
१ राजा युधिष्ठिर ३६ ८ २५
२ राजा परीक्षित ६० ० ०
३ राजा जनमेजय ८४ ७ २३
४ राजा अश्वमेध ८२ ८ २२
५ द्वितीयराम ८८ २ ८
६ छत्रमल ८१ ११ २७
७ चित्ररथ ७५ ३ १८
८ दुष्टशैल्य ७५ १० २४
९ राजा उग्रसेन ७८ ७ २१
१० राजा शूरसेन ७८ ७ २१
११ भुवनपति ६९ ५ ५
१२ रणजीत ६५ १० ४
१३ ऋक्षक ६४ ७ ४
१४ सुखदेव ६२ ० २४
१५ नरहरिदेव ५१ १० २
१६ सुचिरथ ४२ ११ २
१७ शूरसेन (दूसरा) ५८ १० ८
१८ पर्वतसेन ५५ ८ १०
१९ मेधावी ५२ १० १०
२० सोनचीर ५० ८ २१
२१ भीमदेव ४७ ९ २०
२२ नृहरिदेव ४५ ११ २३
२३ पूर्णमल ४४ ८ ७
२४ करदवी ४४ १० ८
२५ अलंमिक ५० ११ ८
२६ उदयपाल ३८ ९ ०
२७ दुवनमल ४० १० २६

२८ दमात ३२ ० ०
२९ भीमपाल ५८ ५ ८
३० क्षेमक ४८ ११ २१
राजा क्षेमक के प्रधान विश्रवा ने क्षेमक राजा को मार कर राज्य किया। पीढ़ी १४, वर्ष ५००, मास ३, दिन १७
इनका विस्तार-
आर्यराजा वर्ष मास दिन
१ विश्रवा १७ ३ २९
२ पुरसेनी ४२ ८ २१
३ वीरसेनी ५२ १० ७
४ अनंगशायी ४७ ८ २३
५ हरिजित ३५ ९ १७
६ परमसेनी ४४ २ २३
७ सुखपाताल ३० २ २१
८ कद्रुत ४२ ९ २४
९ सज्ज ३२ २ १४
१० अमरचूड़ २७ ३ १६
११ अमीपाल २२ ११ २५
१२ दशरथ २५ ४ १२
१३ वीरसाल ३१ ८ ११
१४ वीरसालसेन ४७ ० १४
राजा वीरसालसेन को वीरमहा प्रधान ने मार कर राज्य किया। वंश १६, वर्ष ४४५, मास ५, दिन ३, इनका विस्तार-
आर्यराजा वर्ष मास दिन
१ राजा वीरमहा ३५ १० ८
२ अजितसिह २७ ७ १९
३ सर्वदत्त २८ ३ १०
४ भुवनपति १५ ४ १०
५ वीरसेन २१ २ १३
६ महीपाल ४० ८ ७
७ शत्रुशाल २६ ४ ३

८ संघराज १७ २ १०
९ तेजपाल २८ ११ १०
१० माणिकचन्द ३७ ७ २१
११ कामसेनी ४२ ५ १०
१२ शत्रुमर्दन ८ ११ १३
१३ जीवनलोक २८ ९ १७
१४ हरिराव २६ १० २९
१५ वीरसेन (दूसरा) ३५ २ २०
१६ आदित्यकेतु २३ ११ १३
राजा आदित्यकेतु मगधदेश के राजा को 'धन्धर' नामक राजा प्रयाग के ने मार कर राज्य किया। वंशपीढ़ी ९, वर्ष ३७४, मास ११, दिन २६ इनका विस्तार-
आर्यराजा वर्ष मास दिन
१ राजा धन्धर ४२ ७ २४
२ महिर्ष ४१ २ २९
३ सनरच्ची ५० १० १९
४ महायुद्ध ३० ३ ८
५ दुरनाथ २८ ५ २५
६ जीवनराज ४५ २ ५
७ रुद्रसेन ४७ ४ २८
८ आरीलक ५२ १० ८
९ राजपाल ३६ ० ०
राजा राजपाल को सामन्त महान्पाल ने मार कर राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष १४, मास ०, दिन ० इनका विस्तार नहीं है।
राजा महान्पाल के राज्य पर राजा विक्रमादित्य ने 'अवन्तिका' (उज्जैन) से चढ़ाई करके राजा महान्पाल को मार के राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष ९३, मास ०, दिन ० इन का विस्तार नहीं है।
राजा विक्रमादित्य को शालिवाहन का उमराव समुद्रपाल योगी पैठण के ने मार कर राज्य किया। पीढ़ी १६, वर्ष ३७२, मास ४, दिन २७ इन का विस्तार-
आर्यराजा वर्ष मास दिन
१ समुद्रपाल ५४ २ २०

२ चन्द्रपाल ३६ ५ ४
३ सहायपाल ११ ४ ११
४ देवपाल २७ १ २८
५ नरसिहपाल १८ ० २०
६ सामपाल २७ १ १७
७ रघुपाल २२ ३ २५
८ गोविन्दपाल २७ १ १७
९ अमृतपाल ३६ १० १३
१० बलीपाल १२ ५ २७
११ महीपाल १३ ८ ४
१२ हरीपाल १४ ८ ४
१३ सीसपाल[1] ११ १० १३
१४ मदनपाल १७ १० १९
१५ कर्मपाल १६ २ २
१६ विक्रमपाल २४ ११ १३

राजा विक्रमपाल ने पश्चिम दिशा का राजा (मलुखचन्द बोहरा था) इन पर चढ़ाई करके मैदान में लड़ाई की इस लड़ाई में मलुखचन्द ने विक्रमपाल को मार कर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया। पीढ़ी १०, वर्ष १९१, मास १, दिन १६ इनका विस्तार-

आर्यराजा वर्ष मास दिन

१ मलुखचन्द ५४ २ २०
२ विक्रमचन्द १२ ७ १२
३ अमीनचन्द[2] १० ० ५
४ रामचन्द १३ ११ ८
५ हरीचन्द १४ ९ २४
६ कल्याणचन्द १० ५ ४
७ भीमचन्द १६ २ ९
८ लोवचन्द २६ ३ २२
९ गोविन्दचन्द ३१ ७ १२
१० रानी पद्मावती[3] १ ० ०

रानी पद्मावती मर गई। इसके पुत्र भी कोई नहीं था। इसलिये सब मुत्सद्दियों ने सलाह करके हरिप्रेम वैरागी को गद्दी पर बैठा के मुत्सद्दी राज्य करने लगे। पीढ़ी

१- किसी इतिहास में भीमपाल भी लिखा है।
२- इनका नाम कहीं मानकचन्द भी लिखा है।
३- यह पद्मावती गोविन्दचन्द की रानी थी।

४, वर्ष ५०, मास ०, दिन २१ हरिप्रेम का विस्तार-

आर्यराजा वर्ष मास दिन

१ हरिप्रेम ७ ५ १६
२ गोविन्दप्रेम २० २ ८
३ गोपालप्रेम १५ ७ २८
४ महाबाहु ६ ८ २९

राजा महाबाहु राज्य छोड़ के वन में तपश्चर्या करने लगे। यह बंगाल के राजा आवमीसेन ने सुन के इन्द्रप्रस्थ में आके आप राज्य करने लगे। पीढ़ी १२, वर्ष १५१, मास ११, दिन २ इनका विस्तार-

आर्यराजा वर्ष मास दिन

१ राजा आधीसेन १८ ५ २१
२ विलावलसेन १२ ४ २
३ केशवसेन १५ ७ १२
४ माधवसेन १२ ४ २
५ मयूरसेन २० ११ २७
६ भीमसेन ५ १० ९
७ कल्याणसेन ४ ८ २१
८ हरीसेन १२ ० २५
९ क्षेमसेन ८ ११ १५
१० नारायणसेन २ २ २९
११ लक्ष्मीसेन २६ १० ०
१२ दामोदरसेन ११ ५ ९

राजा दामोदरसेन ने अपने उमराव को बहुत दुःख दिया। इसलिए राजा के उमराव दीपसिह ने सेना मिला के राजा के साथ लड़ाई की। उस लड़ाई में

राजा को मार कर दीपसिह आप राज्य करने लगे। पीढ़ी ६, वर्ष १०७, मास ६, दिन २२ इन का विस्तार-

आर्यराजा वर्ष मास दिन

१ दीपसिह १७ १ २६

२ राजसिह १४ ५ ०

३ रणसिह ९ ८ ११

४ नरसिह ४५ ० १५

५ हरिसिह १३ २ २९

६ जीवनसिह ८ ० १

राजा जीवनसिह ने कुछ कारण के लिये अपनी सब सेना उत्तर दिशा को भेज दी। यह खबर पृथ्वीराज चह्वाण वैराट के राजा सुनकर जीवनसिह के ऊपर चढ़ाई करके आये और लड़ाई में जीवनसिह को मार कर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया। पीढ़ी ५, वर्ष ८६, मास ०, दिन २० इनका विस्तार-

आर्यराजा वर्ष मास दिन

१ पृथिवीराज १२ २ १९

२ अभयपाल १४ ५ १७

३ दुर्जनपाल ११ ४ १४

४ उदयपाल ११ ७ ३

५ यशपाल ३६ ४ २७

राजा यशपाल के ऊपर सुलतान शाहबुद्दीन गौरी गढ़ गजनी से चढ़ाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किले में संवत् १२४९ साल में पकड़ कर कैद किया। पश्चात् 'इन्द्रप्रस्थ' अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुलतान शहाबुद्दीन) करने लगा। पीढ़ी ५३, वर्ष ७४५, मास १, दिन १७ इन का विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकों में लिखा है, इसलिए यहां नहीं लिखा।

इसके आगे बौद्ध जैनमत विषय में लिखा जायेगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आर्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डनविषय एकादश समुल्लास सम्पूर्ण ।।११।।

अथ द्वादशसमुल्लासारम्भः

अथ नास्तिकमतान्तर्गतचारवाकबौद्धजैनमतखण्डनमण्डनविषयान् व्याख्यास्यामः

कोई एक बृहस्पति नामा पुरुष हुआ था जो वेद, ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मों को भी नहीं मानता था। उन का मत-

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचर ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत ।।

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्यु के अगोचर नहीं है अर्थात् सब को मरना है इसलिये जब तक शरीर में जीव रहै तब तक सुख से रहै। जो कोई कहे कि धर्माचरण से कष्ट होता है जो धर्म को छोड़े तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावें। उस को 'चारवाक' उत्तर देता है कि अरे भोले भाई! जो मरे के पश्चात् शरीर भस्म हो जाता है कि जिस ने खाया पिया है वह पुनः संसार में न आवेगा। इसलिये जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो। लोक में नीति से चलो, ऐश्वर्य्य को बढ़ाओ और उस से इच्छित भोग करो। यही लोक समभफ़ो; परलोक कुछ नहीं। देखो! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है। इस में इन के योग से चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मादक द्रव्य खाने पीने से मद (नशा) उत्पन्न होता है इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप ही नष्ट हो जाता है। फिर किस को पाप पुण्य का फल होगा?

तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्।।

इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हीं के वियोग के साथ ही नष्ट हो जाता है क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता। हम एक प्रत्यक्ष ही को मानते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष के बिना अनुमानादि होते ही नहीं। इसलिये मुख्य प्रत्यक्ष के सामने अनुमानादि गौण होने से उस का ग्रहण नहीं करते। सुन्दर स्त्री के आलिंगन से आनन्द का करना पुरुषार्थ का फल है।

(उत्तर) ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं। उन से चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती। जैसे अब माता-पिता के संयोग से देह की उत्पत्ति होती है वैसे ही आदि सृष्टि में मनुष्यादि शरीरों की आकृति परमेश्वर कर्त्ता के विना कभी नहीं हो सकती। मद के समान चेतन की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता, क्योंकि मद चेतन को होता है जड़ को नहीं। पदार्थ नष्ट अर्थात् अदृष्ट होते हैं परन्तु अभाव किसी का

नहीं होता। इसी प्रकार अदृश्य होने से जीव का भी अभाव न मानना चाहिये। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उस की प्रकटता होती है। जब शरीर को छोड़ देता है तब यह शरीर जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है वह जैसा चेतनयुक्त पूर्व था वैसा नहीं हो सकता। यही बात बृहदारण्यक में कही है-

नाहं मोहं ब्रवीमि अनुच्छित्तिधर्मायमात्मेति।।

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे मैत्रेयि! मैं मोह से बात नहीं करता किन्तु आत्मा अविनाशी है जिस के योग से शरीर चेष्टा करता है। **जब जीव शरीर से पृथक्‌ हो जाता है तब शरीर में ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। जो देह से पृथक्‌ आत्मा न हो तो जिस के संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता होती है, वह देह से पृथक्‌ है। जैसे आँख सब को देखती है परन्तु अपने को नहीं। इसी प्रकार प्रत्यक्ष का करने वाला अपने को ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। जैसे अपनी आँख से सब घट पटादि पदार्थ देखता है वैसे आँख को अपने ज्ञान से देखता है। जो द्रष्टा है वह द्रष्टा ही रहता है दृश्य कभी नहीं होता। जैसे विना आधार आधेय, कारण के विना कार्य्य, अवयवी के विना अवयव और कर्त्ता के विना कर्म नहीं रह सकते वैसे कर्त्ता के विना प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?** जो सुन्दर स्त्री के साथ समागम करने ही को पुरुषार्थ का फल मानो तो क्षणिक सुख और उस से दुःख भी होता है वह भी पुरुषार्थ ही का फल होगा। जब ऐसा है तो स्वर्ग की हानि होने से दुःख भोगना पड़ेगा। जो कहो दुःख के छुड़ाने और सुख के बढ़ाने में यत्न करना चाहिये तो मुक्ति सुख की हानि हो जाती है इसलिए वह पुरुषार्थ का फल नहीं।

(चारवाक) जो दुःख संयुक्त सुख का त्याग करते हैं वे मूर्ख हैं। जैसे धान्यार्थी धान्य का ग्रहण और बुस का त्याग करता है वैसे इस संसार में बुद्धिमान् सुख का ग्रहण और दुःख का त्याग करें। क्योंकि इस लोक के उपस्थित सुख को छोड़ के अनुपस्थित स्वर्ग के सुख की इच्छा कर धूर्त कथित वेदोक्त अग्निहोत्रदि कर्म उपासना और ज्ञानकाण्ड का अनुष्ठान परलोक के लिये करते हैं वे अज्ञानी हैं। जो परलोक है ही नहीं तो उसकी आशा करना मूर्खता का काम है। क्योंकि-

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पति ।।

चारवाकमतप्रचारक 'बृहस्पति' कहता है कि अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्म का लगाना बुद्धि और पुरुषार्थ रहित पुरुषों ने जीविका बना ली है।

किन्तु कांटे लगने आदि से उत्पन्न हुए दुःख का नाम नरक; लोकसिद्ध राजा परमेश्वर और देह का नाश होना मोक्ष अन्य कुछ भी नहीं है।

(उत्तर) विषयरूपी सुखमात्र को पुरुषार्थ का फल मानकर विषय दुःख-निवारणमात्र में कृतकृत्यता और स्वर्ग मानना मूर्खता है। **अग्निहोत्रदि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्यता का होना उस से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है उस को न जानकर वेद ईश्वर और वेदोक्त धर्म की निन्दा करना धूर्तों का काम है।** जो त्रिदण्ड और भस्मधारण का खण्डन है सो ठीक है। यदि कण्टकादि से उत्पन्न ही दुःख का नाम नरक हो तो उस से अधिक महारोगादि नरक क्यों नहीं? यद्यपि राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ मानें तो ठीक है परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो उस को भी परमेश्वरवत् मानते हो तो तुम्हारे जैसा कोई भी मूर्ख नहीं। शरीर का विच्छेद होना मात्र मोक्ष है तो गदहे, कुत्ते आदि और तुम में क्या भेद रहा। किन्तु आकृति ही मात्र भिन्न रही। चारवाक-

अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिल ।
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तदव्यवस्थिति ।।१।।
न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिक ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिका ।।२।।
पशुश्चेन्निहत स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिस्यते।।३।।
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।।४।।
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानत ।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते।।५।।
यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत ।।६।।
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गत ।
कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुल ।।७।।
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ।
मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्।।८।।
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचरा ।
जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वच स्मृतम्।।९।।

अश्वस्यात्र हि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम् ।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्त्तितम्।।१०।।
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्।।११।।

चारवाक जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से मानते हैं। जो-जो स्वाभाविक गुण हैं उस-उस से द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं। कोई जगत् का कर्त्ता नहीं।।१।।

न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलोक में जाने वाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रिया फलदायक है।।२।।

जो यज्ञ में पशु को मार होम करने से वह स्वर्ग को जाता हो तो यजमान अपने पितादि को मार होम करके स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता? ।।३।।

जो मरे हुए जीवों को श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है तो परदेश में जाने वाले मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न, वस्त्र और धनादि को क्यों ले जाते हैं? क्योंकि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुंचता है तो परदेश में जाने वालों के लिये उनके सम्बन्धी भी घर में उन के नाम से अर्पण करके देशान्तर में पहुंचा देवें। जो यह नहीं पहुंचता तो स्वर्ग में वह क्योंकर पहुँच सकता है? ।।४।।

जो मर्त्यलोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता? ।।५।।

इसलिये जब तक जीवे तब तक सुख से जीवे। जो घर में पदार्थ न हों तो ऋण लेके आनन्द करे। ऋण देना नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस शरीर में जीव ने खाया पिया है उन दोनों का पुनरागमन न होगा फिर किस से कौन मांगेगा और कौन देवेगा।।६।।

जो लोग कहते हैं कि मृत्युसमय जीव शरीर से निकल के परलोक को जाता है; यह बात मिथ्या है क्योंकि जो ऐसा होता तो कुटुम्ब के मोह से बद्ध होकर पुनः घर में क्यों नहीं आ जाता? ।।७।।

इसलिये यह सब ब्राह्मणों ने अपनी जीविका का उपाय किया है। जो दशगात्रदि मृतकक्रिया करते हैं यह सब उनकी जीविका की लीला है।।८।।

वेद के बनानेहारे भांड, धूर्त्त और निशाचर अर्थात् राक्षस ये तीन हैं। 'जर्फरी' 'तुर्फरी' इत्यादि पण्डितों के धूर्त्ततायुक्त वचन हैं।।९।।

देखो धूर्त्तों की रचना! घोड़े के लिंग को स्त्री ग्रहण करे; उस के साथ समागम यजमान की स्त्री से कराना; कन्या से ठट्ठा आदि लिखना धूर्त्तों के विना नहीं हो सकता।।१०।।
और जो मांस का खाना लिखा है वह वेदभाग राक्षस का बनाया है।।११।।
(उत्तर) विना चेतन परमेश्वर के निर्माण किये जड़ पदार्थ स्वयम् आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। इस वास्ते सृष्टि का कर्त्ता अवश्य होना चाहिए। जो स्वभाव से ही होते हों तो द्वितीय सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और नक्षत्रदि लोक आप से आप क्यों नहीं बन जाते हैं।।१।।
स्वर्ग सुख भोग और नरक दुःख भोग का नाम है। जो जीवात्मा न होता तो सुख दुःख का भोक्ता कौन हो सके? जैसे इस समय सुख दुःख का भोक्ता जीव है वैसे परजन्म में भी होता है। क्या सत्यभाषण और परोपकारादि क्रिया भी वर्णाश्रमियों की निष्फल होंगी? कभी नहीं।।२।।
पशु मार के होम करना वेदादि सत्यशास्त्रें में कहीं नहीं लिखा और मृतकों का श्राद्ध, तर्पण करना कपोलकल्पित है क्योंकि यह वेदादि सत्यशास्त्रें के विरुद्ध होने से भागवतादि पुराणमतवालों का मत है इसलिये इस बात का खण्डन अखण्डनीय है।।३-५।।
जो वस्तु है उस का अभाव कभी नहीं होता। विद्यमान जीव का अभाव नहीं हो सकता। देह भस्म हो जाता है; जीव नहीं। जीव तो दूसरे शरीर में जाता है इसलिये जो कोई ऋणादि कर विराने पदार्थों से इस लोक में भोग कर नहीं देते हैं। वे निश्चय पापी होकर दूसरे जन्म में दुःखरूपी नरक भोगते हैं, इस में कुछ भी सन्देह नहीं।।६।।
देह से निकल कर जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त होता है और उस को पूर्वजन्म तथा कुटुम्बादि का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता इसलिये पुनः कुटुम्ब में नहीं आ सकता।।७।।
हां! ब्राह्मणों ने प्रेतकर्म अपनी जीविकार्थ बना लिया है परन्तु वेदोक्त न होने से खण्डनीय है।।८।।
अब कहिये! जो चारवाक आदि ने वेदादि सत्यशास्त्र देखे सुने वा पढ़े होते तो वेदों की निन्दा कभी न करते कि वेद भांड धूर्त्त और निशाचरवत् पुरुषों ने बनाये हैं ऐसा वचन कभी न निकालते। हां! भांड धूर्त्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं। उन की धूर्त्तता है; वेदों की नहीं। परन्तु शोक है चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनियों पर कि इन्होंने मूल चार वेदों की संहिताओं को

भी न सुना, न देखा और न किसी विद्वान् से पढ़ा, इसीलिये नष्ट-भ्रष्ट बुद्धि होकर ऊटपटांग वेदों की निन्दा करने लगे। दुष्ट वाममार्गियों की प्रमाणशून्य कपोलकल्पित भ्रष्ट टीकाओं को देख कर वेदों से विरोधी हो कर अविद्यारूपी अगाध समुद्र में जा गिरे।।९।।

भला! विचारना चाहिये कि स्त्री से अश्व के लिंग का ग्रहण कराके उस से समागम कराना और यजमान की कन्या से हाँसी ठट्ठा आदि करना सिवाय वाममार्गी लोगों से अन्य मनुष्यों का काम नहीं है। विना इन महापापी वाममार्गियों के भ्रष्ट, वेदार्थ से विपरीत, अशुद्ध व्याख्यान कौन करता? अत्यन्त शोक तो इन चारवाक आदि पर है जो कि विना विचारे वेदों की निन्दा करने पर तत्पर हुए। तनिक तो अपनी बुद्धि से काम लेते। क्या करें विचारे उन में विद्या ही नहीं थी जो सत्यासत्य का विचार कर सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन करते।।१०।।

और जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है। इसलिये उन को राक्षस कहना उचित है परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा। इसलिये मिथ्या बातों का पाप उन टीकाकारों को और जिन्होंने वेदों के जाने सुने विना मनमानी निन्दा की है; निःसन्देह उन को लगेगा। सच तो यह है कि जिन्होंने वेदों का विरोध किया और करते हैं और करेंगे वे अवश्य अविद्यारूपी अन्धकार में पड़ के सुख के बदले दारुण दुःख जितना पावें उतना ही न्यून है। इसलिये मनुष्यमात्र को वेदानुकूल चलना समुचित है।।११।।

जो वाममार्गियों ने मिथ्या कपोलकल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मांस खाने और परस्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कामों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलंक लगाया। इन्हीं बातों को देख कर चारवाक, बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे । और पृथक्‌ एक वेदविरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया। जो चारवाकादि वेदों का मूलार्थ विचारते तो भफ़ूठी टीकाओं को देख कर सत्य वेदोक्त मत से क्यों हाथ धो बैठते? क्या करें विचारे **'विनाशकाले विपरीतबुद्धि '**। जब नष्ट भ्रष्ट होने का समय आता है तब मनुष्य की उलटी बुद्धि हो जाती है। अब जो चारवाकादिकों में भेद है सो लिखते हैं। ये चारवाकादि बहुत सी बातों में एक हैं परन्तु चारवाक देह की उत्पत्ति के साथ जीवोत्पत्ति और उस के नाश के साथ ही जीव का भी नाश मानता है। पुनर्जन्म और परलोक को नहीं मानता। एक प्रत्यक्ष प्रमाण के विना अनुमानादि प्रमाणों को भी नहीं मानता। **चारवाक शब्द**

का अर्थ-जो बोलने में 'प्रगल्भ' और विशेषार्थ 'वैतण्डिक' होता है। यह **चारवाक का मत संक्षेप से दर्शा दिया।**

आस्तिक और नास्तिक का संवाद

इस के आगे आस्तिक, नास्तिक के संवाद के प्रश्नोत्तर यहां लिखते हैं।

(नास्तिक) ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होता जो कुछ होता है वह कर्म से।

(आस्तिक) जो सब कर्म से होता है तो कर्म किस से होता है? जो कहो कि जीव आदि से होता है तो जिन श्रोत्रदि साधनों से कर्म जीव करता है वे किन से हुए? जो कहो कि अनादिकाल और स्वभाव से होते हैं तो अनादि का छूटना असम्भव होकर तुम्हारे मत में मुक्ति का अभाव होगा। जो कहो कि प्रागभाववत् अनादि सान्त हैं तो विना यत्न के सब कर्म निवृत्त हो जायेंगे। यदि ईश्वर फलप्रदाता न हो तो पाप के फल दुःख को जीव अपनी इच्छा से कभी नहीं भोगेगा। जैसे चोर आदि चोरी का फल दण्ड अपनी इच्छा से नहीं भोगते किन्तु राज्यव्यवस्था से भोगते हैं वैसे ही परमेश्वर के भुगाने से जीव पाप और पुण्य के फलों को भोगते हैं अन्यथा कर्मसंकर हो जायेंगे अन्य के कर्म अन्य को भोगने पड़ेंगे।

(नास्तिक) ईश्वर अक्रिय है क्योंकि जो कर्म करता होता तो कर्म का फल भी भोगना पड़ता। इसलिये जैसे हम केवली प्राप्त मुक्तों को अक्रिय मानते हैं वैसे तुम भी मानो।

(आस्तिक) ईश्वर अक्रिय नहीं किन्तु सक्रिय है। जब चेतन है तो कर्त्ता क्यों नहीं? और जो कर्त्ता है तो वह क्रिया से पृथव्क़ कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो निमित्त से ईश्वर बने तो अनित्य और पराधीन हो जाय क्योंकि ईश्वर बने के प्रथम जीव था पश्चात् किसी निमित्त से ईश्वर बना तो फिर भी जीव हो जायेगा। अपने जीवत्व स्वभाव को कभी नहीं छोड़ सकता क्योंकि अनन्तकाल से जीव है और अनन्तकाल तक रहेगा। इसलिए इस अनादि स्वतःसिद्ध ईश्वर को मानना योग्य है। देखो! जैसे वर्त्तमान समय में जीव पाप पुण्य करता, सुख दुःख भोगता है वैसे ईश्वर कभी नहीं होता। जो ईश्वर क्रियावान् न होता तो इस जगत् को कैसे बना सकता? जो कर्मों को प्रागभाववत् अनादि सान्त मानते हो तो कर्म समवाय सम्बन्ध से नहीं रहेगा। जो समवाय सम्बन्ध से नहीं वह संयोगज होके अनित्य होता है। जो मुक्ति में क्रिया ही न मानते हो तो वे मुक्त जीव ज्ञान वाले होते हैं वा नहीं? जो कहो होते हैं तो अन्तःक्रिया वाले हुए।

क्या मुक्ति में पाषाणवत् जड़ हो जाते; एक ठिकाने पड़े रहते और कुछ भी चेष्टा नहीं करते तो मुक्ति क्या हुई किन्तु अन्धकार और बन्धन में पड़ गये।

(नास्तिक) ईश्वर व्यापक नहीं है जो व्यापक होता तो सब वस्तु चेतन क्यों नहीं होती? और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि की उत्तम, मध्यम, निकृष्ट अवस्था क्यों हुई? क्योंकि सब में ईश्वर एक सा व्याप्त है तो छुटाई-बड़ाई न होनी चाहिये।

(आस्तिक) व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते किन्तु व्याप्य एकदेशी और व्यापक सर्वदेशी होता है। जैसे आकाश सब में व्यापक है और भूगोल और घटपटादि सब व्याप्य एकदेशी हैं। जैसे पृथिवी आकाश एक नहीं वैसे ईश्वर और जगत् एक नहीं। **जैसे सब घट पटादि में आकाश व्यापक है और घटपटादि आकाश नहीं, वैसे परमेश्वर चेतन सब में है और सब चेतन नहीं होता। जैसे आकाश सब में बराबर है पृथ्वी आदि के अवयव बराबर नहीं वैसे परमेश्वर के बराबर कोई नहीं।** जैसे विद्वान्, अविद्वान् और धर्मात्मा, अधर्मात्मा बराबर नहीं होते वैसे विद्यादि सद्गुण और सत्यभाषणादि कर्म सुशीलतादि स्वभाव के न्यूनाधिक होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज बड़े छोटे माने जाते हैं। वर्णों की व्याख्या जैसी 'चतुर्थसमुल्लास' में लिख आये हैं वहाँ देख लो।

(नास्तिक) ईश्वर ने जगत् का अधिपतित्व और जगत् रूप ऐश्वर्य किस कारण स्वीकार किया?

(आस्तिक) ईश्वर ने कभी अधिपतित्व न छोड़ा था; न ग्रहण किया है किन्तु अधिपतित्व और जगत् रूप ऐश्वर्य ईश्वर ही में है। न कभी उस से अलग हो सकता है तो ग्रहण क्या करेगा? क्योंकि अप्राप्त का ग्रहण होता है। व्याप्य से व्यापक और व्यापक से व्याप्य पृथक् कभी नहीं हो सकता। इसलिये सदैव स्वामित्व और अनन्त ऐश्वर्य अनादि काल से ईश्वर में है। इस का ग्रहण और त्याग जीवों में घट सकता है; ईश्वर में नहीं।

(नास्तिक) जो ईश्वर की रचना से सृष्टि होती तो माता, पितादि का क्या काम ?

(आस्तिक) ऐश्वरी सृष्टि का ईश्वर कर्त्ता है; जैवी सृष्टि का नहीं। जो जीवों के कर्त्तव्य कर्म हैं उन को ईश्वर नहीं करता किन्तु जीव ही करता है। जैसे वृक्ष, फल, ओषधि, अन्नादि ईश्वर ने उत्पन्न किया है। उस को लेकर मनुष्य न पीसें, न कूटें, न रोटी आदि पदार्थ बनावें और न खावें तो क्या ईश्वर उस के बदले इन कामों को कभी करेगा ? और जो न करें तो जीव का जीवन भी न हो सके।

इसलिए आदिसृष्टि में जीव के शरीरों और सांचों को बनाना ईश्वराधीन; पश्चात् उन से पुत्रदि की उत्पत्ति करना जीव का कर्त्तव्य काम है।

(नास्तिक) जब परमात्मा शाश्वत, अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप है तो जगत् के प्रपञ्च और दुःख में क्यों पड़ा? आनन्द छोड़ दुःख का ग्रहण ऐसा काम कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करता; ईश्वर ने ऐसा क्यों किया?

(आस्तिक) परमात्मा किसी प्रपञ्च और दुःख में नहीं गिरता, न अपने आनन्द को छोड़ता है क्योंकि प्रपञ्च और दुःख में गिरना जो एकदेशी हो उस का हो सकता है; सर्वदेशी का नहीं। जो अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप परमात्मा जगत् को न बनावे तो अन्य कौन बना सके ? जगत् बनाने का जीव में सामर्थ्य नहीं और जड़ में स्वयं बनने का भी सामर्थ्य नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही जगत् को बनाता और सदा आनन्द में रहता है। जैसे परमात्मा परमाणुओं से सृष्टि करता है वैसे माता पितारूप निमित्तकारण से भी उत्पत्ति का प्रबन्ध नियम उसी ने किया है।

(नास्तिक) ईश्वर मुक्तिरूप सुख को छोड़ जगत् का सृष्टिकरण धारण और प्रलय करने के बखेड़े में क्यों पड़ा ?

(आस्तिक) ईश्वर सदा मुक्त होने से अनन्तस्वरूप गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा है वह इस किञ्चित्मात्र जगत् को बनाता, धरता और प्रलय करता हुआ भी बन्ध में नहीं पड़ता क्योंकि बन्ध और मोक्ष सापेक्षता से है। जैसे मुक्ति की अपेक्षा से बन्ध और बन्ध की अपेक्षा से मुक्ति होती है। जो कभी बद्ध नहीं था वह मुक्त क्योंकर कहा जा सकता है? और जो एकदेशी जीव हैं वे ही बद्ध और मुक्त सदा हुआ करते हैं। अनन्त, सर्वदेशी, सर्वव्यापक ईश्वर बन्धन वा नैमित्तिक मुक्ति के चक्र में कभी नहीं पड़ता। इसलिये वह परमात्मा सदैव मुक्त कहाता है।

(नास्तिक) जीव कर्मों के फल ऐसे ही भोग सकते हैं जैसे भांग पीने के मद को स्वयमेव भोगता है। इस में ईश्वर का काम नहीं।

(आस्तिक) जैसे विना राजा के डाकू, लम्पट, चोरादि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी वा कारागृह में नहीं जाते; न वे जाना चाहते हैं किन्तु राज की न्यायव्यवस्थानुसार बलात्कार से पकड़ाकर यथोचित राजा दण्ड देता है। इसी प्रकार जीव को भी ईश्वर न्यायव्यवस्था से स्व-स्व कर्मानुसार यथायोग्य दण्ड देता है। क्योंकि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों के फल भोगना नहीं चाहता इसलिये अवश्य परमात्मा न्यायाधीश होना चाहिये।

(नास्तिक) जगत् में एक ईश्वर नहीं किन्तु जितने मुक्त जीव हैं वे सब ईश्वर हैं।
(आस्तिक) यह कथन सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि जो प्रथम बद्ध होकर मुक्त हो तो पुनः बन्ध में अवश्य पड़े क्योंकि वे स्वाभाविक सदैव मुक्त नहीं। जब बहुत से ईश्वर हैं तो जैसे जीव अनेक होने से लड़ते भिड़ते फिरते हैं वैसे ईश्वर भी लड़ा भिड़ा करेंगे।
(नास्तिक) हे मूढ़! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं किन्तु जगत् स्वयंसिद्ध है।
(आस्तिक) यह कितनी बड़ी भूल है! भला विना कर्त्ता के कोई कर्म, कर्म के विना कोई कार्य्य जगत् में होता दीखता है! यह ऐसी बात है कि जैसे गेहूं के खेत में स्वयंसिद्ध पिसान, रोटी बन के पेट में चली जाती हो। कपास, सूत, कपड़ा, अंगर्खा, दुपट्टा, धोती, पगड़ी आदि बनके कभी नहीं आते। जब ऐसा नहीं तो ईश्वर कर्त्ता के विना यह विविध जगत् और नाना प्रकार की रचना विशेष कैसे बन सकती? जो हठधर्म से स्वयंसिद्ध जगत् को मानो तो स्वयंसिद्ध उपरोक्त वस्त्रदिकों को कर्त्ता के विना प्रत्यक्ष कर दिखलाओ। जब ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमाणशून्य कथन को कौन बुद्धिमान् मान सकता है?
(नास्तिक) ईश्वर विरक्त है वा मोहित? जो विरक्त है तो जगत् के प्रपञ्च में क्यों पड़ा? जो मोहित है तो जगत् के बनाने को समर्थ नहीं हो सकेगा।
(आस्तिक) परमेश्वर में वैराग्य वा मोह कभी नहीं घट सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है वह किस को छोड़े और किस को ग्रहण करे। ईश्वर से उत्तम वा उस को अप्राप्त कोई पदार्थ नहीं है इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता। वैराग्य और मोह का होना जीव में घटता है; ईश्वर में नहीं।
(नास्तिक) जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता और जीवों के कर्मों के फलों का दाता मानोगे तो ईश्वर प्रपञ्ची होकर दुःखी हो जायेगा।
(आस्तिक) भला! अनेकविध कर्मों का कर्त्ता और प्राणियों को फलों का दाता धार्मिक न्यायाधीश विद्वान् कर्मों में नहीं फंसता न प्रपञ्ची होता है तो परमेश्वर अनन्त सामर्थ्य वाला प्रपञ्ची और दुःखी क्योंकर होगा?

जगत् का कारण अनादि है क्योंकि वे परमाणु आदि तत्त्वस्वरूप अकर्तृक हैं परन्तु उन में नियमपूर्वक बनने वा बिगड़ने का सामर्थ्य कुछ भी नहीं। क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य किसी का नाम है और स्वभाव से पृथक़्-पृथक़् रूप और जड़ हैं वे अपने आप यथायोग्य नहीं बन सकते, इसलिये इन का बनाने

वाला चेतन अवश्य है और वह बनाने वाला ज्ञानस्वरूप है। देखो! पृथिवी सूर्यादि सब लोकों को नियम में रखना अनन्त, अनादि, चेतन परमात्मा का काम है। जिन में संयोग रचना विशेष दीखता है वह स्थूल जगत् अनादि कभी नहीं हो सकता। जो कार्य जगत् को नित्य मानोगे तो उस का कारण कोई न होगा किन्तु वही कार्यकारणरूप हो जायगा। जो ऐसा कहोगे तो अपना कार्य्य और कारण आप ही होने से अन्योन्याश्रय और आत्माश्रय दोष आवेगा। जैसे अपने कन्धे पर आप चढ़ना और अपना पिता पुत्र आप नहीं हो सकता। इसलिये जगत् का कर्त्ता अवश्य ही मानना है।

(प्रश्न) जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानते हो तो ईश्वर का कर्त्ता कौन है?

(उत्तर) कर्त्ता का कर्त्ता और कारण का कारण कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रथम कर्त्ता और कारण के होने से ही कार्य्य होता है। जिस में संयोग वियोग नहीं होता जो प्रथम संयोग वियोग का कारण है उस का कर्त्ता वा कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता। इस की विशेष व्याख्या आठवें समुल्लास में सृष्टि की व्याख्या में लिखी है; देख लेना।

(प्रश्न) जैसे धान्य का छिलका उतारने वा अग्नि के संयोग होने से वह बीज पुनः नहीं उगता इसी प्रकार मुक्ति में गया हुआ जीव पुनः जन्ममरणरूप संसार में नहीं आता।

(उत्तर) जीव और कर्म का सम्बन्ध छिलके और बीज के समान नहीं है किन्तु इन का समवाय सम्बन्ध है। इस से अनादि काल से जीव और उस में कर्म और कर्तृत्वशक्ति का सम्बन्ध है। जो उस में कर्म करने की शक्ति का भी अभाव मानोगे तो सब जीव पाषाणवत् हो जायेंगे और मुक्ति को भोगने का ही सामर्थ्य नहीं रहेगा। जैसे अनादि काल का कर्म-बन्धन छूट कर जीव मुक्त होता है तो तुम्हारी नित्य मुक्ति से भी छूट कर बन्धन में पड़ेगा। क्योंकि जैसे कर्मरूप मुक्ति के साधनों से भी छूट कर जीव का मुक्त होना मानते हो वैसे ही नित्य मुक्ति से भी छूट के बन्धन में पड़ेगा। साधनों से सिद्ध हुआ पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता और जो साधन सिद्ध के बिना मुक्ति मानोगे तो कर्मों के बिना ही बन्ध प्राप्त हो सकेगा। जैसे वस्त्रें में मैल लगता और धोने से छूट जाता है पुनः मैल लग जाता है। वैसे मिथ्यात्वादि हेतुओं से राग, द्वेषादि के आश्रय से जीव को कर्मरूप मल लगता है और जो सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र से निर्मल होता है। और मल लगने के कारणों से मलों का लगना मानते हो तो मुक्त जीव संसारी और संसारी जीव का मुक्त होना अवश्य मानना पड़ेगा। क्योंकि जैसे निमित्तों से

मलिनता छूटती है वैसे निमित्तों से मलिनता लग भी जायेगी। इसलिये जीव को बन्ध और मुक्ति प्रवाहरूप से अनादि मानो; अनादि अनन्तता से नहीं।

(प्रश्न) जीव निर्मल कभी नहीं था किन्तु मलसहित है।

(उत्तर) जो कभी निर्मल नहीं था तो निर्मल भी कभी नहीं हो सकेगा। जैसे शुद्ध वस्त्र में पीछे से लगे हुए मैल को धोने से छुड़ा देते हैं। उस के स्वाभाविक श्वेत वर्ण को नहीं छुड़ा सकते। मैल फिर भी वस्त्र में लग जाता है। इसी प्रकार मुक्ति में भी लगेगा।

(प्रश्न) जीव पूर्वोपार्जित कर्म ही से स्वयं शरीर धारण कर लेता है। ईश्वर का मानना व्यर्थ है।

(उत्तर) जो केवल कर्म ही शरीर धारण में निमित्त हो; ईश्वर कारण न हो तो वह जीव बुरा जन्म कि जहां बहुत दुःख हो उस को धारण कभी न करे किन्तु सदा अच्छे-अच्छे जन्म धारण किया करे। जो कहो कि कर्म प्रतिबन्धक है तो भी जैसे चोर आप से आके बन्दीगृह में नहीं जाता और स्वयं फांसी भी नहीं खाता किन्तु राजा देता है। इसी प्रकार जीव को शरीर धारण कराने और उस के कर्मानुसार फल देने वाले परमेश्वर को तुम भी मानो।

(प्रश्न) मद (नशा) के समान कर्मफल स्वयं प्राप्त होता है। फल देने में दूसरे की आवश्यकता नहीं।

(उत्तर) जो ऐसा हो तो जैसे मदपान करने वालों को मद कम चढ़ता; अनभ्यासी को बहुत चढ़ता है। वैसे नित्य बहुत पाप, पुण्य करने वालों को न्यून और कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा पाप, पुण्य करने वालों को अधिक फल होना चाहिए और छोटे कर्म वालों को अधिक फल होवे।

(प्रश्न) जिस का जैसा स्वभाव होता है उस को वैसा ही फल हुआ करता है।

(उत्तर) जो स्वभाव से है तो उस का छूटना वा मिलना नहीं हो सकता। हां! जैसे शुद्ध वस्त्र में निमित्तों से मल लगता है उस के छुड़ाने के निमित्तों से छूट भी जाता है; ऐसा मानना ठीक है।

(प्रश्न) संयोग के विना कर्म परिणाम को प्राप्त नहीं होता। जैसे दूध और खटाई के संयोग के विना दही नहीं होता। इसी प्रकार जीव और कर्म के योग से कर्म का परिणाम होता है।

(उत्तर) जैसे दूध और खटाई को मिलाने वाला तीसरा होता है वैसे ही जीवों को कर्मों के फल के साथ मिलाने वाला तीसरा ईश्वर होना चाहिये। क्योंकि जड़ पदार्थ स्वयं नियम से संयुक्त नहीं होते और जीव भी अल्पज्ञ होने से स्वयम्

अपने कर्मफल को प्राप्त नहीं हो सकते। इस से यह सिद्ध हुआ कि विना ईश्वरस्थापित सृष्टिक्रम के कर्मफलव्यवस्था नहीं हो सकती।
(प्रश्न) जो कर्म से मुक्त होता है वही ईश्वर कहाता है।
(उत्तर) जब अनादि काल से जीव के साथ कर्म लगे हैं उन से जीव मुक्त कभी नहीं हो सकेंगे।
(प्रश्न) कर्म का बन्ध सादि है।
(उत्तर) जो सादि है तो कर्म का योग अनादि नहीं और संयोग के आदि में जीव निष्कर्म होगा और जो निष्कर्म को कर्म लग गया तो मुक्तों को भी लग जायगा और कर्म कर्त्ता का समवाय अर्थात् नित्य सम्बन्ध होता है यह कभी नहीं छूटता, इसलिये जैसा ९वें समुल्लास में लिख आये हैं वैसा ही मानना ठीक है। जीव चाहै जैसा अपना ज्ञान और सामर्थ्य बढ़ावे तो भी उस में परिमित ज्ञान और ससीम सामर्थ्य रहेगा। ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकता। हां! जितना सामर्थ्य बढ़ना उचित है उतना योग से बढ़ा सकता है।

जैसे एक हण्डे में चुड़ते चावलों में से एक चावल की परीक्षा करने से कच्चे वा पक्के हैं सब चावल विदित हो जाते हैं। ऐसे ही इस थोड़े से लेख से सज्जन लोग बहुत सी बातें समभफ़ लेंगे। बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं। क्योंकि दिग्दर्शनवत् सम्पूर्ण आशय को बुद्धिमान् लोग जान ही लेते हैं।

इसके आगे ईसाइयों के मत के विषय में लिखा जायेगा।
इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते नास्तिकमतान्तर्गतचार्वाक
मतखण्डनमण्डनविषये
द्वादश समुल्लास सम्पूर्ण ।।१२।।

अनुभूमिका (३)

जो यह बाइबल का मत है कि वह केवल ईसाइयों का है सो नहीं किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं। जो यहां तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत के विषय में लिखा है इसका यही अभिप्राय है कि आजकल बाइबल के मत में ईसाई मुख्य हो रहे हैं और यहूदी आदि गौण हैं। मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण हो जाता है, इससे यहूदियों का भी ग्रहण समभफ़ लीजिये। इनका जो विषय यहां लिखा है सो केवल बाइबल में से कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तक को अपने धर्म का मूल कारण समझते हैं। इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत से हुए हैं जो कि इनके मत में बड़े-बड़े पादरी हैं उन्हीं ने किये हैं। उनमें से देवनागरी व संस्कृत भाषान्तर देख कर मुझको बाइबल में बहुत सी शंका हुई हैं। उनमें से कुछ थोड़ी सी इस १३ तेरहवें समुल्लास में सब के विचारार्थ लिखी हैं। यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है न कि किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ ही। इसका अभिप्राय उत्तर लेख में सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है? इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्र को देखना, सुनना, लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी, प्रतिपक्षी होके विचार कर ईसाई मत का आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे। इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्मविषयक ज्ञान बढ़ कर यथायोग्य सत्याऽसत्य मत और कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्य कर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्त्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा। सब मनुष्यों को उचित है कि सब के मतविषयक पुस्तकों को देख समझ कर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें; नहीं तो सुना करें। क्योंकि जैसे पढ़ने से पण्डित होता है वैसे सुनने से बहुश्रुत होता है। यदि श्रोता दूसरे को नहीं समझा सके तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है। जो कोई पक्षपातरूप यानारूढ़ होके देखते हैं उनको न अपने और न पराये गुण, दोष विदित हो सकते हैं। **मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्याऽसत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जितना अपना पठित वा श्रुत है उतना निश्चय कर सकता है।** यदि एक मत वाले दूसरे मतवाले के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता, किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़े में गिर जाते हैं। ऐसा न हो इसलिये इस ग्रन्थ में, प्रचरित सब मतों का विषय थोड़ा-थोड़ा लिखा है। इतने ही से शेष विषयों में अनुमान

कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा भफूठे? जो-जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सब में एक से हैं। भफ़गड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो भी कुछ थोड़ा सा विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्याऽसत्य निश्चय के लिये वाद प्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाये। अब मैं इस १३वें समुल्लास में ईसाई मत विषयक थोड़ा सा लिख कर सब के सम्मुख स्थापित करता हूं; विचारिये कि कैसा है।

अलमतिलेखेन विचक्षणवरेषु।

अथ त्रयोदशसमुल्लासारम्भः

अथ कृश्चीनमतविषयं व्याख्यास्यामः

अब इसके आगे ईसाइयों के मत विषय में लिखते हैं जिससे सब को विदित हो जाय कि इनका मत निर्दोष और इनकी बाइबल पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं? प्रथम बाइबल के तौरेत का विषय लिखा जाता है-

१-आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा।। और पृथिवी बेडौल और सूनी थी और गहिराव पर अन्धियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था।। -तौरेत उत्पत्ति पुस्तक पर्व १। आय० १।२ ।।

(समीक्षक) आरम्भ किसको कहते हो?

(ईसाई) सृष्टि के प्रथमोत्पत्ति को।

(समीक्षक) क्या यही सृष्टि प्रथम हुई; इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी?

(ईसाई) हम नहीं जानते हुई थी वा नहीं; ईश्वर जाने।

(समीक्षक) जब नहीं जानते तो इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया कि जिससे सन्देह का निवारण नहीं हो सकता और इसी के भरोसे लोगों को उपदेश कर इस सन्देह के भरे हुए मत में क्यों फंसाते हो? और निःसन्देह सर्वशंकानिवारक वेदमत को स्वीकार क्यों नहीं करते? जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते तो ईश्वर को कैसे जानते होगे? आकाश किसको मानते हो?

(ईसाई) पोल और ऊपर को।

(समीक्षक) पोल की उत्पत्ति किस प्रकार हुई क्योंकि यह विभु पदार्थ और अति सूक्ष्म है और ऊपर नीचे एक सा है। जब आकाश नहीं सृजा था तब पोल और अवकाश था वा नहीं? जो नहीं था तो ईश्वर, जगत् का कारण और जीव कहां रहते थे? विना अवकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता इसलिये तुम्हारी बाइबल का कथन युक्त नहीं। ईश्वर बेडौल, उसका ज्ञान कर्म बेडौल होता है वा सब डौल वाला?

(ईसाई) डौल वाला होता है।

(समीक्षक) तो यहां ईश्वर की बनाई पृथिवी बेडौल थी ऐसा क्यों लिखा?

(ईसाई) बेडौल का अर्थ यह है कि ऊंची नीची थी; बराबर नहीं थी।

(समीक्षक) फिर बराबर किसने की? और क्या अब भी ऊंची नीची नहीं है? इसलिये ईश्वर का काम बेडौल नहीं हो सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ है, उसके काम में न भूल, न चूक कभी हो सकती है। और बाइबल में ईश्वर की सृष्टि बेडौल

लिखी इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता। प्रथम ईश्वर का आत्मा क्या पदार्थ है?

(ईसाई) चेतन।

(समीक्षक) वह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी।

(ईसाई) निराकार, चेतन और व्यापक है परन्तु किसी एक सनाई पर्वत, चौथा आसमान आदि स्थानों में विशेष करके रहता है।

(समीक्षक) जो निराकार है तो उसको किसने देखा? और व्यापक का जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता। भला! जब ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था तब ईश्वर कहां था? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा अथवा अपने कुछ आत्मा के एक टुकड़े को जल पर डुलाया होगा। जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। जो विभु नहीं तो जगत् की रचना, धारण, पालन और जीवों के कर्मों की व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता क्योंकि जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशी है उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं, जो ऐसा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त गुण, कर्म, स्वभावयुक्त सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अनादि, अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा है। उसी को मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।।१।।

२-और ईश्वर ने कहा कि उजियाला होवे और उजियाला हो गया।। और ईश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है।। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० १। आ० ३। ४ ।।

(समीक्षक) क्या ईश्वर की बात जड़रूप उजियाले ने सुन ली? जो सुनी हो तो इस समय भी सूर्य्य और दीप अग्नि का प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता? प्रकाश जड़ होता है वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता। क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है? पहले नहीं जानता था? जो जानता होता तो देख कर अच्छा क्यों कहता? जो नहीं जानता था तो वह ईश्वर ही नहीं। इसीलिए तुम्हारी बाइबल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है।।२।।

३-और ईश्वर ने कहा कि पानियों के मध्य में आकाश होवे और पानियों को पानियों से विभाग करे।। तब ईश्वर ने आकाश को बनाया और आकाश के नीचे के पानियों को आकाश के ऊपर के पानियों से विभाग किया और ऐसा हो गया।। और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और सांझ और बिहान दूसरा दिन हुआ।। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० १। आ० ६। ७। ८।।

(समीक्षक) क्या आकाश और जल ने भी ईश्वर की बात सुन ली? और जो जल के बीच में आकाश न होता तो जल रहता ही कहां? प्रथम आयत में आकाश को सृजा था पुनः आकाश का बनाना व्यर्थ हुआ। जो आकाश को स्वर्ग कहा तो वह सर्वव्यापक है इसलिये सर्वत्र स्वर्ग हुआ फिर ऊपर को स्वर्ग है यह कहना व्यर्थ है। जब सूर्य्य उत्पन्न ही नहीं हुआ था तो पुनः दिन और रात कहां से हो गई? ऐसी ही असम्भव बातें आगे की आयतों में भरी हैं।।३।।

४-तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें।। तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उन्हें नर और नारी बनाया।। और ईश्वर ने उन्हें आशीष दिया।। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० १। आ० २६। २७। २८ ।।

(समीक्षक) यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं बना और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही की उत्पत्ति वाला किया पुनः वह अनित्य क्यों नहीं? और आदम को उत्पन्न कहां से किया?

(ईसाई) मट्टी से बनाया।

(समीक्षक) मट्टी कहां से बनाई?

(ईसाई) अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से।

(समीक्षक) ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है वा नवीन?

(ईसाई) अनादि है।

(समीक्षक) जब अनादि है तो जगत् का कारण सनातन हुआ। फिर अभाव से भाव क्यों मानते हो?

(ईसाई) सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना कोई वस्तु नहीं था।

(समीक्षक) जो नहीं था तो यह जगत् कहां से बना? और ईश्वर का सामर्थ्य द्रव्य है वा गुण? जो द्रव्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था और जो गुण है तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता जैसे रूप से अग्नि और रस से जल नहीं बन सकता। और जो ईश्वर से जगत् बना होता तो ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव वाला होता। उसके गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से नहीं बना किन्तु जगत् के कारण अर्थात् परमाणु आदि नाम वाले जड़ से बना है। जैसी कि जगत् की उत्पत्ति वेदादि शास्त्रें में लिखी है वैसी ही मान लो जिससे ईश्वर जगत् को बनाता है। जो आदम के भीतर का स्वरूप जीव

और बाहर का मनुष्य के सदृश है तो वैसा ईश्वर का स्वरूप क्यों नहीं? क्योंकि जब आदम ईश्वर के सदृश बना तो ईश्वर आदम के सदृश अवश्य होना चाहिये।।४।।

५-तब परमेश्वर ईश्वर ने भूमि की धूल से आदम को बनाया और उसके नथुनों में जीवन का श्वास फूंका और आदम जीवता प्राण हुआ।। और परमेश्वर ईश्वर ने अदन में पूर्व की ओर एक बारी लगाई और उस आदम को जिसे उसने बनाया था उसमें रक्खा।। और उस बारी के मध्य में जीवन का पेड़ और भले बुरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगाया।। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० २। आ० ७। ८। ९ ।।

(समीक्षक) जब ईश्वर ने अदन में बाड़ी बनाकर उसमें आदम को रक्खा तब ईश्वर नहीं जानता था कि इसको पुनः यहाँ से निकालना पड़ेगा? और जब ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो ईश्वर का स्वरूप नहीं हुआ, और जो है तो ईश्वर भी धूली से बना होगा? जब उसके नथुनों में ईश्वर ने श्वास फूंका तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था वा भिन्न? जो भिन्न था तो आदम ईश्वर के स्वरूप में नहीं बना। जो एक है तो आदम और ईश्वर एक से हुए। और जो एक से हैं तो आदम के सदृश जन्म, मरण, वृद्धि, क्षय, क्षुधा, तृषा आदि दोष ईश्वर में आये, फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है? इसलिए यह तौरेत की बात ठीक नहीं विदित होती और यह पुस्तक भी ईश्वरकृत नहीं है।।५।।

६-और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया। तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और संति मांस भर दिया।। और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उस पसली से एक नारी बनाई और उसे आदम के पास लाया। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० २।। आ० २१। २२ ।।

(समीक्षक) जो ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो उसकी स्त्री को धूली से क्यों नहीं बनाया? और जो नारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया? और जैसे नर से निकलने से नारी नाम हुआ तो नारी से नर नाम भी होना चाहिए। और उनमें परस्पर प्रेम भी रहै, जैसे स्त्री के साथ पुरुष प्रेम करै वैसे पुरुष के साथ स्त्री भी प्रेम करे। देखो विद्वान् लोगो! ईश्वर की कैसी पदार्थविद्या अर्थात् 'फिलासफी' चलकती है! जो आदम की एक पसली निकाल कर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती? और स्त्री के शरीर में एक पसली होनी चाहिये क्योंकि वह एक पसली से बनी है। क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था? इसलिए यह बाइबल का सृष्टिक्रम सृष्टिविद्या से विरुद्ध है।।६।।

७-अब सर्प्प भूमि के हर एक पशु से जिसे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था; धूर्त था। और उसने स्त्री से कहा, क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि तुम इस बारी के हर एक पेड़ से फल न खाना।। और स्त्री ने सर्प्प से कहा कि हम तो इस बारी के पेड़ों का फल खाते हैं।। परन्तु उस पेड़ का फल जो बारी के बीच में है ईश्वर ने कहा है कि तुम उससे न खाना और न छूना; न हो कि मर जाओ।। तब सर्प्प ने स्त्री से कहा कि तुम निश्चय न मरोगे।। क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उस्से खाओगे तुम्हारी आँखें खुल जायेंगी और तुम भले और बुरे की पहिचान में ईश्वर के समान हो जाओगे।। और जब स्त्री ने देखा वह पेड़ खाने में सुस्वाद और दृष्टि में सुन्दर और बुद्धि देने के योग्य है तो उसके फल में से लिया और खाया और अपने पति को भी दिया और उसने खाया।। तब उन दोनों की आखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने गूलर के पत्तों को मिला के सिया और अपने लिये ओढ़ना बनाया। तब परमेश्वर ईश्वर ने सर्प्प से कहा कि जो तू ने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हर एक वन के पशु से अधिक स्रापित होगा। तू अपने पेट के बल चलेगा और अपने जीवन भर धूल खाया करेगा।। और मैं तुझ में और स्त्री में और तेरे वंश और उसके वंश में वैर डालूंगा।। वह तेरे सिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को काटेगा।। और उसने स्त्री को कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्भ- धारण को बहुत बढ़ाऊंगा। तू पीड़ा से बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी और वह तुझ पर प्रभुता करेगा।। और उसने आदम से कहा कि तूने जो अपनी पत्नी का शब्द माना है और जिस पेड़ का फल मैंने तुझे खाने से वर्जा था तूने खाया है। इस कारण भूमि तेरे लिये स्रापित है। अपने जीवन भर तू उस्से पीड़ा के साथ खायेगा।। और वह कांटे और ऊंटकटारे तेरे लिये उगायेगी और तू खेत का सागपात खायेगा।।

-तौरेत उत्पत्ति० पर्व० ३। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७। १४। १५। १६। १७। १८।।

(समीक्षक) जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस धूर्त सर्प्प अर्थात् शैतान को क्यों बनाता? और जो बनाया तो वही ईश्वर अपराध का भागी है क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता? और वह पूर्व जन्म नहीं मानता तो विना अपराध उसको पापी क्यों बनाया? और सच पूछो तो वह सर्प्प नहीं था किन्तु मनुष्य था। क्योंकि जो मनुष्य न होता तो मनुष्य की भाषा क्योंकर बोल सकता? और जो आप झूठा और दूसरे को झूठ में चलावे उसको शैतान कहना चाहिये सो यहां शैतान सत्यवादी और इससे उसने उस स्त्री को नहीं बहकाया किन्तु सच कहा और ईश्वर ने आदम और हव्वा से झूठ

कहा कि इसके खाने से तुम मर जाओगे। जब वह पेड़ ज्ञानदाता और अमर करने वाला था तो उसके फल खाने से क्यों वर्जा? और जो वर्जा तो वह ईश्वर झूठा और बहकाने वाला ठहरा। क्योंकि उस वृक्ष के फल मनुष्यों को ज्ञान और सुखकारक थे; अज्ञान और मृत्युकारक नहीं। जब ईश्वर ने फल खाने से वर्जा तो उस वृक्ष की उत्पत्ति किसलिये की थी? जो अपने लिए की तो क्या आप अज्ञानी और मृत्युधर्मवाला था? और दूसरों के लिये बनाया तो फल खाने में अपराध कुछ भी न हुआ। और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखने में नहीं आता। क्या ईश्वर ने उसका बीज भी नष्ट कर दिया? ऐसी बातों से मनुष्य छली कपटी होता है तो ईश्वर वैसा क्यों नहीं हुआ? क्योंकि जो कोई दूसरे से छल कपट करेगा वह छली कपटी क्यों न होगा? और जो इन तीनों को शाप दिया वह विना अपराध से है। पुनः वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ और यह शाप ईश्वर को होना चाहिये क्योंकि वह झूठ बोला और उनको बहकाया। यह 'फिलासफी' देखो! क्या विना पीड़ा के गर्भधारण और बालक का जन्म हो सकता था? और विना श्रम के कोई अपनी जीविका कर सकता है? क्या प्रथम कांटे आदि के वृक्ष न थे? और जब शाक पात खाना सब मनुष्यों को ईश्वर के कहने से उचित हुआ तो जो उत्तर में मांस खाना बाइबल में लिखा वह झूठा क्यों नहीं? और जो वह सच्चा हो तो यह झूठा है। जब आदम का कुछ भी अपराध सिद्ध नहीं होता तो ईसाई लोग सब मनुष्यों को आदम के अपराध से सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते हैं? भला ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानों के मानने योग्य हो सकता है? ।।७।।

८-और परमेश्वर ईश्वर ने कहा कि देखो! आदम भले बुरे के जानने में हम में से एक की नाईं हुआ और अब ऐसा न होवे कि वह अपना हाथ डाले और जीवन के पेड़ में से भी लेकर खावे और अमर हो जाय।। सो उसने आदम को निकाल दिया और अदन की बारी की पूर्व ओर करोबीम ठहराये और चमकते हुए खड्ग को जो चारों ओर घूमता था; जिसते जीवन के पेड़ के मार्ग की रखवाली करें।।
-तौरेत उत्पत्ति पर्व० ३। आ० २२। २४।।

(समीक्षक) भला! ईश्वर को ऐसी ईर्ष्या और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञान में हमारे तुल्य हुआ? क्या यह बुरी बात हुई? यह शंका ही क्यों पड़ी? क्योंकि ईश्वर के तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता। परन्तु इस लेख से यह भी सिद्ध हो सकता है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु मनुष्य विशेष था। बाइबल में जहां कहीं ईश्वर की बात आती है वहां मनुष्य के तुल्य ही लिखी आती है। अब देखो! आदम के ज्ञान की बढ़ती में ईश्वर कितना दुःखी हुआ और फिर अमर वृक्ष के फल खाने में

कितनी ईर्ष्या की। और प्रथम जब उसको बारी में रक्खा तब उसको भविष्यत् का ज्ञान नहीं था कि इसको पुनः निकालना पड़ेगा, इसलिये ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था। और चमकते खड्ग का पहिरा रक्खा यह भी मनुष्य का काम है; ईश्वर का नहीं।।८।।

९-और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि काइन भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिये भेंट लाया।। और हाबिल भी अपनी झुंड में से पहिलौठी और मोटी-मोटी भेड़ लाया और परमेश्वर ने हाबिल का और उसकी भेंट का आदर किया।। परन्तु काबिल का और उसकी भेंट का आदर न किया इसलिये काबिल अति कुपित हुआ और अपना मुंह फुलाया।। तब परमेश्वर ने काबिल से कहा कि तू क्यों क्रुद्ध है और तेरा मुंह क्यों फूल गया।।

-तौरेत उत्पत्ति पर्व० ४। आ० ३। ४। ५। ६।।

(समीक्षक) यदि ईश्वर मांसाहारी न होता तो भेड़ की भेंट और हाबिल का सत्कार और काइन का तथा उसकी भेंट का तिरस्कार क्यों करता? और ऐसा झगड़ा लगाने और हाबिल के मृत्यु का कारण भी ईश्वर ही हुआ और जैसे आपस में मनुष्य लोग एक दूसरे से बातें करते हैं वैसी ही ईसाइयों के ईश्वर की बातें हैं। बगीचे में आना जाना उसका बनाना भी मनुष्यों का कर्म है। इससे विदित होता है कि यह बाइबल मनुष्यों की बनाई है; ईश्वर की नहीं।।९।।

१०-जब परमेश्वर ने काबिल से कहा तेरा भाई हाबिल कहां है और वह बोला मैं नहीं जानता। क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ। तब उसने कहा तूने क्या किया? तेरे भाई के लोहू का शब्द भूमि से मुझे पुकारता है।। और अब तू पृथिवी से स्रापित है। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० ४। आ० ९। १०। ११।।

(समीक्षक) क्या ईश्वर काइन से पूछे विना हाबिल का हाल नहीं जानता था और लोहू का शब्द भूमि से कभी किसी को पुकार सकता है? ये सब बातें अविद्वानों की हैं, इसीलिये यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वान् का बनाया हो सकता है।।१०।।

११-और हनूक मतूसिलह की उत्पत्ति के पीछे तीन सौ वर्ष लों ईश्वर के साथ-साथ चलता था।। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० ५। आ० २२।।

(समीक्षक) भला! ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य न होता तो हनूक के साथ-साथ क्यों चलता? इससे जो वेदोक्त निराकार व्यापक ईश्वर है उसी को ईसाई लोग मानें तो उनका कल्याण होवे।।११।।

१२-और यों हुआ कि जब आदमी पृथिवी पर बढ़ने लगे और उनसे बेटियां उत्पन्न हुईं।। तो ईश्वर के पुत्रें ने आदम की पुत्रियों को देखा कि वे सुन्दरी हैं

और उनमें से जिन्हें उन्होंने चाहा उन्हें व्याहा।। और उन दिनों में पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वर के पुत्र आदम की पुत्रियों से मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए जो बलवान् हुए जो आगे से नामी थे।। और ईश्वर ने देखा कि आदम की दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है।। तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर पछताया और उसे अति शोक हुआ।। तब परमेश्वर ने कहा कि आदमी को जिसे मैंने उत्पन्न किया; आदमी से लेके पशुन लों और रेंगवैयों को और आकाश के पक्षियों को पृथिवी पर से नष्ट करूंगा क्योंकि उन्हें बनाने से मैं पछताता हूँ।।
-तौन पर्व० ६। आ० १। २। ३। ४। ५। ६।।
(समीक्षक) ईसाइयों से पूछना चाहिये कि ईश्वर के बेटे कौन हैं? और ईश्वर की स्त्री, सास, श्वसुर, साला, और सम्बन्धी कौन हैं? क्योंकि अब तो आदम की बेटियों के साथ विवाह होने से ईश्वर उनका सम्बन्धी हुआ और जो उनसे उत्पन्न होते हैं वे पुत्र और प्रपौत्र हुए। क्या ऐसी बात ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की हो सकती है? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जंगली मनुष्यों ने यह पुस्तक बनाया है। वह ईश्वर ही नहीं जो सर्वज्ञ न हो; न भविष्यत् की बात जाने; वह जीव है। क्या जब सृष्टि की थी तब आगे मनुष्य दुष्ट होंगे ऐसा नहीं जानता था? और पछताना अति शोकादि होना भूल से काम करके पीछे पश्चात्ताप करना आदि
ईसाइयों के ईश्वर में घट सकता है; वेदोक्त ईश्वर में नहीं। और इससे यह भी सिद्ध हो सकता है कि ईसाइयों का ईश्वर पूर्ण विद्वान् योगी भी नहीं था, नहीं तो शान्ति और विज्ञान से अति शोकादि से पृथक़ हो सकता था। भला पशु पक्षी भी दुष्ट हो गये! यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता? इसलिये न यह ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है। जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दुःख, शोकादि से रहित 'सच्चिदानन्दस्वरूप' है उसको ईसाई लोग मानते वा अब भी मानें तो अपने मनुष्यजन्म को सफल कर सकें।।१२।।
१३-उस नाव की लम्बाई तीन सौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊँचाई तीस हाथ की होवे।। तू नाव में जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटों की पत्नियां तेरे साथ।। और सारे शरीरों में से जीवता जन्तु दो-दो अपने साथ नाव में लेना जिसतें वे तेरे साथ जीते रहें वे नर और नारी होवें।। पंछी में से उसके भांति-भांति के और ढोर में से उसके भांति-भांति के और पृथिवी के

हर एक रेंगवैये में से भाँति-भाँति के हर एक में से दो-दो तुभफ़ पास आवें जिसते जीते रहें।। और तू अपने लिये खाने को सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर वह तुम्हारे और उनके लिये भोजन होगा।। सो ईश्वर की सारी आज्ञा के समान नूह ने किया।।
-तौरेत उत्पत्ति पर्व० ६। आ० १५। १८। १९। २०। २१। २२।।
(समीक्षक) भला कोई भी विद्वान् ऐसी विद्या से विरुद्ध असम्भव बात के वक्ता को ईश्वर मान सकता है? क्योंकि इतनी बड़ी चौड़ी ऊंची नाव में हाथी, हथनी, ऊंट, ऊंटनी आदि क्रोड़ों जन्तु और उनके खाने पीने की चीजें वे सब कुटुम्ब के भी समा सकते हैं? यह इसीलिये मनुष्यकृत पुस्तक है। जिसने यह लेख किया है वह विद्वान् भी नहीं था।।१३।।
१४-और नूह ने परमेश्वर के लिए एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हर एक पवित्र पंछियों में से लिये और होम की भेंट उस वेदी पर चढ़ाई।। और परमेश्वर ने सुगन्ध सूंघा और परमेश्वर ने अपने मन में कहा कि आदमी के लिये मैं पृथिवी को फिर कभी स्राप न दूँगा इस कारण कि आदमी के मन की भावना उसकी लड़काई से बुरी है और जिस रीति से मैंने सारे जीवधारियों को मारा फिर कभी न मारूंगा।। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० ८। आ० २०। २१ ।।
(समीक्षक) वेदी के बनाने, होम करने के लेख से यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदों से बाइबल में गई हैं। क्या परमेश्वर के नाक भी है कि जिससे सुगन्ध सूँघा? क्या यह ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् अल्पज्ञ नहीं है कि कभी स्राप देता है और कभी पछताता है। कभी कहता है स्राप न दूंगा। पहले दिया था और फिर भी देगा। प्रथम सब को मार डाला और अब कहता है कि कभी न मारूंगा!!! ये बातें सब लड़केपन की हैं, ईश्वर की नहीं, और न किसी विद्वान् की क्योंकि विद्वान् की भी बात और प्रतिज्ञा स्थिर होती है।।१४।।
१५-और ईश्वर ने नूह को और उसके बेटों को आशीष दिया और उन्हें कहा कि हर एक जीता चलता जन्तु तुम्हारे भोजन के लिये होगा।। मैंने हरी तरकारी के समान सारी वस्तु तुम्हें दिईं केवल मांस उनके जीव अर्थात् उसके लोहू समेत मत खाना।। -तौरेत उत्पत्ति पर्व० ९। आ० १। २। ३। ४।।
(समीक्षक) क्या एक को प्राणकष्ट देकर दूसरों को आनन्द कराने से दयाहीन ईसाइयों का ईश्वर नहीं है? जो माता पिता एक लड़के को मरवा कर
दूसरे को खिलावें तो महापापी नहीं हों? इसी प्रकार यह बात है क्योंकि ईश्वर के लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं। ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईवत् काम

करता है और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाये हैं। इसलिये ईसाइयों का ईश्वर निर्दय होने से पापी क्यों नहीं।।१५।।

१६-और सारी पृथिवी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी।। फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी चोटी स्वर्ग लों पहुंचे अपने लिए बनावें और अपना नाम करें। न हो कि हम सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न हो जायें।। तब परमेश्वर उस नगर और उस गुम्मट को जिसे आदम के सन्तान बनाते थे; देखने को उतरा।। तब परमेश्वर ने कहा कि देखो! ये लोग एक ही हैं और उन सब की एक ही बोली है। अब वे ऐसा-ऐसा कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन लगावेंगे उससे अलग न किये जायेंगे।। आओ हम उतरें और वहां उनकी भाषा को गड़बड़ावें जिसते एक दूसरे की बोली न समझें।। तब परमेश्वर ने उन्हें वहां से सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न किया और वे उस नगर के बनाने से अलग रहे।। -तौन उ० पर्व० ११। आ० १। ४। ५। ६। ७। ८।।

(समीक्षक) जब सारी पृथिवी पर एक भाषा और बोली होगी उस समय सब मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा परन्तु क्या किया जाय, यह ईसाइयों के ईर्ष्यक ईश्वर ने सबकी भाषा गड़बड़ा के सब का सत्यानाश किया। उसने यह बड़ा अपराध किया। क्या यह शैतान के काम से भी बुरा काम नहीं है? और इससे यह भी विदित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सनाई पहाड़ आदि पर रहता था और जीवों की उन्नति भी नहीं चाहता था। यह विना एक अविद्वान् के ईश्वर की बात और यह ईश्वरोक्त पुस्तक क्यों कर हो सकता है? ।।१६।।

१७-तब उसने अपनी पत्नी सरी से कहा कि देख मैं जानता हूं तू देखने में सुन्दर स्त्री है।। इसलिये यों होगा कि जब मिस्री तुझे देखें तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और मुझे मार डालेंगे परन्तु तुझे जीती रखेंगे।। तू कहियो कि मैं उसकी बहिन हूं जिसते तेरे कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतु से जीता रहै।। -तौन उ० पर्व० १२। आ० ११। १२। १३।।

(समीक्षक) अब देखिये! जो अबिरहाम बड़ा पैगम्बर ईसाई और मुसलमानों का बजता है और उसके कर्म मिथ्याभाषणादि बुरे हैं भला! जिनके ऐसे पैगम्बर हों उनको विद्या वा कल्याण का मार्ग कैसे मिल सके? ।।१७।।

१८-और ईश्वर ने अब्राहम से कहा-तू और तेरे पीछे तेरा वंश उनकी पीढ़ियों में मेरे नियम को माने।। तुम मेरा नियम जो मुझ से और तुम से और तेरे पीछे तेरे वंश से है जिसे तुम मानोगे सो यह है कि तुम में से हर एक पुरुष का खतनः

किया जाय।। और तुम अपने शरीर की खलड़ी काटो और वह मेरे और तुम्हारे मध्य में नियम का चिह्न होगा। और तुम्हारी पीढ़ियों में हर एक आठ दिन के पुरुष का खतनः किया जाय। जो घर में उत्पन्न होय अथवा जो किसी परदेशी से; जो तेरे वंश का न हो; रूपे से मोल लिया जाय।। जो तेरे घर में उत्पन्न हुआ हो और तेरे रूपे से मोल लिया गया हो; अवश्य उसका खतनः किया जाय और मेरा नियम तुम्हारे मांस में सर्वदा नियम के लिये होगा।। और जो अखतनः बालक जिसकी खलड़ी का खतनः न हुआ हो सो प्राणी अपने लोग से कट जाय कि उसने मेरा नियम तोड़ा है।। -तौन उ० पर्व० १७। आ० ९। १०। ११। १२। १३। १४।।

(समीक्षक) अब देखिये ईश्वर की अन्यथा आज्ञा। कि जो यह खतनः करना ईश्वर को इष्ट होता तो उस चमड़े को आदि सृष्टि में बनाता ही नहीं और जो यह बनाया गया है वह रक्षार्थ है; जैसा आंख के ऊपर का चमड़ा। क्योंकि वह गुप्तस्थान अति कोमल है। जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ी के भी काटने और थोड़ी सी चोट लगने से बहुत सा दुःख होवे और यह लघुशंका के पश्चात् कुछ मूत्रंश कपड़ों में न लगे इत्यादि बातों के लिये है। इसका काटना बुरा है और अब ईसाई लोग इस आज्ञा को क्यों नहीं करते? यह आज्ञा सदा के लिये है। इसके न करने से ईसा की गवाही जो कि व्यवस्था के पुस्तक का एक विन्दु भी झूठा नहीं है; मिथ्या हो गई। इसका सोच विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते।।१८।।
१९-तब उस से बात करने से रह गया और अबिरहाम के पास से ईश्वर ऊपर जाता रहा।। -तौन उ० पर्व० १७। आ० २२।।
(समीक्षक) इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर मनुष्य वा पक्षिवत् था जो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आता जाता रहता था। यह कोई इन्द्रजाली पुरुषवत् विदित होता है।।१९।।
२०-फिर ईश्वर उसे ममरे के बलूतों में दिखाई दिया और वह दिन को घाम के समय में अपने तम्बू के द्वार पर बैठा था।। और उसने अपनी आंखें उठाईं और क्या देखा कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं और उन्हें देख के वह तम्बू के द्वार पर से उनकी भेंट को दौड़ा और भूमि लों दण्डवत् किई।। और कहा हे मेरे स्वामी! यदि मैंने अब आप की दृष्टि में अनुग्रह पाया है तो मैं आपकी विनती करता हूं कि अपने दास के पास से चले न जाइये।। इच्छा होय तो थोड़ा जल लाया जाय और अपने चरण धोइये और पेड़ तले विश्राम कीजिये।। और मैं एक

कौर रोटी लाऊं और आप तृप्त हूजिये। उसके पीछे आगे बढ़िये। क्योंकि आप इसीलिये दास के पास आये हैं।। तब वे बोले कि जैसा तू ने कहा तैसा कर।। और अबिरहाम तम्बू में सरः पास उतावली से गया और उसे कहा कि फुरती कर और तीन नपुआ चोखा पिसान ले के गूँध और उसके फुलके पका।। और अबिरहाम भफुंड की ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा ले के दास को दिया। उसने भी उसे सिद्ध करने में चटक किया।। और उसने मक्खन और दूध और वह बछड़ा जो पकाया था; लिया और उनके आगे धरा और आप उनके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने खाया।। -तौन पर्व० १८। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७। ८।।

(समीक्षक) अब देखिये सज्जन लोगो! जिनका ईश्वर बछड़े का मांस खावे उसके उपासक गाय, बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें? जिसको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे वह विना हिसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है? और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे? इससे विदित होता है कि जंगली मनुष्यों की एक मण्डली थी। उनका जो प्रधान मनुष्य था। उसका नाम बाइबल में ईश्वर रक्खा होगा। इन्हीं बातों से बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं।।२०।।

२१-और परमेश्वर ने अबिहराम से कहा कि सरः क्यों यह कहके मुसकुराई कि जो मैं बुढ़िया हूं सचमुच बालक जनूँगी।। क्या परमेश्वर के लिये कोई बात असाध्य है।। -तौन पर्व० १८। आ० १३। १४।।

(समीक्षक) अब देखिये कि क्या-क्या ईसाइयों के ईश्वर की लीला! कि जो लड़के वा स्त्रियों के समान चिढ़ता और ताना मारता है!!! ।।२१।।

२२-तब परमेश्वर ने समूद और अमूरः पर गन्धक और आग परमेश्वर की ओर से स्वर्ग से वर्षाया।। और उन नगरों को और सारे चौगान को और नगरों के सारे निवासियों को और जो कुछ भूमि पर उगता था; उलट दिया।। -तौन उत्प० पर्व० १९। आ० २४। २५।।

(समीक्षक) अब यह भी लीला बाइबल के ईश्वर की देखिये कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई! क्या वे सब ही अपराधी थे जो सब को भूमि उलटा के दबा मारा? यह बात न्याय, दया और विवेक से विरुद्ध है। जिनका ईश्वर ऐसा काम करे उनके उपासक क्यों न करें? ।।२२।।

२३-आओ हम अपने पिता को दाख रस पिलावें और हम उसके साथ शयन करें कि हम अपने पिता से वंश जुगावें।। तब उन्होंने उस रात अपने पिता को दाख

रस पिलाया और पहिलोठी गई और अपने पिता के साथ शयन किया।। हम उसे आज रात भी दाख रस पिलावें तू जाके शयन कर।। सो लूत की दोनों बेटियां अपने पिता से गर्भिणी हुईं।। -तौन उत्प० पर्व० १९। आ० ३२। ३३। ३४। ३६।।

(समीक्षक) देखिये पिता पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में कुकर्म करने से न बच सके ऐसे दुष्ट मद्य को जो ईसाई आदि पीते हैं उनकी बुराई का क्या पारावार है? इसलिये सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये।।२३।।

२४-और अपने कहने के समान परमेश्वर ने सरः से भेंट किया और अपने वचन के समान परमेश्वर ने सरः के विषय में किया।। और सरः गर्भिणी हुई।। -तौन उत्प० पर्व० २१। आ० १। २।।

(समीक्षक) अब विचारिये कि सरः से भेंट कर गर्भवती की यह काम कैसे हुआ! क्या विना परमेश्वर और सरः के तीसरा कोई गर्भस्थापन का कारण दीखता है? ऐसा विदित होता है कि सरः परमेश्वर की कृपा से गर्भवती हुई!!!।।२४।।

२५-तब अबिहराम ने बड़े तड़के उठ के रोटी और एक पखाल में जल लिया और हाजिरः के कन्धे पर धर दिया और लड़के को भी उसे सौंप के उसे विदा किया।। उसने उस लड़के को एक भफ़ाड़ी के तले डाल दिया।। और वह उसके सम्मुख बैठ के चिल्ला-चिल्ला रोई।। तब ईश्वर ने उस बालक का शब्द सुना।। -तौन उत्प० पर्व० २१। आ० १४। १५। १६। १७।।

(समीक्षक) अब देखिये! ईसाइयों के ईश्वर की लीला कि प्रथम तो सरः का पक्षपात करके हाजिरः को वहां से निकलवा दी और चिल्ला-चिल्ला रोई हाजिरः और शब्द सुना लड़के का। यह कैसी अद्भुत बात है? यह ऐसा हुआ होगा कि ईश्वर को भ्रम हुआ होगा कि यह बालक ही रोता है। भला यह ईश्वर और ईश्वर की पुस्तक की बात कभी हो सकती है? विना साधारण मनुष्य के वचन के इस पुस्तक में थोड़ी सी बात सत्य के सब असार भरा है।।२५।।

२६-और इन बातों के पीछे यों हुआ कि ईश्वर ने अबिरहाम की परीक्षा किई, और उसे कहा हे अबिरहाम! तू अपने बेटे का अपने इकलौते इजहाक को जिसे तू प्यार करता है; ले। उसे होम की भेंट के लिए चढ़ा।। और अपने बेटे इजहाक को बांध के उस वेदी में लकड़ियों पर धरा।। और अबिरहाम ने छुरी लेके अपने बेटे का घात करने के लिये हाथ बढ़ाया।। तब परमेश्वर के दूत ने स्वर्ग पर से उसे पुकारा कि अबिरहाम अबिरहाम।। अपना हाथ लड़के पर मत बढ़ा, उसे कुछ मत कर, क्योंकि अब मैं जानता हूं कि तू ईश्वर से डरता है।।

-तौन उत्प० पर्व० २२। आ० १। २। ९। १०। ११। १२।।

(समीक्षक) अब स्पष्ट हो गया कि यह बाइबल का ईश्वर अल्पज्ञ है सर्वज्ञ नहीं। और अबिरहाम भी एक भोला मनुष्य था, नहीं तो ऐसी चेष्टा क्यों करता? और जो बाइबल का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो उसकी भविष्यत् श्रद्धा को भी सर्वज्ञता से जान लेता। इससे निश्चित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं।।२६।।

२७-सो आप हमारी समाधिन में से चुन के एक में अपने मृतक को गाड़िये जिस तें आप अपने मृतक को गाड़ें। -तौन उत्प० पर्व० २३। आ० ६।।

(समीक्षक) मुर्दों के गाड़ने से संसार को बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

(प्रश्न) देखो! जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं और गाड़ना जैसा कि उसको सुला देना है इसलिए गाड़ना अच्छा है।

(उत्तर) जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते? और गाड़ते भी क्यों हो? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया, अब दुर्गन्धमय मट्टी से क्या प्रीति? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझ को भूमि में गाड़ देवें तो वह सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख आंख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौन सा प्रीति का काम है? और सन्दूक में डाल के गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल वायु को बिगाड़ कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है। दूसरा एक मुर्दे के लिए कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिए। इसी हिसाब से सौ, हजार वा लाख अथवा क्रोड़ों मनुष्यों के लिए कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है। न वह खेत, न बगीचा, और न वसने के काम की रहती है। इसलिये सब से बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना, क्योंकि उसको जलजन्तु उसी समय चीर फाड़ के खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़ कर जगत् को दुःखदायक होगा। उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षी लूंच खायेंगे तथापि जो उसके हाड़, हाड़ की मज्जा और मल सड़ कर जितना दुर्गन्ध करेगा उतना जगत् का अनुपकार होगा; और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।

(प्रश्न) जलाने से भी दुर्गन्ध होता है।

(उत्तर) जो अविधि से जलावे तो थोड़ा सा होता है परन्तु गाड़ने आदि से बहुत कम होता है। और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है-वेदी मुर्दे के तीन

हाथ गहिरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ हाथ बीता अर्थात् चढ़ा उतार खोद कर शरीर के बराबर घी उसमें एक सेर में रत्ती भर कस्तूरी, मासा भर केशर डाल न्यून से न्यून आध मन चन्दन अधिक चाहें जितना ले, अगर-तगर कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा, उस पर मुर्दा रख के पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक-एक बीता तक भर के उस घी की आहुति देकर जलाना लिखा है। उस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो किन्तु इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है। और जो दरिद्र हो तो बीस सेर से कम घी चिता में न डालें, चाहे वह भीख मांगने वा जाति वाले के देने अथवा राज से मिलने से प्राप्त हो परन्तु उसी प्रकार दाह करे। और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है क्योंकि एक विश्वा भर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाड़ने के समान अधिक नहीं बिगड़ती और कबर के देखने से भय भी होता है। इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है।।२७।।

२८-परमेश्वर मेरे स्वामी अबिरहाम का ईश्वर धन्य है जिसने मेरे स्वामी को अपनी दया और अपनी सच्चाई विना न छोड़ा। मार्ग में परमेश्वर ने मेरे स्वामी के भाइयों के घर की ओर मेरी अगुआई किई।। -तौन उत्प० पर्व० २४। आ० २७।।

(समीक्षक) क्या वह अबिरहाम ही का ईश्वर था? और जैसे आजकल बिगारी वा अगवे लोग अगुआई अर्थात् आगे-आगे चलकर मार्ग दिखलाते हैं तथा ईश्वर ने भी किया तो आजकल मार्ग क्यों नहीं दिखलाता? और मनुष्यों से बातें क्यों नहीं करता? इसलिए ऐसी बातें ईश्वर वा ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं किन्तु जंगली मनुष्य की हैं।।२८।।

२९-इसमअऐल के बेटों के नाम ये हैं-इसमअऐल का पहिलौठा नबीत और कीदार और अदबिएल और मिबसाम।। और मिसमाअ और दूमः और मस्सा।। हदर और तैमा इतूर, नफीस और किदिमः।।
-तौन उत्प० पर्व० २५। आ० १३। १४। १५।।

(समीक्षक) यह इसमअऐल अबिरहाम से उसकी हाजिरः दासी का पुत्र हुआ था।।२९।।

३०-मैं तेरे पिता की रुचि के समान स्वादित भोजन बनाऊंगी।। और तू अपने पिता के पास ले जाइयो जिसतें वह खाय और अपने मरने से आगे तुझे आशीष देवे।। और रिबकः ने घर में से अपने जेठे बेटे एसौ का अच्छा पहिरावा लिया।। और बकरी के मेम्नों का चमड़ा उसके हाथों और गले की चिकनाई पर लपेटा।।

तब यअकूब अपने पिता से बोला कि मैं आपका पहिलौठा एसौ हूं। आपके कहने के समान मैंने किया है, उठ बैठिये और मेरे अहेर के मांस में से खाइये जिसतें आप का प्राण मुझे आशीष दे।। -तौन उत्प० पर्व० २७। आ० ९। १०। १५। १६। १९।।

(समीक्षक) देखिये! ऐसे भफ़ूठ कपट से आशीर्वाद ले के पश्चात् सिद्ध और पैगम्बर बनते हैं क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? और ऐसे ईसाइयों के अगुआ हुए हैं पुनः इनके मत की गड़बड़ में क्या न्यूनता हो? ।।३०।।

३१-और यअकूब बिहान को तड़के उठा और उस पत्थर को जिसे उसने अपना तकिया किया था खम्भा खड़ा किया और उस पर तेल डाला।। और उस स्थान का नाम बैतएल रक्खा।। और यह पत्थर जो मैंने खम्भा खड़ा किया ईश्वर का घर होगा।। -तौन उत्प० पर्व० २८। आ० १८। १९। २२।।

(समीक्षक) अब देखिये जंगलियों के काम। इन्होंने पत्थर पूजे और पुजवाये और इसको मुसलमान लोग 'बैतएलमुकद्दस' कहते हैं। क्या यही पत्थर ईश्वर का घर और उसी पत्थरमात्र में ईश्वर रहता था? वाह-वाह जी! क्या कहना है ईसाई लोगो! महाबुत्परस्त तो तुम्हीं हो।।३१।।

३२-और ईश्वर ने राहेल को स्मरण किया और ईश्वर ने उसकी सुनी और उसकी कोख को खोला।। और वह गर्भिणी हुई और बेटा जनी और बोली कि ईश्वर ने मेरी निन्दा दूर किई।। -तौन उत्प० पर्व० ३०। आ० २२। २३।।

(समीक्षक) वाह ईसाइयों के ईश्वर! क्या बड़ा डाक्तर है! स्त्रियों की कोख खोलने को कौन से शस्त्र वा औषध थे जिनसे खोली, ये सब बातें अन्धाधुन्ध की हैं।।३२।।

३३-परन्तु ईश्वर अरामी लावन कने स्वप्न में रात को आया और उसे कहा कि चौकस रह तू यअकूब को भला बुरा मत कहना।। क्योंकि तू अपने पिता के घर का निपट अभिलाषी है तूने किसलिये मेरे देवों को चुराया है।।
-तौन उत्प० पर्व० ३१। आ० २४। ३०।।

(समीक्षक) यह हम नमूना लिखते हैं, हजारों मनुष्यों को स्वप्न में आया, बातें किईं, जागृत साक्षात् मिला, खाया, पिया, आया, गया आदि बाइबल में लिखा है परन्तु अब न जाने वह है वा नहीं? क्योंकि अब किसी को स्वप्न वा जागृत में भी ईश्वर नहीं मिलता और यह भी विदित हुआ कि ये जंगली लोग पाषाणादि मूर्तियों को देव मानकर पूजते थे परन्तु ईसाइयों का ईश्वर भी पत्थर ही को देव मानता है, नहीं तो देवों का चुराना कैसे घटे? ।।३३।।

३४-और यअकूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वर के दूत उसे आ मिले।। और यअकूब ने उन्हें देख के कहा कि यह ईश्वर की सेना है।। -तौनउत्पन पर्व० ३२। आ० १। २।।

(समीक्षक) अब ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य होने में कुछ भी सन्दिग्ध नहीं रहा, क्योंकि सेना भी रखता है। जब सेना हुई तब शस्त्र भी होंगे और जहाँ तहाँ चढ़ाई करके लड़ाई भी करता होगा, नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयोजन है? ।।३४।।

३५-और यअकूब अकेला रह गया और वहां पौ फटे लों एक जन उससे मल्लयुद्ध करता रहा। और जब उसने देखा कि वह उस पर प्रबल न हुआ तो उसकी जांघ को भीतर से छूआ। तब यअकूब के जांघ की नस उसके संग मल्लयुद्ध करने में चढ़ गई।। तब वह बोला कि मुझे जाने दे क्योंकि पौ फटती है और वह बोला मैं तुझे जाने न देऊंगा जब लों तू मुझे आशीष न देवे।। तब उसने उससे कहा कि तेरा नाम क्या ? और वह बोला कि यअकूब।। तब उसने कहा कि तेरा नाम आगे को यअकूब न होगा परन्तु इसराएल, क्योंकि तूने ईश्वर के आगे और मनुष्यों के आगे राजा की नाईं मल्लयुद्ध किया और जीता।। तब यअकूब ने यह कहिके उससे पूछा कि अपना नाम बताइये और वह बोला कि तू मेरा नाम क्यों पूछता है और उसने उसे वहां आशीष दिया।। और यअकूब ने उस स्थान का नाम फनूएल रक्खा क्योंकि मैंने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मेरा प्राण बचा है।। और जब वह फनूएल से पार चला तो सूर्य की ज्योति उस पर पड़ी और वह अपनी जाँघ से लँगड़ाता था।। इसलिये इसरायल के वंश उस जांघ की नस को जो चढ़ गई थी आज लों नहीं खाते क्योंकि उसने यअकूब के जांघ की नस को जो चढ़ गई थी; छूआ था।।

-तौन उत्प० पर्व० ३२। आ० २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ३२।।

(समीक्षक) जब ईसाइयों का ईश्वर अखाड़मल्ल है तभी तो सरः और राखल पर पुत्र होने की कृपा की। भला यह कभी ईश्वर हो सकता है? अब देखो लीला! कि एक जना नाम पूछे तो दूसरा अपना नाम ही न बतावे? और ईश्वर ने उसकी नाड़ी को चढ़ा तो दी और जीत गया परन्तु जो डाक्टर होता तो जांघ की नाड़ी को अच्छी भी करता। और ऐसे ईश्वर की भक्ति से जैसा कि यअकूब लंगड़ाता रहा तो अन्य भक्त भी लंगड़ाते होंगे। जब ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मल्लयुद्ध किया यह बात विना शरीर वाले के कैसे हो सकती है? यह केवल लड़कपन की लीला है।।३५।।

३६-ईश्वर का मुंह देखा।। -तौनउत्पन पर्व० ३३। आ० १०।।

(समीक्षक) जब ईश्वर के मुंह है और भी सब अवयव होंगे और वह जन्म मरण वाला भी होगा।।३६।।

३७-और यहूदाह का पहिलौठा एर परमेश्वर की दृष्टि में दुष्ट था सो परमेश्वर ने उसे मार डाला। तब यहूदाह ने ओनान को कहा कि अपने भाई की पत्नी पास जा और उससे ब्याह कर अपने भाई के लिए वंश चला।। और ओनान ने जाना कि यह वंश मेरा न होगा और यों हुआ कि जब वह अपने भाई की पत्नी पास गया तो वीर्य्य को भूमि पर गिरा दिया।। और उसका वह कार्य्य परमेश्वर की दृष्टि में बुरा था इसलिये उसने उसे भी मार डाला।।

-तौनउत्पन पर्व० ३८। आ० ७। ८। ९। १०।।

(समीक्षक) अब देख लीजिये! ये मनुष्यों के काम हैं कि ईश्वर के? जब उसके साथ नियोग हुआ तो उसको क्यों मार डाला? उसकी बुद्धि शुद्ध क्यों न कर दी? और वेदोक्त नियोग भी प्रथम सर्वत्र चलता था। यह निश्चय हुआ कि नियोग की बातें सब देशों में चलती थीं।।३७।।

तौरेत यात्र की पुस्तक

३८-जब मूसा सयाना हुआ और अपने भाइयों में से एक इबरानी को देखा कि मिस्री उसे मार रहा है।। तब उसने इधर-उधर दृष्टि किई देखा कि कोई नहीं तब उसने उस मिस्री को मार डाला और बालू में उसे छिपा दिया।। जब वह दूसरे दिन बाहर गया तो देखा, दो इबरानी आपस में झगड़ रहे हैं तब उसने उस अंधेरी को कहा कि तू अपने परोसी को क्यों मारता है।। तब उसने कहा कि किसने तुझे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया, क्या तू चाहता है कि जिस रीति से मिस्री को मार डाला मुझे भी मार डाले।। तब मूसा डरा और भाग निकला।।

-तौन या० प० २। आ० ११। १२। १३। १४। १५।।

(समीक्षक) अब देखिये! जो बाइबल का मुख्य सिद्धकर्त्ता मत का आचार्य मूसा कि जिसका चरित्र क्रोधादि दुर्गुणों से युक्त, मनुष्य की हत्या करने वाला और चोरवत् राजदण्ड से बचनेहारा अर्थात् जब बात को छिपाता था तो झूठ बोलने वाला भी अवश्य होगा, ऐसे को भी जो ईश्वर मिला वह पैगम्बर बना उसने यहूदी आदि का मत चलाया वह भी मूसा ही के सदृश हुआ। इसलिये ईसाइयों के जो मूल पुरुषा हुए हैं वे सब मूसा से आदि लेकर के जंगली अवस्था में थे, विद्यावस्था में नहीं, इत्यादि।।३८।।

३९-जब परमेश्वर ने देखा कि वह देखने को एक अलंग फिरा तो ईश्वर ने भफ़ाड़ी के मध्य में से उसे पुकार के कहा कि हे मूसा हे मूसा! तब वह बोला मैं यहां हूं।। तब उसने कहा कि इधर पास मत आ, अपने पाओं से जूता उतार, क्योंकि यह स्थान जिस पर तू खड़ा है; पवित्र भूमि है।
-तौन या० पु० प० ३। आ० ४। ५।।

(समीक्षक) देखिये! ऐसे मनुष्य जो कि मनुष्य को मार के बालू में गाड़ने वाले से इनके ईश्वर की मित्रता और उसको पैगम्बर मानते हैं। और देखो जब तुम्हारे ईश्वर ने मूसा से कहा कि पवित्र स्थान में जूती न ले जानी चाहिए। तुम ईसाई इस आज्ञा के विरुद्ध क्यों चलते हो? ।।
(प्रश्न) हम जूती के स्थान में टोपी उतार लेते हैं।
(उत्तर) यह दूसरा अपराध तुमने किया क्योंकि टोपी उतारना न ईश्वर ने कहा न तुम्हारे पुस्तक में लिखा है। और उतारने योग्य को नहीं उतारते, जो नहीं उतारना चाहिये उसको उतारते हो, दोनों प्रकार तुम्हारे पुस्तक से विरुद्ध हैं।
(प्रश्न) हमारे यूरोप देश में शीत अधिक है इसलिये हम लोग जूती नहीं उतारते।
(उत्तर) क्या शिर में शीत नहीं लगता? जो यही है तो यूरोप देश में जाओ तब ऐसा ही करना। परन्तु जब हमारे घर में वा बिछौने में आया करो तब तो जूती उतार दिया करो और जो न उतारोगे तो तुम अपने बाइबल पुस्तक के विरुद्ध चलते हो; ऐसा तुम को न करना चाहिये।।३९।।
४०-तब ईश्वर ने उसे कहा कि तेरे हाथ में यह क्या है और वह बोला कि छड़ी।। तब उसने कहा कि उसे भूमि पर डाल दे और उसने भूमि पर डाल दिया और वह सर्प्प बन गई और मूसा उसके आगे से भागा।। तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि अपना हाथ बढ़ा और उसकी पूंछ पकड़ ले, तब उसने अपना हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया और वह उसके हाथ में छड़ी हो गई।। तब परमेश्वर ने उसे कहा कि फिर तू अपना हाथ अपनी गोद में कर और उसने अपना हाथ अपनी गोद में किया जब उसने उसे निकाला तो देखा कि उसका हाथ हिम के समान कोढ़ी था।। और उसने कहा कि अपना हाथ फिर अपनी गोद में कर। उसने फिर अपने हाथ को अपनी गोद में किया और अपनी गोद से उसे निकाला तो देखा कि जैसी उसकी सारी देह थी वह वैसा फिर हो गया।। तू नील नदी का जल लेके सूखी पर ढालियो और वह जल जो तू नदी से निकालेगा सो सूखी पर लोहू हो जायेगा।। -तौन या० प० ४। आ० २। ३। ४। ६। ७। ९।।

(समीक्षक) अब देखिये! कैसे बाजीगर का खेल, खिलाड़ी ईश्वर, उसका सेवक मूसा और इन बातों को मानने हारे कैसे हैं? क्या आजकल बाजीगर लोग इससे कम करामात करते हैं? यह ईश्वर क्या, यह तो बड़ा खिलाड़ी है। इन बातों को विद्वान् क्यों कर मानेंगे? और हर एक बार मैं परमेश्वर हूं और अबिरहाम, इजहाक और याकूब का ईश्वर हूं इत्यादि हर एक से अपने मुख से प्रशंसा करता फिरता है, यह बात उत्तम जन की नहीं हो सकती किन्तु दम्भी मनुष्य की हो सकती है।।४०।।
४१-और फसह मेम्ना मारो।। और एक मूठी जूफा लेओ और उसे उस लोहू में जो बासन में है बोर के, ऊपर की चौखट के और द्वार की दोनों ओर उससे छापो और तुम में से कोई बिहान लों अपने घर के द्वार से बाहर न जावे।। क्योंकि परमेश्वर मिस्र के मारने के लिये आर-पार जायेगा और जब वह ऊपर की चौखट पर और द्वार की दोनों ओर लोहू को देखे तब परमेश्वर द्वार से बीत जायेगा और नाशक तुम्हारे घरों में जाने न देगा कि मारे।। -तौन या० प० १२। आ० २१। २२। २३।।

(समीक्षक) भला यह जो टोने टामन करने वाले के समान है वह ईश्वर सर्वज्ञ कभी हो सकता है? जब लोहू का छापा देखे तभी इसरायल कुल का घर जाने, अन्यथा नहीं। यह काम क्षुद्र बुद्धि वाले मनुष्य के सदृश है। इससे यह विदित होता है कि ये बातें किसी जंगली मनुष्य की लिखी हैं।।४१।।
४२-और यों हुआ कि परमेश्वर ने आधी रात को मिस्र के देश में सारे पहिलौठे जो फिरऊन के पहिलौठे से लेके जो अपने सिहासन पर बैठता था उस बन्धुआ के पहिलौठे लों जो बन्दीगृह में था पशुन के पहिलौठों समेत नाश किये। और रात को फिरऊन उठा, वह और उसके सब सेवक और सारे मिस्री उठे और मिस्र में बड़ा विलाप था क्योंकि कोई घर न रहा जिस में एक न मरा।। -तौन या० प० १२। आ० २९। ३०।।
(समीक्षक) वाह! अच्छा आधी रात को डाकू के समान निर्दयी होकर ईसाइयों के ईश्वर ने लड़के बाले, वृद्ध और पशु तक भी विना अपराध मार दिये और कुछ भी दया न आई और मिस्र में बड़ा विलाप होता रहा तो भी ईसाइयों के ईश्वर के चित्त से निष्ठुरता नष्ट न हुई! ऐसा काम ईश्वर का तो क्या किन्तु किसी साधारण मनुष्य के भी करने का नहीं है। यह आश्चर्य नहीं, क्योंकि लिखा है 'मांसाहारिणः कुतो दया' जब ईसाइयों का ईश्वर मांसाहारी है तो उसको दया करने से क्या काम है? ।।४२।।

४३-परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा।। इसराएल के सन्तान से कह कि वे आगे बढें़।। परन्तु तू अपनी छड़ी उठा और समुद्र पर अपना हाथ बढ़ा और उसे दो भाग कर और इसराएल के सन्तान समुद्र के बीचों बीच से सूखी भूमि में होकर चले जायेंगे।। -तौन या० प० १४। आ० १४। १५। १६।।

(समीक्षक) क्यों जी! आगे तो ईश्वर भेड़ों के पीछे गड़रिये के समान इस्रायेल कुल के पीछे-पीछे डोला करता था। अब न जाने कहां अन्तर्धान हो गया? नहीं तो समुद्र के बीच में से चारों ओर की रेलगाड़ियों की सड़क बनवा लेते जिससे सब संसार का उपकार होता और नाव आदि बनाने का श्रम छूट जाता। परन्तु क्या किया जाय, ईसाइयों का ईश्वर न जाने कहाँ छिप रहा है? इत्यादि बहुत सी मूसा के साथ असम्भव लीला बाइबल के ईश्वर ने की हैं परन्तु यह विदित हुआ कि जैसा ईसाइयों का ईश्वर है वैसे ही उसके सेवक और ऐसी ही उसकी बनाई पुस्तक है। ऐसी पुस्तक और ऐसा ईश्वर हम लोगों से दूर रहै तभी अच्छा है।।४३।।

४४-क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान् हूं। पितरों के अपराध का दण्ड उनके पुत्रें को जो मेरा वैर रखते हैं उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी लों देवैया हूं।। -तौन या० प० २०। आ० ५।।

(समीक्षक) भला यह किस घर का न्याय है कि जो पिता के अपराध से चार पीढ़ी तक दण्ड देना अच्छा समझना। क्या अच्छे पिता के दुष्ट और दुष्ट के अच्छे सन्तान नहीं होते? जो ऐसा है तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा? और जो पांचवीं पीढ़ी से आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा। विना अपराध किसी को दण्ड देना अन्यायकारी की बात है।।४४।।

४५-विश्राम के दिन को उसे पवित्र रखने के लिये स्मरण कर।। छः दिन लों तू परिश्रम कर।। परन्तु सातवां दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर का विश्राम है।। परमेश्वर ने विश्राम दिन को आशीष दिई।। -तौन या० प० २०। आ० ८। ९। १०। ११।।

(समीक्षक) क्या रविवार एक ही पवित्र और छः दिन अपवित्र हैं? और क्या परमेश्वर ने छः दिन तक कड़ा परिश्रम किया था कि जिससे थक के सातवें दिन सो गया? और जो रविवार को आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिन को क्या दिया? अर्थात् शाप दिया होगा। ऐसा काम विद्वान् का भी नहीं तो ईश्वर का क्यों कर हो सकता है? भला रविवार में क्या गुण और सोमवार आदि ने

क्या दोष किया था कि जिससे एक को पवित्र तथा वर दिया और अन्यों को ऐसे ही अपवित्र कर दिये।।४५।।

४६-अपने परोसी पर झूठी साक्षी मत दे।। अपने परोसी की स्त्री और उसके दास उसकी दासी और उसके बैल और उसके गदहे और किसी वस्तु का जो तेरे परोसी की है; लालच मत कर।। -तौन या० प० २०। आ० १६। १७।।

(समीक्षक) वाह! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानो प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर। जैसी यह केवल मतलब सिन्धु और पक्षपात की बात है ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर अवश्य होगा। यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्य मात्र को परोसी मानते हैं तो सिवाय मनुष्य के अन्य कौन स्त्री और दासी आदि वाले हैं कि जिनको अपरोसी गिनें? इसलिये ये बातें स्वार्थी मनुष्यों की हैं; ईश्वर की नहीं।।४६।।

४७-जो कोई किसी मनुष्य को मारे और वह मर जाये वह निश्चय घात किया जाय।। और वह मनुष्य घात में न लगा हो परन्तु ईश्वर ने उसके हाथ में सौंप दिया हो तब मैं तुझे भागने का स्थान बता दूँगा।।

-तौन या० प० २१। आ० १२। १३।।

(समीक्षक) जो यह ईश्वर का न्याय सच्चा है तो मूसा एक आदमी को मार गाड़ कर भाग गया था उसको यह दण्ड क्यों न हुआ? जो कहो ईश्वर ने मूसा को मारने के निमित्त सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ क्योंकि उस मूसा का राजा से न्याय क्यों न होने दिया? ।।४७।।

४८-और कुशल का बलिदान बैलों से परमेश्वर के लिए चढ़ाया।। और मूसा ने आधा लोहू लेके पात्रें में रक्खा और आधा लोहू वेदी पर छिड़का।। और मूसा ने उस लोहू को लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियम का है जिसे परमेश्वर ने इन बातों के कारण तुम्हारे साथ किया है।। और परमेश्वर ने मूसा से कहा कि पहाड़ पर मुझ पास आ और वहां रह और मैं तुझे पत्थर की पटियां और व्यवस्था और आज्ञा मैने लिखी है; दूंगा।।

-तौन या० प० २२। आ० ५। ६। ८। १२।।

(समीक्षक) अब देखिये! ये सब जंगली लोगों की बातें हैं वा नहीं? और परमेश्वर बैलों का बलिदान लेता और वेदी पर लोहू छिड़कना यह कैसी जंगलीपन और असभ्यता की बात है? जब ईसाइयों का खुदा भी बैलों का बलिदान लेवे तो उसके भक्त बैल गाय के बलिदान की प्रसादी से पेट क्यों न भरें? और जगत् की हानि क्यों न करें? ऐसी-ऐसी बुरी बातें बाइबल में भरी हैं। इसी के कुसंस्कारों से वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदों में ऐसी बातों का

नाम भी नहीं। और यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयों का ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड़ पर रहता था। जब वह खुदा स्याही, लेखनी, कागज, नहीं बना जानता और न उसको प्राप्त था इसीलिये पत्थर की पटियों पर लिख-लिख देता था और इन्हीं जंगलियों के सामने ईश्वर भी बन बैठा था।।४८।।

४९-और बोला कि तू मेरा रूप नहीं देख सकता क्योंकि मुझे देख के कोई मनुष्य न जीयेगा।। और परमेश्वर ने कहा कि देख एक स्थान मेरे पास है और तू उस टीले पर खड़ा रह।। और यों होगा कि जब मेरा विभव चल निकलेगा तो मैं तुझे पहाड़ के दरार में रक्खूँगा और जब लों जा निकलूं तुझे अपने हाथ से ढांपूंगा।। और अपना हाथ उठा लूंगा और तू मेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा।। -तौन या० प० ३३। आ० २०। २१। २२। २३।।

(समीक्षक) अब देखिये! ईसाइयों का ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीर- धारी और मूसा से कैसा प्रपञ्च रच के आप स्वयम् ईश्वर बन गया। जो पीछा देखेगा, रूप न देखेगा तो हाथ से उसको ढांप दिया भी न होगा। जब खुदा ने अपने हाथ से मूसा को ढांपा होगा तब क्या उसके हाथ का रूप उसने न देखा होगा? ।।४९।।

लैव्य व्यवस्था की पुस्तक तौ०

५०-और परमेश्वर ने मूसा को बुलाया और मण्डली के तम्बू में से यह वचन उसे कहा।। कि इसराएल के सन्तानों से बोल और उन्हें कह यदि कोई तुम्में से परमेश्वर के लिये भेंट लावे तो तुम ढोर में से अर्थात् गाय बैल और भेड़ बकरी में से अपनी भेंट लाओ।। -तौन लैव्य व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० १। २।।

(समीक्षक) अब विचारिये! ईसाइयों का परमेश्वर गाय बैल आदि की भेंट लेने वाला जो कि अपने लिये बलिदान कराने के लिये उपदेश करता है। वह बैल गाय आदि पशुओं के लोहू मांस का प्यासा भूखा है वा नहीं? इसी से वह अहिसक और ईश्वर कोटि में गिना कभी नहीं जा सकता किन्तु मांसाहारी प्रपञ्ची मनुष्य के सदृश है।।५०।।

५१-और वह उस बैल को परमेश्वर के आगे बलि करे और हारून के बेटे याजक लोहू को निकट लावें और लोहू को यज्ञवेदी के चारों ओर जो मण्डली के तम्बू के द्वार पर है; छिड़कें।। तब वह उस भेंट के बलिदान की खाल निकाले और उसे टुकड़ा-टुकड़ा करे।। और हारून के बेटे याजक यज्ञवेदी पर आग रक्खें और उस पर लकड़ी चुनें।। और हारून के बेटे याजक उसके टुकड़ों को और सिर और चिकनाई को उन लकड़ियों पर जो यज्ञवेदी की आग पर हैं; विधि से धरें।।

जिसतें बलिदान की भेंट होवे जो आग से परमेश्वर के सुगन्ध के लिये भेंट किया गया।। -तौन लै० व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० ५। ६। ७। ८। ९।।

(समीक्षक) तनिक विचारिये! कि बैल को परमेश्वर के आगे उसके भक्त मारें और वह मरवावे और लोहू को चारों ओर छिड़कें, अग्नि में होम करें, ईश्वर सुगन्ध लेवे, भला यह कसाई के घर से कुछ कमती लीला है? इसी से न बाइबल ईश्वरकृत और न वह जंगली मनुष्य के सदृश लीलाधारी ईश्वर हो सकता है।।५१।।

५२-फिर परमेश्वर मूसा से यह कह के बोला।। यदि वह अभिषेक किया हुआ याजक लोगों के पाप के समान पाप करे तो वह अपने पाप के कारण जो उसने किया है अपने पाप की भेंट के लिए निसखोट एक बछिया को परमेश्वर के लिये लावे।। और बछिया के शिर पर अपना हाथ रक्खे और बछिया को परमेश्वर के आगे बलि करे।। -तौन लै० व्य० प० ४। आ० १। ३। ४।।

(समीक्षक) अब देखिये पापों के छुड़ाने के प्रायश्चित्त ! स्वयं पाप करें, गाय आदि उत्तम पशुओं की हत्या करें और परमेश्वर करवावे। धन्य हैं ईसाई लोग कि ऐसी बातों के करने करानेहारे को भी ईश्वर मान कर अपनी मुक्ति आदि की आशा करते हैं!!! ।।५२।।

५३-जब कोई अध्यक्ष पाप करे। तब वह बकरी का निसखोट नर मेम्रा अपनी भेंट के लिये लावे।। और उसे परमेश्वर के आगे बलि करे यह पाप की भेंट है।। -तौन लै० प० ४। आ० २२। २३। २४।।

(समीक्षक) वाह जी? वाह? यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित्त के बदले में गाय, बछिया, बकरे आदि के प्राण लेवें। तभी तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षी के प्राण लेने में शंकित नहीं होते। सुनो ईसाई लोगो! अब तो इस जंगली मत को छोड़ के सुसभ्य धर्ममय वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो।।५३।।

५४-और यदि उसे भेड़ लाने की पूंजी न हो तो वह अपने किये हुए अपराध के लिए दो पिंडुकियाँ और कपोत के दो बच्चे परमेश्वर के लिये लावे।। और उसका सिर उसके गले के पास से मरोड़ डाले परन्तु अलग न करे।। उसके किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करे और उसके लिये क्षमा किया जायगा।। पर यदि उसे दो पिंडुकियाँ और कपोत के दो बच्चे लाने की पूंजी न हो तो सेर भर चोखा पिसान

का दशवाँ हिस्सा पाप की भेंट के लिये लावे· उस पर तेल न डाले।। और वह क्षमा किया जायेगा।। -तौन लै० प० ५। आ० ७। ८। १०। ११। १३।।

(समीक्षक) अब सुनिये! ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य न डरता होगा और न दरिद्र भी, क्योंकि इनके ईश्वर ने पापों का प्रायश्चित्त करना सहज कर रक्खा है। एक यह बात ईसाइयों की बाइबल में बड़ी अद्भुत है कि विना कष्ट किये पाप से छूट जाय। क्योंकि एक तो पाप किया और दूसरे जीवों की हिसा की और खूब आनन्द से मांस खाया और पाप भी छूट गया। भला! कपोत के बच्चे का गला मरोड़ने से वह बहुत देर तक तड़फता होगा तब भी ईसाइयों को दया नहीं आती। दया क्योंकर आवे! इनके ईश्वर का उपदेश ही हिसा करने का है। और जब सब पापों का ऐसा प्रायश्चित्त है तो ईसा के विश्वास से पाप छूट जाता है यह बड़ा आडम्बर क्यों करते हैं।।५४।।

५५-सो उसी बलिदान की खाल उसी याजक की होगी जिसने उसे चढ़ाया।।

· इस ईश्वर को धन्य है कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरी का बच्चा, कपोत और पिसान (आटे) तक लेने का नियम किया। अद्भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे "गरदन मरोड़वा के" लेता था अर्थात् गर्दन तोड़ने का परिश्रम न करना पड़े। इन सब बातों के देखने से विदित होता है कि जंगलियों में कोई चतुर पुरुष था वह पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया। जंगली अज्ञानी थे, उन्होंने उसी को ईश्वर स्वीकार कर लिया। अपनी युक्तियों से वह पहाड़ पर ही खाने के लिए पशु, पक्षी और अन्नादि मंगा लिया करता था और मौज करता था। उसके दूत फरिश्ते काम किया करते थे। सज्जन लोग विचारें कि कहां तो बाइबल में बछड़ा, भेड़ी, बकरी का बच्चा, कपोत और "अच्छे" पिसान का खाने वाला ईश्वर और कहां सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी इत्यादि उत्तम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर ?

और समस्त भोजन की भेंट जो तन्दूर में पकाई जावें और सब जो कड़ाही में अथवा तवे पर सो उसी याजक की होगी।। -तौन लै० प० ७। आ० ८। ९।।

(समीक्षक) हम जानते थे कि यहाँ देवी के भोपे और मन्दिरों के पुजारियों की पोपलीला विचित्र है परन्तु ईसाइयों के ईश्वर और उनके पुजारियों की पोपलीला इससे सहस्रगुणी बढ़कर है। क्योंकि चाम के दाम और भोजन के पदार्थ खाने को आवें फिर ईसाइयों के याजकों ने खूब मौज उड़ाई होगी? और अब भी उड़ाते होंगे। भला कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे ऐसा कभी हो सकता है? वैसे ही ईश्वर के सब मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव पुत्रवत् हैं। परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता। इसी से यह बाइबल ईश्वरकृत और इसमें लिखा ईश्वर और इसके मानने

वाले धर्मज्ञ कभी नहीं हो सकते। ऐसे ही सब बातें लैव्य व्यवस्था आदि पुस्तकों में भरी हैं; कहाँ तक गिनावें।।५५।।

गिनती की पुस्तक

५६-सो गदही ने परमेश्वर के दूत को अपने हाथ में तलवार खींचे हुए मार्ग में खड़ा देखा तब गदही मार्ग से अलग खेत में फिर गई, उसे मार्ग में फिरने के लिये बलआम ने गदही को लाठी से मारा। तब परमेश्वर ने गदही का मुंह खोला और उसने बलआम से कहा कि मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे अब तीन बार मारा।। -तौन गि० प० २२। आ० २३। २८।।

(समीक्षक) प्रथम तो गदहे तक ईश्वर के दूतों को देखते थे और आज कल बिशप पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्यों को भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं। क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं? यदि हैं तो क्या बड़ी नींद में सोते हैं? वा रोगी अथवा अन्य भूगोल में चले गये? वा किसी अन्य धन्धे में लग गये? वा अब ईसाइयों से रुष्ट हो गये? अथवा मर गये? विदित नहीं होता कि क्या हुआ? अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते तो तब भी नहीं थे और न दीखते होंगे। किन्तु ये केवल मनमाने गपोड़े उड़ाये हैं।।५६।।

५७-सो अब लड़कों में से हर एक बेटे को और हर एक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो।। परन्तु वे बेटियां जो पुरुष से संयुक्त नहीं हुई हैं उन्हें अपने लिये जीती रक्खो।। -तौन गिनती प० ३१। आ० १७। १८।।

(समीक्षक) वाह जी ! मूसा पैगम्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है कि जो स्त्री, बालक, वृद्ध और पशु की हत्या करने से भी अलग न रहे। और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था। क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षतयोनि अर्थात् पुरुषों से समागम न की हुई कन्याओं को अपने लिये क्यों मंगवाता वा उनको ऐसी निर्दयी वा विषयीपन की आज्ञा क्यों देता? ।।५७।।

समुएल की दूसरी पुस्तक

५८-और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वर का वचन यह कह के नातन को पहुंचा।। कि जा और मेरे सेवक दाऊद से कह कि परमेश्वर यों कहता है कि क्या मेरे निवास के लिए तू एक घर बनवायेगा।। क्योंकि जब से इसराएल के सन्तान को मिस्र से निकाल लाया मैंने तो आज के दिन लों घर में वास न किया परन्तु तम्बू में और डेरे में फिरा किया।। -तौन समुएल की दूसरी पु० प० ७। आ० ४। ५। ६।।

(समीक्षक) अब कुछ सन्देह न रहा कि ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी नहीं है और उलहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया, इधर उधर डोलता फिरा, अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं। क्यों ईसाइयों को ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तक को मानने में लज्जा नहीं आती? परन्तु क्या करें बिचारे फंस ही गये। अब निकलने के लिए बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है।।५८।।

राजाओं की पुस्तक

५९-और बाबेल के राजा नबुखुदनजर के राज्य के उन्नीसवें बरस के पांचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर अद्दान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था, यरूसलम में आया।। और उसने परमेश्वर का मन्दिर और राजा का भवन और यरूसलम के सारे घर और हर एक बड़े घर को जला दिया।। और कसदियों की सारी सेना ने जो उस निज सेना के अध्यक्ष के साथ थी यरूसलम की भीतों को चारों ओर से ढा दिया।।

-तौन रा० पु० २। प० २५। आ० ८। ९। १०।।

(समीक्षक) क्या किया जाय? ईसाइयों के ईश्वर ने तो अपने आराम के लिये दाऊद आदि से घर बनवाया था। उसमें आराम करता होगा, परन्तु नबूसर अद्दान ने ईश्वर के घर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और ईश्वर वा उसके दूतों की सेना कुछ भी न कर सकी। प्रथम तो इनका ईश्वर बड़ी-बड़ी लड़ाइयां मारता था और विजयी होता था परन्तु अब अपना घर जला तुड़वा बैठा। न जाने चुपचाप क्यों बैठा रहा? और न जाने उसके दूत किधर भाग गये? ऐसे समय पर कोई भी काम न आया और ईश्वर का पराक्रम भी न जाने कहाँ उड़ गया? यदि यह बात सच्ची हो तो जो जो विजय की बातें प्रथम लिखीं सो-सो सब व्यर्थ हो गईं। क्या मिस्र के लड़के लड़कियों के मारने में ही शूरवीर बना था? अब शूरवीरों के सामने चुपचाप हो बैठा? यह तो ईसाइयों के ईश्वर ने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा करा ली। ऐसी ही हजारों इस पुस्तक में निकम्मी कहानियां भरी हैं।।५९।।

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

६०-सो परमेश्वर ने इसराएल पर मरी भेजी और इसराएल में से सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये।। -जबूर २। काल० पु० प० २१। आ० १४।।

(समीक्षक) अब देखिये इसराएल के ईसाइयों के ईश्वर की लीला! जिस इसराएल कुल को बहुत से वर दिये थे और रात दिन जिनके पालन में डोलता

था अब भफ़ट क्रोधित होकर मरी डाल के सत्तर सहस्र मनुष्यों को मार डाला। जो यह किसी कवि ने लिखा है सत्य है कि-

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे ।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकरः ।।

जैसे कोई मनुष्य क्षण में प्रसन्न, क्षण में अप्रसन्न होता है, अर्थात् क्षण-क्षण में प्रसन्न अप्रसन्न होवे उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है वैसी लीला ईसाइयों के ईश्वर की है।।६०।।

ऐयूब की पुस्तक

६१-और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र आ खड़े हुए और शैतान भी उनके मध्य में परमेश्वर के आगे आ खड़ा हुआ।। और परमेश्वर ने शैतान से कहा कि तू कहां से आता है? तब शैतान ने उत्तर दे के परमेश्वर से कहा कि पृथिवी पर घूमते और इधर उधर से फिरते चला आता हूं।। तब परमेश्वर ने शैतान से पूछा कि तूने मेरे दास ऐयूब को जांचा है कि उसके समान पृथिवी में कोई नहीं है वह सिद्ध और खरा जन ईश्वर से डरता और पाप से अलग रहता है और अब लों अपनी सच्चाई को धर रक्खा है और तूने मुझे उसे अकारण नाश करने को उभारा है।। तब शैतान ने उत्तर दे के परमेश्वर से कहा कि चाम के लिये चाम हां जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा।। परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़ मांस को छू तब वह निःसन्देह तुझे तेरे सामने त्यागेगा।। तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि देख वह तेरे हाथ में है, केवल उसके प्राण को बचा।। तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला गया और ऐयूब को सिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा।।

-जबूर ऐयू० प० २। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७।।

(समीक्षक) अब देखिये ईसाइयों के ईश्वर का सामर्थ्य ! कि शैतान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है। न शैतान को दण्ड, न अपने भक्तों को बचा सकता है और न दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतान ने सब को भयभीत कर रक्खा है। और ईसाइयों का ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है। जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान से क्यों कराता? ।।६१।।

उपदेश की पुस्तक

६२-हां! अन्तःकरण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है।। और मैंने बुद्धि और बौड़ाहपन और मूढ़ता जान्ने को मन लगाया। मैंने जान लिया कि यह भी मन

का झंझट है।। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दुःख में बढ़ता है।। -जन उ० प० १। आ० १६। १७। १८।।

(समीक्षक) अब देखिये ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं उनको दो मानते हैं। और बुद्धि वृद्धि में शोक और दुःख मानना विना अविद्वानों के ऐसा लेख कौन कर सकता है? इसलिये यह बाइबल ईश्वर की बनाई तो क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है।।६२।।

यह थोड़ा सा तौरेत जबूर के विषय में लिखा। इसके आगे कुछ मत्तीरचित आदि इञ्जील के विषय में लिखा जाता है कि जिसको ईसाई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं। जिसका नाम इञ्जील रक्खा है उसकी परीक्षा थोड़ी सी लिखते हैं कि यह कैसी है।

मत्ती रचित इञ्जील

६३-यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ-उसकी माता मरियम की यूसफ से मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठे होने के पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है।। देखो परमेश्वर के एक दूत ने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा, हे दाऊद के सन्तान यूसफ ! तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लाने से मत डर क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो पवित्र आत्मा से है।।

-इंन प० १। आ० १८। २०।।

(समीक्षक) इन बातों को कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। इन बातों का मानना मूर्ख मनुष्य जंगलियों का काम है; सभ्य विद्वानों का नहीं। भला ! जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है? जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पलटा करे तो उसकी आज्ञा को कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम न रहै। ऐसे तो जिस-जिस कुमारिका के गर्भ रह जाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है और झूठ मूठ कह दे कि परमेश्वर के दूत ने मुझ को स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्मा की ओर से है। जैसा यह असम्भव प्रपञ्च रचा है वैसा ही सूर्य्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी पुराणों में असम्भव लिखा है। ऐसी-ऐसी बातों को आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोग मान कर भ्रमजाल में गिरते हैं। यह ऐसी बात हुई होगी कि किसी पुरुष के साथ समागम होने से गर्भवती मरियम हुई होगी। उसने वा किसी दूसरे ने ऐसी असम्भव बात उड़ा दी होगी कि इस में गर्भ ईश्वर की ओर से है।।६३।।

६४-तब आत्मा यीशु को जंगल में ले गया कि शैतान से उसकी परीक्षा की जाय।। वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ।।

तब परीक्षा करनेहारे ने कहा कि जो तू ईश्वर का पुत्र है तो कह दे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें।। -इंन मत्ती प० ४। आ० १। २। ३।।
(समीक्षक) इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं। क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतान से क्यों कराता? स्वयं जान लेता। भला ! किसी ईसाई को आज कल चालीस रात चालीस दिन भूखा रक्खें तो कभी बच सकेगा? और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वर का बेटा और न कुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी। नहीं तो शैतान के सामने पत्थर की रोटियां क्यों न बना देता? और आप भूखा क्यों रहता? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वर ने पत्थर बनाये हैं उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता और ईश्वर भी पूर्वकृत नियम को उलटा नहीं कर सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ और उसके सब काम बिना भूल चूक के हैं।।६४।।
६५-उसने उनसे कहा मेरे पीछे आओ मैं तुमको मनुष्यों के मछुवे बनाऊंगा।। वे तुरन्त जालों को छोड़ के उसके पीछे हो लिये। -इंन मत्ती प० ४। आ० १९। २०।।
(समीक्षक) विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो तौरेत में दश आज्ञाओं में लिखा है कि **'सन्तान लोग अपने माता पिता की सेवा और मान्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े'** सो ईसा ने न अपने माता पिता की सेवा की और दूसरों को भी माता पिता की सेवा से छुड़ाये, इसी अपराध से चिरंजीवी न रहा। और यह भी विदित हुआ कि ईसा ने मनुष्यों के फंसाने के लिये एक मत चलाया है कि जाल में मच्छी के समान मनुष्यों को स्वमत जाल में फंसाकर अपना प्रयोजन साधें। जब ईसा ही ऐसा था तो आज कल के पादरी लोग अपने जाल में मनुष्यों को फंसावें तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि जैसे बड़ी-बड़ी और बहुत मच्छियों को जाल में फंसाने वाले की प्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है, ऐसे ही जो बहुतों को अपने मत में फंसा ले उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसी से ये लोग जिन्होंने वेद और शास्त्रें को न पढ़ा न सुना उन बिचारे भोले मनुष्यों को अपने जाल में फंसा के उस के मां बाप कुटुम्ब आदि से पृथक़् कर देते हैं। इससे सब विद्वान् आर्यों को उचित है कि स्वयम् इनके भ्रमजाल से बच कर अन्य अपने भोले भाइयों को बचाने में तत्पर रहैं।।६५।।
६६-तब यीशु सारे गालील देश में उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक रोग और हर एक व्याधि को चंगा करता हुआ फिरा किया।। सब रोगियों को जो नाना प्रकार के रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूतग्रस्तों और मृगी वाले अर्द्धांगियों

को उसके पास लाये और उसने उन्हें चंगा किया।। -इंन मत्ती प० ४। आ० २३। २४।।

(समीक्षक) जैसे आजकल पोपलीला निकालने मन्त्र पुरश्चरण आशीर्वाद ताबीज और भस्म की चुटुकी देने से भूतों को निकालना रोगों को छुड़ाना सच्चा हो तो वह इञ्जील की बात भी सच्ची होवे। इस कारण भोले मनुष्यों के भ्रम में फंसाने के लिये ये बातें हैं। जो ईसाई लोग ईसा की बातों को मानते हैं तो यहां के देवी भोपों की बातें क्यों नहीं मानते? क्योंकि वे बातें इन्हीं के सदृश हैं।।६६।।

६७-धन्य वे जो मन में दीन हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।। क्योंकि मैं तुमसे सच कहता हूँ कि जब लों आकाश और पृथिवी टल न जायें तब लों व्यवस्था से एक मात्र अथवा एक बिन्दु बिना पूरा हुए नहीं टलेगा।। इसलिये इन अति छोटी आज्ञाओं में से एक को लोप करे और लोगों को वैसे ही सिखावे वह स्वर्ग के राज्य में सब से छोटा कहावेगा।। -इंन मत्ती प० ५। आ० ३। १८। १९।।

(समीक्षक) जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिये। इसलिये जितने दीन हैं वे सब स्वर्ग को जावेंगे तो स्वर्ग में राज्य का अधिकार किसको होगा। अर्थात् परस्पर लड़ाई-भिड़ाई करेंगे और राज्यव्यवस्था खण्ड-बण्ड हो जायेगी। और दीन के कहने से जो कंगले लोगे, तब तो ठीक नहीं। जो निरभिमानी लोगे तो भी ठीक नहीं; क्योंकि दीन और निर् अभिमान का एकार्थ नहीं। किन्तु जो मन में दीन होता है उसको सन्तोष कभी नहीं होता इसलिये यह बात ठीक नहीं। जब आकाश पृथिवी टल जायें तब व्यवस्था भी टल जायेगी ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्यों की होती है; सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं। और यह एक प्रलोभन और भयमात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्ग में सब से छोटा गिना जायेगा।।६७।।

६८-हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे।। अपने लिए पृथिवी पर धन का संचय मत करो।। -इंन म० प० ६। आ० ११। १९।।

(समीक्षक) इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ है उस समय लोग जंगली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था। इसी से तो दिन भर की रोटी की प्राप्ति के लिये ईश्वर की प्रार्थना करता और सिखलाता है। जब ऐसा है तो ईसाई लोग धन संचय क्यों करते हैं? उनको चाहिये कि ईसा के वचन से विरुद्ध न चल कर सब दान पुण्य करके दीन हो जायें।।६८।।

६९-हर एक जो मुझ से हे प्रभु हे प्रभु कहता है स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा।। -इंन म० प० ७। आ० २१।।

(समीक्षक) अब विचारिये! बड़े-बड़े पादरी बिशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईसा का वचन सत्य है ऐसा समझें तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें। यदि इस बात को न मानेंगे तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे।।६९।।

७०-उस दिन में बहुतेरे मुझ से कहेंगे।। तब मैं उनसे खोल के कहूँगा मैंने तुम को कभी नहीं जाना। हे कुकर्म्म करनेहारो! मुझ से दूर होओ।।
-इंन म० प० ७। आ० २२। २३।।

(समीक्षक) देखिये! ईसा जंगली मनुष्यों को विश्वास कराने के लिए स्वर्ग में न्यायाधीश बनना चाहता था। यह केवल भोले मनुष्यों को प्रलोभन देने की बात है।।७०।।

७१-और देखो एक कोढ़ी ने आ उसको प्रणाम कर कहा हे प्रभु ! जो आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं।। यीशु ने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा मैं तो चाहता हूँ शुद्ध हो जा और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध हो गया।।
-इंन म० प० ८। आ० २। ३।।

(समीक्षक) ये सब बातें भोले मनुष्यों के फंसाने की हैं। क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या सृष्टिक्रमविरुद्ध बातों को सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदि की बातें जो पुराण और भारत में अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दी। बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़ा-टुकड़ा कर जानवर मच्छियों को खिला दिया, फिर भी शुक्राचार्य्य ने जीता कर दिया। पश्चात् कच को मार कर शुक्राचार्य्य को खिला दिया फिर उसको पेट में जीता कर बाहर निकाला। आप मर गया उसको कच ने जीता किया। कश्यप ऋषि ने मनुष्यसहित वृक्ष को तक्षक से भस्म हुए पीछे पुनः वृक्ष और मनुष्य को जिला दिया। धन्वन्तरि ने लाखों मुर्दे जिलाये। लाखों कोढ़ी आदि रोगियों को चंगा किया। लाखों अन्वमे और बहिरों को आंख और कान दिये इत्यादि कथा को मिथ्या क्यों कहते हैं? जो उक्त बातें मिथ्या हैं तो ईसा की बातें मिथ्या क्यों नहीं? जो दूसरे की बातों को मिथ्या और अपनी झूठी को सच्ची कहते हैं तो हठी क्यों नहीं। इसलिये ईसाइयों की बातें केवल हठ और लड़कों के समान हैं।।७१।।

७२-तब दो भूतग्रस्त मनुष्य कबरस्थान में से निकलते हुए उससे आ मिले। जो यहां लों अतिप्रचण्ड थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जा सकता था।। और देखो उन्होंने चिल्ला के कहा हे यीशु ईश्वर पुत्र ! आपको हम से क्या काम, क्या आप समय के आगे हमें पीड़ा देने को यहां आये हैं।। सो भूतों ने उससे विनती कर

कहा जो आप हमें निकालते हैं तो सूअरों के भफ़ुण्ड में पैठने दीजिये।। उसने उनसे कहा जाओ और वे निकल के सूअरों के भफ़ुण्ड में पैठे।। और देखो सूअरों का सारा झुण्ड कड़ाड़े पर से समुद्र में दौड़ गया और पानी में डूब मरा।।
-इंन म० प० ८। आ० २८। २९। ३१। ३२।।
(समीक्षक) भला! यहां तनिक विचार करें तो ये बातें सब झूठी हैं, क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कबरस्थान से कभी नहीं निकल सकता। वे किसी पर न जाते न संवाद करते हैं। ये सब बातें अज्ञानी लोगों की हैं। जो कि महा जंगली हैं वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं। और उन सूअरों की हत्या कराई। सूअरवालों की हानि करने का पाप ईसा को हुआ होगा। और ईसाई लोग ईसा को पाप क्षमा और पवित्र करने वाला मानते हैं तो उन भूतों को पवित्र क्यों न कर सका? और सूअर वालों की हानि क्यों न भर दी? क्या आजकल के सुशिक्षित ईसाई अंग्रेज लोग इन गपोड़ों को भी मानते होंगे? यदि मानते हैं तो भ्रमजाल में पड़े हैं।।७२।।
७३-देखो ! लोग एक अर्धांगी को जो खटोले पर पड़ा था उस पास लाये और यीशु ने उनका विश्वास देख के उस अर्धांगी से कहा हे पुत्र ! ढाढस कर, तेरे पाप क्षमा किये गये हैं।। मैं धर्मियों को नहीं परन्तु पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने आया हूँ।। -इंन म० प० ९। आ० २। १३।।
(समीक्षक) यह भी बात वैसी ही असम्भव है जैसी पूर्व लिख आये हैं और जो पाप क्षमा करने की बात है वह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देकर फंसाना है। जैसे दूसरे के पिये मद्य, भांग अफीम खाये का नशा दूसरे को नहीं प्राप्त हो सकता वैसे ही किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता किन्तु जो करता है वही भोगता है, यही ईश्वर का न्याय है। यदि दूसरे का किया पाप-पुण्य दूसरे को प्राप्त होवे अथवा न्यायावमीश स्वयं ले लेवें वा कर्त्ताओं ही को यथायोग्य फल ईश्वर न देवे तो वह अन्यायकारी हो जावे। देखो ! धर्म ही कल्याणकारक है; ईसा वा अन्य कोई नहीं। और धर्मात्माओं के लिये ईसा की कुछ आवश्यकता भी नहीं और न पापियों के लिये क्योंकि पाप किसी का नहीं छूट सकता।।७३।।
७४-यीशु ने अपने बारह शिष्यों को अपने पास बुला के उन्हें अशुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हर एक रोग और हर एक व्याधि को चंगा करें।। बोलनेहारे तो तुम नहीं हो परन्तु तुम्हारे पिता का आत्मा तुम में बोलता है।। मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवाने को नहीं परन्तु खड्ग चलवाने आया हूँ।। मैं मनुष्य को उसके पिता से और बेटी को उसकी मां से और

पतोहू को उसकी सास से अलग करने आया हूँ।। मनुष्य के घर ही के लोग उसके वैरी होंगे।। -इंन म० प० १०। आ० १। २०। ३४। ३५। ३६।।
(समीक्षक) ये वे ही शिष्य हैं जिन में से एक ३०) रुपये के लोभ पर ईसा को पकड़ावेगा और अन्य बदल कर अलग-अलग भागेंगे। भला ! ये बातें जब विद्या ही से विरुद्ध हैं कि भूतों का आना वा निकालना, विना ओषधि वा पथ्य के व्याधियों का छूटना सृष्टिक्रम से असम्भव है। इसलिए ऐसी-ऐसी बातों का मानना अज्ञानियों का काम है। यदि जीव बोलनेहारे नहीं, ईश्वर बोलनेहारा है तो जीव क्या काम करते हैं? और सत्य वा मिथ्याभाषण का फल सुख वा दुःख को ईश्वर ही भोगता होगा, यह भी एक मिथ्या बात है। और जैसा ईसा फूट कराने और लड़ाने को आया था वही आज कल कलह लोगों में चल रहा है। यह कैसी बड़ी बुरी बात है कि फूट कराने से सर्वथा मनुष्यों को दुःख होता है और ईसाइयों ने इसी को गुरुमन्त्र समझ लिया होगा। क्योंकि एक दूसरे की फूट ईसा ही अच्छी मानता था तो ये क्यों नहीं मानते होंगे? यह ईसा ही का काम होगा कि घर के लोगों के शत्रु घर के लोगों को बनाना, यह श्रेष्ठ पुरुष का काम नहीं।।७४।।
७५-तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं। उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियां।। तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी।। और उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को धन्य मान के तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया।। सो सब खा के तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भरे उठाये।। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे।।
-इंन म० प० १५। आ० ३४। ३५। ३६। ३७। ३८।।
(समीक्षक) अब देखिये ! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियां कहां से आ गईं? यदि ईसा में ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था? अपने लिये मिट्टी पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग, रोटियां क्यों न बना लीं? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसे छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं वैसे ही ये भी हैं।।७५।।
७६-और तब वह हर एक मनुष्य को उसके कार्य्य के अनुसार फल देगा।। -इंन म० प० १६। आ० २७।।

(समीक्षक) जब कर्मानुसार फल दिया जायेगा तो ईसाइयों का पाप क्षमा होने का उपदेश करना व्यर्थ है और वह सच्चा हो तो यह झूठा होवे। यदि कोई कहे कि क्षमा करने के योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करने के योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं यह भी ठीक नहीं। क्योंकि सब कर्मों के फल यथायोग्य देने ही से न्याय और पूरी दया होती है।।७६।।

७७-हे अविश्वासी और हठीले लोगो।। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ यदि तुमको राई के एक दाने के तुल्य विश्वास होय तो तुम इस पहाड़ से जो कहोगे कि यहाँ से वहां चला जा, वह जायेगा और कोई काम तुम से असाध्य नहीं होगा।।

-इंन म० प० १७। आ० १७। २०।।

(समीक्षक) अब जो ईसाई लोग उपदेश करते फिरते हैं कि 'आओ हमारे मत में क्षमा कराओ मुक्ति पाओ' आदि, वह सब मिथ्या है। क्योंकि जो ईसा में पाप छुड़ाने विश्वास जमाने और पवित्र करने का सामर्थ्य होता तो अपने शिष्यों के आत्माओं को निष्पाप, विश्वासी, पवित्र क्यों न कर देता? जो ईसा के साथ-साथ घूमते थे जब उन्हीं को शुद्ध, विश्वासी और कल्याण न कर सका तो वह मरे पर न जाने कहां है? इस समय किसी को पवित्र नहीं कर सकेगा। जब ईसा के चेले राई भर विश्वास से रहित थे और उन्हीं ने यह इञ्जील पुस्तक बनाई है तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि जो अविश्वासी, अपवित्रत्मा, अधर्मी मनुष्यों का लेख होता है उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्य का काम नहीं। और इसी से यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसा का यह वचन सच्चा है तो किसी ईसाई में एक राई के दाने के समान विश्वास अर्थात् ईमान नहीं है जो कोई कहे कि हम में पूरा वा थोड़ा विश्वास है तो उससे कहना कि आप इस पहाड़ को मार्ग में से हटा देवें। यदि उनके हटाने से हट जाये तो भी पूरा विश्वास नहीं किन्तु एक राई के दाने के बराबर है और जो न हटा सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास, ईमान अर्थात् धर्म का ईसाइयों में नहीं है। यदि कोई कहे कि यहां अभिमान आदि दोषों का नाम पहाड़ है तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जो ऐसा हो तो मुर्दे, अन्धे, कोढ़ी, भूतग्रस्तों को चंगा करना भी आलसी, अज्ञानी, विषयी और भ्रान्तों को बोध करके सचेत कुशल किया होगा। जो ऐसा मानें तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जो ऐसा होता तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सकता? इसलिए असम्भव बात कहना ईसा की अज्ञानता का प्रकाश करता है। भला ! जो कुछ भी ईसा में विद्या होती तो ऐसी अटाटूट जंगलीपन की बात क्यों कह देता? तथापि **'यत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते।'** जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो तो उस देश में एरण्ड का वृक्ष ही सब

से बड़ा और अच्छा गिना जाता है वैसे महाजंगली देश में ईसा का भी होना ठीक था। पर आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है।।७७।।
७८-मैं तुम्हें सच कहता हूँ जो तुम मन न फिराओ और बालकों के समान न हो जाओ तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने न पाओगे।।
-इंन म० प० १८। आ० ३।।
(समीक्षक) जब अपनी ही इच्छा से मन का फिराना स्वर्ग का कारण और न फिराना नरक का कारण है तो कोई किसी का पाप पुण्य कभी नहीं ले सकता ऐसा सिद्ध होता है। और बालक के समान होने के लेख से विदित होता है कि ईसा की बातें विद्या और सृष्टिक्रम से बहुत सी विरुद्ध थीं। और यह भी उसके मन में था कि लोग मेरी बातों को बालक के समान मान लें। पूछें गाछें कुछ भी नहीं, आंख मीच के मान लेवें। बहुत से ईसाइयों की बालबुद्धिवत् चेष्टा है। नहीं तो ऐसी युक्ति, विद्या से विरुद्ध बातें क्यों मानते? और यह भी सिद्ध हुआ जो ईसा आप विद्याहीन बालबुद्धि न होता तो अन्य को बालवत् बनने का उपदेश क्यों करता? क्योंकि जो जैसा होता है वह दूसरे को भी अपने सदृश बनाना चाहता ही है।।७८।।
७९-मैं तुम से सच कहता हूँ, धनवान् को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा।। फिर भी मैं तुम से कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान् के प्रवेश करने से ऊँट का सूई के नाके में से जाना सहज है।।
-इंन म० प० १९। आ० २३। २४।।
(समीक्षक) इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उस की प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे, इसलिये यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे बुरे होते हैं। जो कोई अच्छा काम करे वह अच्छा और बुरा करे वह बुरा फल पाता है। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था; सर्वत्र नहीं। जब ऐसा हो तो वह ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है। पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा यह कहना केवल अविद्या की बात है। और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ््य हैं क्या वे सब नरक ही में जायेंगे? और दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे? भला तनिक सा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ््यों के पास होती है उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ््य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें तो दरिद्र नीच गति में पड़े रहें और धनाढ््य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं।।७९।।
८०-यीशु ने उनसे कहा मैं तुम से सच कहता हूँ कि नई सृष्टि में जब

मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिहासन पर बैठेगा तब तुम भी जो मेरे पीछे हो लिये हो; बारह सिहासनों पर बैठ के इस्राएल के बारह कुलों का न्याय करोगे।। जिस किसी ने मेरे नाम के लिये घरों वा भाइयों वा बहिनों वा पिता वा माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमि को त्यागा है सो सौ गुणा पावेगा और अनन्त जीवन का अधिकारी होगा।। -इंन म० प० १९। आ० २८। २९।।

(समीक्षक) अब देखिये ईसा के भीतर की लीला! मेरे जाल से मरे पीछे भी लोग न निकल जायें और जिसने ३०) रुपये के लोभ से अपने गुरु को पकड़ा, मरवाया वैसे पापी भी इसके पास सिहासन पर बैठेंगे और इस्राएल के कुल का पक्षपात से न्याय ही न किया जायेगा किन्तु उनके सब गुनाह माफ और अन्य कुलों का न्याय करेंगे। अनुमान होता है इसी से ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं। ऐसा ही ईसा के स्वर्ग का भी न्याय होगा और इससे बड़ा दोष आता है क्योंकि एक सृष्टि की आदि में मरा और एक 'कयामत' की रात के निकट मरा। एक तो आदि से अन्त तक आशा ही में पड़ा रहा कि कब न्याय होगा ? और दूसरे का उसी समय न्याय हो गया। यह कितना बड़ा अन्याय है और जो नरक में जायगा सो अनन्त काल तक नरक भोगे और जो स्वर्ग में जायेगा वह सदा स्वर्ग भोगेगा यह भी बड़ा अन्याय है। क्योंकि अन्त वाले साधन और कर्मों का फल भी अन्त वाला होना चाहिये। और तुल्य पाप व पुण्य दो जीवों का भी नहीं हो सकता। इसीलिये तारतम्य से अधिक न्यून सुख दुःख वाले अनेक स्वर्ग और नरक हों तभी सुख दुःख भोग सकते हैं। सो ईसाइयों के पुस्तक में कहीं व्यवस्था नहीं। इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत वा ईसा ईश्वर का बेटा कभी नहीं हो सकता। यह बड़े अनर्थ की बात है कि कदापि किसी के मां बाप सौ सौ नहीं हो सकते किन्तु एक की एक मां और एक ही बाप होता है। अनुमान है कि मुसलमानों ने एक को ७२ स्त्रियाँ बहिश्त में मिलती हैं; लिखा है।।८०।।

८१-भोर को जब वह नगर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी।। और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देख के वह उस के पास आया परन्तु उस में और कुछ न पाया केवल पत्ते। और उसको कहा तुझ में फिर कभी फल न लगेंगे। इस पर गूलर का पेड़ तुरन्त सूख गया।। -इंन म० प० २१। आ० १८। १९।।

(समीक्षक) सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त क्षमान्वित और क्रोधादि दोषरहित था। परन्तु इस बात को देख क्रोधी, ऋतु का ज्ञानरहित

ईसा था और वह जंगली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्त्तता था। **भला ! जो वृक्ष जड़ पदार्थ है।** उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया। उसके शाप से तो न सूखा होगा किन्तु कोई ऐसी औषधि डालने से सूख गया हो तो आश्चर्य नहीं।।८१।।

८२-उन दिनों के क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अन्धियारा हो जायगा और चांद अपनी ज्योति न देगा! तारे आकाश से गिर पडें़गे और आकाश की सेना डिग जायेगी।। -इंन म० प० २४। आ० २९।।

(समीक्षक) वाह जी ईसा! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना आपने जाना और आकाश की सेना कौन सी है जो डिग जायेगी? जो कभी ईसा थोड़ी
भी विद्या पढ़ता तो अवश्य जान लेता कि ये तारे सब भूगोल हैं क्योंकर गिरेंगे। इससे विदित होता है कि ईसा बढ़ई के कुल में उत्पन्न हुआ था। सदा लकड़े चीरना, छीलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा। जब तरंग उठी कि मैं भी इस जंगली देश में पैगम्बर हो सकूंगा; बातें करने लगा। कितनी बातें उस के मुख से अच्छी भी निकलीं और बहुत सी बुरी। वहां के लोग जंगली थे; मान बैठे। जैसा आज कल यूरोप देश उन्नति युक्त है वैसा पूर्व होता तो ईसा की सिद्धाई कुछ भी न चलती। अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोल मत को न छोड़ कर सर्वथा सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते; यही इनमें न्यूनता है।।८२।।

८३-आकाश और पृथिवी टल जायेंगे परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी।।
-इंन म० प० २४। आ० ३५।।

(समीक्षक) यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है। भला ! आकाश हिल कर कहाँ जायगा? जब आकाश अति सूक्ष्म होने से नेत्र से दीखता ही नहीं तो इसका हिलना कौन देख सकता है? और अपने मुख से अपनी बड़ाई करना अच्छे मनुष्यों का काम नहीं।।८३।।

८४-तब वह उनसे जो बाईं ओर हैं कहेगा हे स्रापित लोगो ! मेरे पास से उस अनन्त आग में जाओ जो शैतान और उसके दूतों के लिये तैयार की गई है।। -इंन म० प० २५। आ० ४१।।

(समीक्षक) भला यह कितनी बड़ी पक्षपात की बात है! जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग और जो दूसरे हैं उनको अनन्त आग में गिराना। परन्तु जब आकाश ही न रहेगा लिखा तो अनन्त आग नरक बहिश्त कहाँ रहेगी? जो शैतान और उसके दूतों को ईश्वर न बनाता तो इतनी नरक की तैयारी क्यों करनी पड़ती? और एक शैतान ही ईश्वर के भय से न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है? क्योंकि

उसी का दूत होकर बागी हो गया और ईश्वर उसको प्रथम ही पकड़ कर बन्दीगृह में न डाल सका, न मार सका, पुनः उसकी ईश्वरता क्या? जिसने ईसा को भी चालीस दिन दुःख दिया। ईसा भी उसका कुछ न कर सका तो ईश्वर का बेटा होना व्यर्थ हुआ। इसलिये ईसा ईश्वर का न बेटा और न बाइबल का ईश्वर, ईश्वर हो सकता है।।८४।।

८५-तब बारह शिष्यों में से एक यिहूदा इस्करियोती नाम एक शिष्य प्रधान याजकों के पास गया।। और कहा जो मैं यीशु को आप लोगों के हाथ पकड़वाऊं तो आप लोग मुझे क्या देंगे ? उन्होंने उसे तीस रुपये देने को ठहराया।। -इंन म० प० २६।। आ० १४। १५।।

(समीक्षक) अब देखिये! ईसा की सब करामात और ईश्वरता यहां खुल गई। क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था वह भी उसके साक्षात् संग से पवित्रत्मा न हुआ तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रत्मा क्या कर सकेगा ? और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसे में कितने ठगाये जाते हैं क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कल्याण न किया वह मरे पीछे किसी का कल्याण क्या कर सकेगा।।८५।।

८६-जब वे खाते थे तब यीशु ने रोटी लेके धन्यवाद किया और उसे तोड़ के शिष्यों को दिया और कहा लेओ खाओ यह मेरा देह है।। और उसने कटोरा ले के धन्य माना और उनको देके कहा तुम इससे पीओ।। क्योंकि यह मेरा लोहू अर्थात् नये नियम का लोहू है।। -इंन म० प० २६। आ० २६। २७। २८।।

(समीक्षक) भला यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा? विना अविद्वान् जंगली मनुष्य के, शिष्यों से खाने की चीज को अपने मांस और पीने की चीजों को लोहू नहीं कह सकता। और इसी बात को आजकल के ईसाई लोग प्रभु-भोजन कहते हैं अर्थात् खाने पीने की चीजों में ईसा के मांस और लोहू की भावना कर खाते पीते हैं; यह कितनी बुरी बात है? जिन्होंने अपने गुरु के मांस लोहू को भी खाने पीने की भावना से न छोड़ा तो और को कैसे छोड़ सकते हैं? ।।८६।।

८७-और वह पितर को और जबदी के दोनों पुत्रें को अपने संग ले गया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा।। तब उसने उनसे कहा, मेरा मन यहां लों अति उदास है कि मैं मरने पर हूँ।। और थोड़ा आगे बढ़ के वह मुंह के बल गिरा और प्रार्थना की, हे मेरे पिता ! जो हो सके तो यह कटोरा मेरे पास से टल जाय।। -इंन म० प० २६। आ० ३७। ३८। ३९।।

(समीक्षक) देखो ! जो वह केवल मनुष्य न होता, ईश्वर का बेटा और त्रिकालदर्शी और विद्वान् होता तो ऐसी अयोग्य चेष्टा न करता। इससे स्पष्ट

विदित होता है कि यह प्रपञ्च ईसा ने अथवा उसके चेलों ने झूठमूठ बनाया है कि ईश्वर का बेटा भूत भविष्यत् का वेत्ता और पाप क्षमा का कर्त्ता है। इससे समझना चाहिये यह केवल साधारण सूधा सच्चा अविद्वान् था, न विद्वान्, न योगी, न सिद्ध था।।८७।।

८८-वह बोलता ही था कि देखो यिहूदा जो बाहर शिष्यों में से एक था; आ पहुंचा। और लोगों के प्रधान याजकों और प्राचीनों की ओर से बहुत लोग खड्ग और लाठियां लिये उसके संग।। यीशु के पकड़वानेहारे ने उन्हें यह पता दिया था जिसको मैं चूमूं उसको पकड़ो।। और वह तुरन्त यीशु पास आ बोला, हे गुरु ! प्रणाम और उसको चूमा।। तब उन्होंने यीशु पर हाथ डाल के उसे पकड़ा।। तब सब शिष्य उसे छोड़ के भागे।। अन्त में दो झूठ साक्षी आके बोले, इसने कहा कि मैं ईश्वर का मन्दिर ढहा सकता हूँ और तीन दिन में फिर बना सकता हूं।। तब महायाजक ने खड़ा हो यीशु से कहा तू कुछ उत्तर नहीं देता है ये लोग तेरे विरुद्ध क्या साक्षी देते हैं।। परन्तु यीशु चुप रहा इस पर महायाजक ने उससे कहा मैं तुझे जीवते ईश्वर की क्रिया देता हूँ। हम से कह तू ईश्वर का पुत्र ख्रीष्ट है कि नहीं।। यीशु उससे बोला तू तो कह चुका।। तब महायाजक ने अपने वस्त्र फाड़ के कहा यह ईश्वर की निन्दा कर चुका है अब हमें साक्षियों का और क्या प्रयोजन? देखो तुमने अभी उसके मुख से ईश्वर की निन्दा सुनी है।। तुम क्या विचार करते हो? तब उन्होंने उत्तर दिया वह वध के योग्य है।। तब उन्होंने उसके मुंह पर थूंका और उसे घूंसे मारे। औरों ने थपेड़े मार के कहा-हे ख्रीष्ट ! हमसे भविष्यद्वाणी बोल किसने तुझे मारा।। पितर बाहर अंगने में बैठा था और एक दासी उसके पास आके बोली तू भी यीशु गालीली के संग था।। उसने सबों के सामने मुकर के कहा मैं नहीं जानता तू क्या कहती है।। जब वह बाहर डेवढ़ी में गया तो दूसरी दासी ने उसे देख के जो लोग वहां थे उनसे कहा यह भी यीशु नासरी के संग था।। उसने क्रिया खाके फिर मुकरा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूँ।। तब वह धिक्कार देने और क्रिया खाने लगा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूँ।।

-इंन म० प० २६। आ० ४७। ४८। ४९। ५०। ६१। ६२। ६३। ६४। ६५। ६६। ६७। ६८। ६९। ७०। ७१। ७२। ७४।।

(समीक्षक) अब देख लीजिये कि जिसका इतना भी सामर्थ्य वा प्रताप नहीं था कि अपने चेले का भी दृढ़ विश्वास करा सके। और वे चेले चाहे प्राण भी क्यों न जाते तो भी अपने गुरु को लोभ से न पकड़ाते, न मुकरते, न मिथ्याभाषण

करते, न झूठी क्रिया खाते। और ईसा भी कुछ करामाती नहीं था, जैसा तौरेत में लिखा है कि-लूत के घर पर पाहुनों को बहुत से मारने को चढ़ आये थे। वहां ईश्वर के दो दूत थे उन्होंने उन्हीं को अन्धा कर दिया। यद्यपि वह भी बात असम्भव है तथापि ईसा में तो इतना भी सामर्थ्य न था और आज कल कितना भड़वा उसके नाम पर ईसाइयों ने बढ़ा रक्खा है। भला ! ऐसी दुर्दशा से मरने से आप स्वयं जूझ वा समाधि चढ़ा अथवा किसी प्रकार से प्राण छोड़ता तो अच्छा था परन्तु वह बुद्धि विना विद्या के कहां से उपस्थित हो? वह ईसा यह भी कहता है कि-।।८८।।

८९-मैं अभी अपने पिता से विनती नहीं करता हूँ और वह मेरे पास स्वर्गदूतों की बारह सेनाओं से अधिक पहुँचा न देगा? -इंन म० प० २६। आ० ५३।।

(समीक्षक) धमकाता जाता, अपनी और अपने पिता की बड़ाई भी करता जाता पर कुछ भी नहीं कर सकता। देखो आश्चर्य की बात ! जब महायाजक ने पूछा था कि ये लोग तेरे विरुद्ध साक्षी देते हैं इसका उत्तर दे तो ईसा चुप रहा। यह भी ईसा ने अच्छा न किया क्योंकि जो सच था वह वहां अवश्य कह देता तो भी अच्छा होता। ऐसी बहुत सी अपने घमण्ड की बातें करनी उचित न थीं और जिन्होंने ईसा पर झूठा दोष लगाकर मारा उनको भी उचित न था। क्योंकि ईसा का उस प्रकार का अपराध नहीं था जैसा उसके विषय में उन्होंने किया। परन्तु वे भी तो जंगली थे। न्याय की बातों को क्या समझें? यदि ईसा झूठ-मूठ ईश्वर का बेटा न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न वर्त्तते तो दोनों के लिये उत्तम काम था। परन्तु इतनी विद्या, धर्म्मात्मता और न्यायशीलता कहां से लावें? ।।८९।।

९०-यीशु अध्यक्ष के आगे खड़ा हुआ और अध्यक्ष ने उससे पूछा क्या तू यहूदियों का राजा है? यीशु ने उनसे कहा आप ही तो कहते हैं।। जब प्रधान याजक और प्राचीन लोग उस पर दोष लगाते थे तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।। तब पिलात ने उससे कहा क्या तू नहीं सुनता कि ये लोग तेरे विरुद्ध कितनी साक्षी देते हैं।। परन्तु उसने एक बात का भी उसको उत्तर न दिया। यहां लों कि अध्यक्ष ने बहुत अचम्भा किया।। पिलात ने उनसे कहा तो मैं यीशु से जो ख्रीष्ट कहावता है क्या करूं।। सभों ने उससे कहा वह क्रूश पर चढ़ाया जावे।। और यीशु को कोड़े मार के क्रूश पर चढ़ाया जाने को सौंप दिया।। तब अध्यक्ष के योद्धाओं ने यीशु को भवन में ले जा के सारी पलटन उस पास इकट्ठी की।। और उन्होंने उसका वस्त्र उतार के उसे लाल बाना पहिराया।। और कांटों का मुकुट गूँथ के

उसके शिर पर रक्खा और उसके दाहिने हाथ में नर्कट दिया।। और उसके आगे घुटने टेक के यह कह के उससे ठट्ठा किया हे यहूदियों के राजा प्रणाम।। और उन्होंने उस पर थूका और उस नर्कट को ले उसके शिर पर मारा।। जब वे उससे ठट्ठा कर चुके तब उससे वह बागा उतार के उसी का वस्त्र पहिरा के उसे क्रूश पर चढ़ाने को ले गये।। जब वे एक स्थान पर जो गलगथा था अर्थात् खोपड़ी का स्थान कहाता है; पहुँचे।। तब उन्होंने सिरके में पित्त मिला के उसे पीने को दिया परन्तु उसने चीख के पीना न चाहा।। तब उन्होंने उसको क्रूश पर चढ़ाया।। और उन्होंने

उसका दोषपत्र उसके शिर के ऊपर लगाया।। तब दो डाकू एक दाहिनी ओर और दूसरा बाईं ओर उसके संग क्रूशों पर चढ़ाये गये।। जो लोग उधर से आते जाते थे उन्होंने अपने शिर हिला के और यह कह के उसकी निन्दा की।। हे मन्दिर के ढहानेहारे अपने को बचा, जो तू ईश्वर का पुत्र है तो क्रूश पर से उतर आ।। इसी रीति से प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों और प्राचीनों के संगियों ने ठट्ठा कर कहा।। उसने औरों को बचाया अपने को बचा नहीं सकता है, जो वह इस्राएल का राजा है तो क्रूश पर से अब उतर आवे और हम उसका विश्वास करेंगे।। वह ईश्वर पर भरोसा रखता है, यदि ईश्वर उसे चाहता है तो उसको बचावे क्योंकि उसने कहा मैं ईश्वर का पुत्र हूँ।। जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये उन्होंने भी इसी रीति से उसकी निन्दा की।। दो प्रहर से तीसरे प्रहर लों सारे देश में अन्धकार हो गया।। तीसरे प्रहर के निकट यीशु ने बड़े शब्द से पुकार के कहा 'एली एली लामा सबक्तनी' अर्थात् हे मेरे ईश्वर! हे मेरे ईश्वर! तूने क्यों मुझे त्यागा है।। जो लोग वहां खड़े थे उनमें से कितनों ने यह सुनके कहा, वह एलीयाह को बुलाता है।। उनमें से एक ने तुरन्त दौड़ के इस्पंज लेके सिरके में भिगोया और नल पर रख के उसे पीने को दिया।। तब यीशु ने फिर बड़े शब्द से पुकार के प्राण त्यागा।। -इंन म० प० २७। आ० ११। १२। १३। १४। २२। २३। २४। २६। २७। २८।२९। ३०।
३१। ३३। ३४। ३५। ३७। ३८। ३८। ३९। ४०। ४१। ४२। ४३। ४४। ४५। ४६। ४७। ४८। ५०।।

(समीक्षक) सर्वथा यीशु के साथ उन दुष्टों ने बुरा काम किया। परन्तु यीशु का भी दोष है। क्योंकि ईश्वर का न कोई पुत्र न वह किसी का बाप है। क्योंकि वह किसी का बाप होवे तो किसी का श्वसुर, श्याला सम्बन्धी आदि भी होवे। और जब अध्यक्ष ने पूछा था तब जैसा सच था; उत्तर देना था। और यह ठीक है कि जो-जो आश्चर्य-कर्म्म प्रथम किये हुए सच्चे होते तो अब भी क्रूश पर से उतर कर

सब को अपने शिष्य बना लेता। और जो वह ईश्वर का पुत्र होता तो ईश्वर भी उसको बचा लेता। जो वह त्रिकालदर्शी होता तो सिर्के में पित्त मिले हुए को चीख के क्यों छोड़ता। वह पहले ही से जानता होता। और जो वह करामाती होता तो पुकार-पुकार के प्राण क्यों त्यागता? इससे जानना चाहिये कि चाहे कोई कितनी भी चतुराई करे परन्तु अन्त में सच-सच और झूठ-झूठ हो जाता है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि यीशु एक उस समय के जंगली मनुष्यों में से कुछ अच्छा था। न वह करामाती, न वह ईश्वर का पुत्र और न विद्वान् था। क्योंकि जो ऐसा होता तो ऐसा वह दुःख क्यों भोगता? ।।९०।।९१-और देखो, बड़ा भुईंडोल हुआ कि परमेश्वर का एक दूत उतरा और आ के कबर के द्वार पर से पत्थर लुढ़का के उस पर बैठा।। वह यहां नहीं है, जैसे उसने कहा वैसे जी उठा है।। जब वे उसके शिष्यों को सन्देश देने को जाती थीं, देखो यीशु उनसे आ मिला, कहा कल्याण हो और उन्होंने निकट आ, उसके पांव पकड़ के उसको प्रणाम किया।। तब यीशु ने कहा मत डरो, जाके मेरे भाइयों से कह दो वे गालील को जावें और वहां वे मुझे देखेंगे।। ग्यारह शिष्य गालील में उस पर्वत पर गये जो यीशु ने उन्हें बताया था।। और उन्होंने उसे देख के उसको प्रणाम किया पर कितनों का सन्देह हुआ।। यीशु ने उनके पास आ उनसे कहा, स्वर्ग में और पृथिवी पर समस्त अधिकार मुझको दिया गया है।। और देखो मैं जगत् के अन्त लों सब दिन तुम्हारे संग हूँ।। -इंन म० प० २८। आ० २। ६। ९। १०। १६। १७। १८। २०।।

(समीक्षक) यह बात भी मानने योग्य नहीं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्याविरुद्ध है। प्रथम ईश्वर के पास दूतों का होना, उनको जहां-तहां भेजना, ऊपर से उतरना, क्या तहसीलदारी, कलेक्टरी के समान ईश्वर को बना दिया? क्या उसी शरीर से स्वर्ग को गया और जी उठा? क्योंकि उन स्त्रियों ने उसके पग पकड़ के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था? और वह तीन दिन लों सड़ क्यों न गया? और अपने मुख से सब का अधिकारी बनना केवल दम्भ की बात है। शिष्यों से मिलना और उनसे सब बातें करनी असम्भव हैं। क्योंकि जो ये बातें सच हों तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते? और उसी शरीर से स्वर्ग को क्यों नहीं जाते? यह मत्तीरचित्त इञ्जील का विषय हो चुका। अब मार्करचित इञ्जील के विषय में लिखा जाता है।।९१।।

मार्क रचित इञ्जील

९२-यह क्या बढ़ई नहीं है। -इंनमार्क प० ६। आ० ३।।

(समीक्षक) असल में यूसफ बढ़ई था, इसलिये ईसा भी बढ़ई था। कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था। पश्चात् पैगम्बर बनता-बनता ईश्वर का बेटा ही बन गया और जंगली लोगों ने बना लिया तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट कूट फूट फाट करना उसका काम है।।९२।।

लूका रचित इञ्जील

९३-यीशु ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है, कोई उत्तम नहीं है, केवल एक अर्थात् ईश्वर।। -इंन लू० प० १८। आ० १९।।

(समीक्षक) जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहाता है तो ईसाइयों ने पवित्रत्मा पिता और पुत्र तीन कहां से बना लिये? ।।९३।।

९४-तब उसे हेरोद के पास भेजा।। हेरोद यीशु को देख के अति आनन्दित हुआ क्योंकि वह उसको बहुत दिनों से देखने चाहता था इसलिये कि उसके विषय में बहुत सी बातें सुनी थीं और उसका कुछ आश्चर्य कर्म्म देखने की उसको आशा हुई।। उसने उससे बहुत बातें पूछीं परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया।।
-इंन लू० प० २३। आ० ७। ८। ९।।

(समीक्षक) यह बात मत्तीरचित में नहीं है इसलिए ये साक्षी बिगड़ गये। क्योंकि साक्षी एक से होने चाहियें और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो उत्तर देता और करामात भी दिखलाता। इससे विदित होता है कि ईसा में विद्या और करामात कुछ भी न थी।।९४।।

योहन रचित सुसमाचार

९५-आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था।। वह आदि में ईश्वर के संग था।। सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया और जो सृजा गया है कुछ भी उस बिना नहीं सृजा गया। उसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्यों का उजियाला था।। -यो०प० १। आ० १। २। ३। ४।।

(समीक्षक) आदि में वचन विना वक्ता के नहीं हो सकता और जो वचन ईश्वर के संग था तो यह कहना व्यर्थ हुआ। और वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जब वह आदि में ईश्वर के संग था तो पूर्व वचन वा ईश्वर था; यह नहीं घट सकता। वचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती जब तक उसका कारण न हो। और वचन के विना भी चुपचाप रह कर कर्त्ता सृष्टि कर सकता है। जीवन किस में वा क्या था, इस वचन से जीव अनादि मानोगे, जो अनादि है तो आदम के नथुनों में श्वास फूंकना झूठा हुआ और क्या जीवन मनुष्यों ही का उजियाला है; पश्वादि का नहीं? ।।९५।।

९६-और बियारी के समय में जब शैतान शिमोन के पुत्र यिहूदा इस्करियोती के मन में उसे पकड़वाने का मत डाल चुका था।। -यो० प० १३। आ० २।।

(समीक्षक) यह बात सच नहीं। क्योंकि जब कोई ईसाइयों से पूछेगा कि शैतान सब को बहकाता है तो शैतान को कौन बहकाता है? जो कहो शैतान आप से आप बहकता है तो मनुष्य भी आप से आप बहक सकते हैं पुनः शैतान का क्या काम? और यदि शैतान का बनाने और बहकाने वाला परमेश्वर है तो वही शैतान का शैतान ईसाइयों का ईश्वर ठहरा। परमेश्वर ही ने सब को उसके द्वारा बहकाया। भला ऐसे काम ईश्वर के हो सकते हैं? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाइयों का और ईसा ईश्वर का बेटा जिन्होंने बनाये वे शैतान हों तो हों किन्तु न यह ईश्वरकृत पुस्तक, न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा ईश्वर का बेटा हो सकता है।।९६।।

९७-तुम्हारा मन व्याकुल न होवे। ईश्वर पर विश्वास करो और मुझ पर विश्वास करो।। मेरे पिता के घर में बहुत से रहने के स्थान हैं। नहीं तो मैं तुम से कहता मैं तुम्हारे लिये स्थान तैयार करने जाता हूँ।। और जो मैं जाके तुम्हारे लिये स्थान तैयार करूं तो फिर आके तुम्हें अपने यहां ले जाऊंगा कि जहां मैं रहूं तहां तुम भी रहो।। यीशु ने उससे कहा मैं ही मार्ग और सत्य और जीवन हूँ। विना मेरे द्वारा से कोई पिता के पास नहीं पहुँचता है।। जो तुम मुझे जानते तो मेरे पिता को भी जानते।। -यो० प० १४। आ० १। २। ३। ६। ७।।

(समीक्षक) अब देखिये ! ये ईसा के वचन क्या पोपलीला से कमती हैं? जो ऐसा प्रपंच न रचता तो उसके मत में कौन फंसता? क्या ईसा ने अपने पिता को ठेके में ले लिया है? और जो वह ईसा के वश्य है तो पराधीन होने से वह ईश्वर ही नहीं। क्योंकि ईश्वर किसी की सिफारिश नहीं सुनता। क्या ईसा के पहले कोई भी ईश्वर को नहीं प्राप्त हुआ होगा? ऐसा स्थान आदि का प्रलोभन देता और जो अपने मुख से आप मार्ग, सत्य और जीवन बनता है वह सब प्रकार से दम्भी कहाता है। इससे यह बात सत्य कभी नहीं हो सकती।।९७।।

९८-मैं तुमसे सच-सच कहता हूँ जो मुझ पर विश्वास करे। जो काम मैं करता हूँ उन्हें वह भी करेगा और इनसे बड़े काम करेगा।।
-यो० प० १४। आ० १२।।

(समीक्षक) अब देखिये ! जो ईसाई लोग ईसा पर पूरा विश्वास रखते हैं वैसे ही मुर्दे जिलाने आदि का काम क्यों नहीं कर सकते? और जो विश्वास से भी आश्चर्य काम नहीं कर सकते तो ईसा ने भी आश्चर्य कर्म नहीं किये थे

ऐसा निश्चित जानना चाहिये। क्योंकि स्वयम् ईसा ही कहता है कि तुम भी आश्चर्य काम करोगे तो भी इस समय ईसाई एक भी नहीं कर सकता तो किसकी हिये की आंख फूट गई है वह ईसा को मुर्दे जिलाने आदि काम का कर्त्ता मान लेवे।।९८।।

९९-जो अद्वैत सत्य ईश्वर है।। -यो०प० १७। आ० ३।।

(समीक्षक) जब अद्वैत एक ईश्वर है तो ईसाइयों का तीन कहना सर्वथा मिथ्या है।।९९।।

इसी प्रकार बहुत ठिकाने इञ्जील में अन्यथा बातें भरी हैं।

योहन के प्रकाशित वाक्य

अब योहन की अद्भुत बातें सुनो-

१००-और अपने-अपने शिर पर सोने के मुकुट दिये हुए थे।। और सात अग्निदीपक सिहासन के आगे जलते थे जो ईश्वर के सातों आत्मा हैं। और सिहासन के आगे कांच का समुद्र है और सिहासन के आस-पास चार प्राणी हैं जो आगे और पीछे नेत्रें से भरे हैं।। -यो० प्र० प० ४। आ० ४। ५। ६।।

(समीक्षक) अब देखिये ! एक नगर के तुल्य ईसाइयों का स्वर्ग है। और इनका ईश्वर भी दीपक के समान अग्नि है और सोने का मुकुटादि आभूषण धारण करना और आगे पीछे नेत्रें का होना असम्भावित है। इन बातों को कौन मान सकता है? और वहां सिहादि चार पशु भी लिखे हैं।।१००।।

१०१-और मैंने सिहासन पर बैठने हारे के दाहिने हाथ में एक पुस्तक देखा जो भीतर और पीठ पर लिखा हुआ था और सात छापों से उस पर छाप दी हुई थी।। यह पुस्तक खोलने और उसकी छापें तोड़ने योग्य कौन है।। और न स्वर्ग में और न पृथिवी पर न पृथिवी के नीचे कोई वह पुस्तक खोल अथवा उसे देख सकता था।। और मैं बहुत रोने लगा इसलिए कि पुस्तक खोलने और पढ़ने अथवा उसे देखने योग्य कोई नहीं मिला।। -यो० प्र० पर्व० ५। आ० १। २। ३। ४।।

(समीक्षक) अब देखिये ! ईसाइयों के स्वर्ग में सिहासनों और मनुष्यों का ठाठ और पुस्तक कई छापों से बंध किया हुआ जिसको खोलने आदि कर्म करने वाला स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला। योहन का रोना और पश्चात् एक प्राचीन ने कहा कि वही ईसा खोलने वाला है। प्रयोजन यह है कि जिसका विवाह उसका गीत! देखो! ईसा ही के ऊपर सब माहात्म्य झुकाये जाते हैं परन्तु ये बातें केवल कथनमात्र हैं।।१०१।।

१०२-और मैंने दृष्टि की और देखो सिहासन के चारों प्राणियों के बीच में और प्राचीनों के बीच में एक मेम्ना जैसा बंध किया हुआ खड़ा है जिसके सात सींग और सात नेत्र हैं जो सारी पृथिवी में भेजे हुए ईश्वर के सातों आत्मा हैं।।
-यो० प्र० प० ५। आ० ६।।
(समीक्षक) अब देखिये इस योहन के स्वप्न का मनोव्यापार ! उस स्वर्ग के बीच में सब ईसाई और चार पशु तथा ईसा भी है और कोई नहीं! यह बड़ी अद्भुत बात हुई कि यहां तो ईसा के दो नेत्र थे और सींग का नाम भी न था और स्वर्ग में जाके सात सींग और सात नेत्र वाला हुआ ! और वे सातों ईश्वर के आत्मा ईसा के सींग और नेत्र बन गए थे ! हाय ! ऐसी बातों को ईसाइयों
ने क्यों मान लिया? भला कुछ तो बुद्धि काम में लाते।।१०२।।
१०३-और जब उसने पुस्तक लिया तब चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन मेम्ने के आगे गिर पड़े और हर एक के पास वीणा थी और धूप से भरे हुए सोने के पियाले जो पवित्र लोगों की प्रार्थनाएं हैं।। -यो० प्र० प० ५। आ० ८।।
(समीक्षक) भला जब ईसा स्वर्ग में न होगा तब ये बिचारे धूप, दीप, नैवेद्य, आर्ति आदि पूजा किसकी करते होंगे? और यहां प्रोटेस्टेंट ईसाई लोग बुत्परस्ती (मूर्तिपूजा) का खण्डन करते हैं और इनका स्वर्ग बुत्परस्ती का घर बन रहा है।।१०३।।
१०४-और जब मेम्ने ने छापों में से एक को खोला तब मैंने दृष्टि की चारों प्राणियों में से एक को जैसे मेघ गर्जने के शब्द को यह कहते हुए सुना कि आ और देख।। और मैंने दृष्टि की और देखो एक श्वेत घोड़ा है और जो उस पर बैठा है उस पास धनुष् है और उसे मुकुट दिया गया और वह जय करता हुआ और जय करने को निकला।। और जब उसने दूसरी छाप खोली।। दूसरा घोड़ा जो लाल था निकला उसको दिया गया कि पृथिवी पर से मेल उठा देवे।। और जब उसने तीसरी छाप खोली; देखो एक काला घोड़ा है।। और जब उसने चौथी छाप खोली।। और देखो एक पीला सा घोड़ा है और जो उस पर बैठा है उसका नाम मृत्यु है; इत्यादि।। -यो० प्र० प० ६। आ० १। २। ३। ४। ५। ७। ८।।
(समीक्षक) अब देखिये यह पुराणों से भी अधिक मिथ्या लीला है वा नहीं? भला! पुस्तकों के बन्धनों के छापे के भीतर घोड़ा सवार क्योंकर रह सके होंगे? यह स्वप्ने का बरड़ाना जिन्होंने इसको भी सत्य माना है। उनमें अविद्या जितनी कहें उतनी ही थोड़ी है।।१०४।।
१०५-और वे बड़े शब्द से पुकारते थे कि हे स्वामी पवित्र और सत्य! कब लों तू न्याय नहीं करता है और पृथिवी के निवासियों से हमारे लोहू का पलटा नहीं

लेता है।। और हर एक को उजला वस्त्र दिया गया और उनसे कहा गया कि जब लों तुम्हारे संगी दास भी और तुम्हारे भाई जो तुम्हारी नाईं बंध किये जाने पर हैं न पूरे हों तब लों और थोड़ी बेर विश्राम करो।। -यो० प्र० प० ६। आ० १०। ११।।

(समीक्षक) जो कोई ईसाई होंगे वे दौड़े सुपुर्द होकर ऐसे न्याय कराने के लिये रोया करेंगे। जो वेदमार्ग का स्वीकार करेगा उसके न्याय होने में कुछ भी देर न होगी। ईसाइयों से पूछना चाहिये क्या ईश्वर की कचहरी आजकल बन्द है? और न्याय का काम भी नहीं होता? न्यायाधीश निकम्मे बैठे हैं? तो कुछ भी ठीक-ठीक उत्तर न दे सकेंगे। और ईश्वर को भी बहका कर और इनका ईश्वर बहक भी जाता है क्योंकि इनके कहने से भफ़ट इनके शत्रु से पलटा लेने लगता है। और दंशिले स्वभाव वाले हैं कि मरे पीछे स्ववैर लिया करते हैं, शान्ति कुछ भी नहीं। और जहां शान्ति नहीं वहां दुःख का क्या पारावार होगा।।१०५।।

१०६-और जैसे बड़ी बयार से हिलाए जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं, तैसे आकाश के तारे पृथिवी पर गिर पड़े।। और आकाश पत्र की नाईं जो लपेटा जाता है अलग हो गया।। -यो० प्र० प० ६। आ० १३। १४।।

(समीक्षक) अब देखिये! योहन भविष्यद्वक्ता ने जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्ड बण्ड कथा गाई। भला! तारे सब भूगोल हैं एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर-उधर क्यों आने जाने देगा? और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है जिस को कोई लपेटे वा इकट्ठा कर सके। इसलिये योहन आदि सब जंगली मनुष्य थे। उनको इन बातों की क्या खबर? ।।१०६।।

१०७-मैंने उनकी संख्या सुनी, इस्राएल के सन्तानों के समस्त कुल में से एक लाख चवालीस सहस्र पर छाप दी गई।। यिहूदा के कुल में से बारह सहस्र पर छाप दी गई।। -यो० प्र० प० ७। आ० ४। ५।।

(समीक्षक) क्या जो बाइबल में ईश्वर लिखा है वह इस्राएल आदि कुलों का स्वामी है वा सब संसार का? ऐसा न होता तो उन्हीं जंगलियों का साथ क्यों देता? और उन्हीं का सहाय करता था। दूसरे का नाम निशान भी नहीं लेता। इससे वह ईश्वर नहीं। और इस्राएल कुलादि के मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहन की मिथ्या कल्पना है।।१०७।।

१०८-इस कारण वे ईश्वर के सिहासन के आगे हैं और उसके मन्दिर में रात और दिन उसकी सेवा करते हैं।। -यो० प्र० प० ७। आ० १५।।

(समीक्षक) क्या यह महाबुत्परस्ती नहीं है? अथवा उनका ईश्वर देह- धारी मनुष्य तुल्य एकदेशी नहीं है? और ईसाइयों का ईश्वर रात में सोता भी नहीं है । यदि सोता है तो रात में पूजा क्योंकर करते होंगे? तथा उसकी नींद भी उड़ जाती होगी और जो रात दिन जागता होगा तो विक्षिप्त वा अति रोगी होगा।।१०८।।

१०९-और दूसरा दूत आके वेदी के निकट खड़ा हुआ जिस पास सोने की धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया।। और धूप का धुंआ पवित्र लोगों की प्रार्थनाओं के संग दूत के हाथ में से ईश्वर के आगे चढ़ गया।। और दूत ने वह धूपदानी लेके उसमें वेदी की आग भर के उसे पृथिवी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजलियाँ और भुईंडोल हुए।। -यो० प्र० प० ८। आ० ३। ४। ५।।

(समीक्षक) अब देखिये ! स्वर्ग तक वेदी, धूप, दीप, नैवेद्य, तुरही के शब्द होते हैं, क्या वैरागियों के मन्दिर से ईसाइयों का स्वर्ग कम है? कुछ धूम- धाम अधिक ही है।।१०९।।

११०-पहिले दूत ने तुरही फूंकी और लोहू से मिले हुए ओले और आग हुए और वे पृथिवी पर डाले गये और पृथिवी की एक तिहाई जल गई।। -यो० प्र० प० ८। आ० ७।।

(समीक्षक) वाह रे ईसाइयों के भविष्यद्वक्ता! ईश्वर, ईश्वर के दूत, तुरही का शब्द और प्रलय की लीला केवल लड़कों ही का खेल दीखता है।।११०।।

१११-और पांचवें दूत ने तुरही फूंकी और मैंने एक तारे को देखा जो स्वर्ग में से पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुण्ड के कूप की कुंजी उसको दी गई।। और उसने अथाह कुण्ड का कूप खोला और कूप में से बड़ी भट्ठी के धुंए की नाईं धुंआ उठा।। और उस धुंए में से टिड्डियां पृथिवी पर निकल गईं और जैसा पृथिवी के बीछुओं को अधिकार होता है तैसा उन्हें अधिकार दिया गया।। और उनसे कहा गया कि उन मनुष्यों को जिनके माथे पर ईश्वर की छाप नहीं है।। पांच मास उन्हें पीड़ा दी जाय।। -यो० प्र० प० ९। आ० १। २। ३। ४। ५।।

(समीक्षक) क्या तुरही का शब्द सुनकर तारे उन्हीं दूतों पर और उसी स्वर्ग में गिरे होंगे? यहां तो नहीं गिरे। भला वह कूप वा टिड्डियां भी प्रलय के लिये ईश्वर ने पाली होंगी और छाप को देख बांच भी लेती होंगी कि छाप वालों को मत काटो? यह केवल भोले मनुष्यों को डरा के ईसाई बना लेने का धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होगे तो तुमको टिड्डियां काटेंगी परन्तु ऐसी बातें विद्याहीन देश में चल सकती हैं आर्य्यावर्त्त में नहीं। क्या वह प्रलय की बात हो सकती है।।१११।।

११२-और घुड़चढ़ों की सेनाओं की संख्या बीस करोड़ थी।।
-यो० प्र० प० ९। आ० १६।।
(समीक्षक) भला ! इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते, कहां चरते और कहां रहते और कितनी लीद करते थे? और उसका दुर्गन्ध भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा? बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिये हम सब आर्य्यों ने तिलाञ्जलि दे दी है। ऐसा बखेड़ा ईसाइयों के शिर पर से भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय तो बहुत अच्छा हो।।११२।।
११३-और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतरते देखा जो मेघ को ओढ़े था और उसके सिर पर मेघधनुष् था और उसका मुंह सूर्य्य की नाईं और उसके पांव आग के खम्भों के ऐसे थे।। और उसने अपना दाहिना पांव समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रक्खा।। -यो० प्र० प० १०। आ० १। २।।
(समीक्षक) अब देखिये इन दूतों की कथा ! जो पुराणों वा भाटों की कथाओं से भी बढ़ कर है।।११३।।
११४-और लोगों के समान एक नर्कट मुझे दिया गया और कहा गया कि उठ! ईश्वर के मन्दिर को और वेदी को और उसमें के भजन करनेहारों को नाप।। -यो० प्र० प० ११। आ० १।।
(समीक्षक) यहां तो क्या परन्तु ईसाइयों के तो स्वर्ग में भी मन्दिर बनाये और नापे जाते हैं। अच्छा है, उनका जैसा स्वर्ग वैसी ही बातें हैं। इसीलिए यहां प्रभुभोजन में ईसा के शरीरावयव मांस लोहू की भावना करके खाते पीते हैं और गिर्जा में भी क्रूश आदि का आकार बनाना आदि भी बुतपरस्ती है।।११४।।
११५-और स्वर्ग में ईश्वर का मन्दिर खोला गया और उसके नियम का सन्दूक उसके मन्दिर में दिखाई दिया।। -यो० प्र० प० ११। आ० १९।।
(समीक्षक) स्वर्ग में जो मन्दिर है सो हर समय बन्द रहता होगा। कभी-कभी खोला जाता होगा। क्या परमेश्वर का भी कोई मन्दिर हो सकता है? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है उसका कोई भी मन्दिर नहीं हो सकता। हां ! ईसाइयों का जो परमेश्वर आकारवाला है उसका चाहे स्वर्ग में हो चाहे भूमि में। और जैसी लीला टं टन् पूं पूं की यहां होती है वैसी ही ईसाइयों के स्वर्ग में भी। और नियम का सन्दूक भी कभी-कभी ईसाई लोग देखते होंगे। उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते होंगे? सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को लुभाने की हैं।।११५।।
११६-और एक बड़ा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया अर्थात् एक स्त्री जो सूर्य्य पहिने है और चांद उसके पांवों तले है और उसके सिर पर बारह तारों का मुकुट

है।। और वह गर्भवती होके चिल्लाती है क्योंकि प्रसव की पीड़ा उसे लगी और वह जनने को पीड़ित है।। और दूसरा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया और देखो एक बड़ा लाल अजगर है जिसके सात सिर और दस सींग हैं और उसके सिरों पर सात राजमुकुट हैं।। और उसकी पूंछ ने आकाश के तारों की एक तिहाई को खींच के उन्हें पृथिवी पर डाला।। -यो० प्र० प० १२। आ० १। २। ३। ४।।

(समीक्षक) अब देखिये लम्बे चौड़े गपोड़े ! इनके स्वर्ग में भी विचारी स्त्री चिल्लाती है। उसका दुःख कोई नहीं सुनता, न मिटा सकता है। और उस अजगर की पूंछ कितनी बड़ी थी जिसने एक तिहाई तारों को पृथिवी पर डाला? भला! पृथिवी तो छोटी है और तारे भी बड़े-बड़े लोक हैं। इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता। किन्तु यहां यही अनुमान करना चाहिये कि ये तारों की तिहाई इस बात के लिखने वाले के घर पर गिरे होंगे और जिस अजगर की पूंछ इतनी बड़ी थी जिससे सब तारों की तिहाई लपेट कर भूमि पर गिरा दी वह अजगर भी उसी के घर में रहता होगा।।११६।।

११७-और स्वर्ग में युद्ध हुआ मीखायेल और उसके दूत अजगर से लड़े और अजगर और उसके दूत लड़े।। -यो० प्र० प० १२। आ० ७।।

(समीक्षक) जो कोई ईसाइयों के स्वर्ग में जाता होगा वह भी लड़ाई में दुःख पाता होगा। ऐसे स्वर्ग की यहीं से आशा छोड़ हाथ जोड़ बैठ रहो। जहां शान्तिभंग और उपद्रव मचा रहे वह ईसाइयों के योग्य है।।११७।।

११८-और वह बड़ा अजगर गिराया गया। हां ! वह प्राचीन सांप जो दियाबल और शैतान कहावता है जो सारे संसार का भरमानेहारा है।।
-यो० प्र० प० १२। आ० ९।।

(समीक्षक) क्या जब वह शैतान स्वर्ग में था तब लोगों को नहीं भरमाता था? और उसको जन्म भर बन्दीगृह में घिरा अथवा मार क्यों न डाला? उसको पृथिवी पर क्यों डाल दिया? जो सब संसार का भरमाने वाला शैतान है तो शैतान को भरमाने वाला कौन है? यदि शैतान स्वयं भर्मा है तो शैतान के विना भरमनेहारे भर्मेंेगे और जो भरमानेहारा परमेश्वर है तो वह ईश्वर ही नहीं ठहरा। विदित तो यह होता है कि ईसाइयों का ईश्वर भी शैतान से डरता होगा क्योंकि जो शैतान से प्रबल है तो ईश्वर ने उसको अपराध करते समय ही दण्ड क्यों न दिया ? जगत् में शैतान का जितना राज है उसके सामने सहस्रांश भी ईसाइयों के ईश्वर का राज नहीं। इसीलिये ईसाइयों का ईश्वर उसे हटा नहीं सकता होगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समय के राज्याधिकारी ईसाई डाकू चोर आदि को शीघ्र दण्ड देते हैं वैसा भी ईसाइयों का ईश्वर नहीं । पुनः

कौन ऐसा निर्बुद्धि मनुष्य है जो वैदिक मत को छोड़ पोकल ईसाई मत स्वीकार करे? ।।११८।।

११९-हाय पृथिवी और समुद्र के निवासियो! क्योंकि शैतान तुम पास उतरा है।। -यो० प्र० प० १२। आ० १२।।

(समीक्षक) क्या वह ईश्वर वहीं का रक्षक और स्वामी है? पृथिवी के मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है? यदि भूमि का भी राजा है तो शैतान को क्यों न मार सका? ईश्वर देखता रहता है और शैतान बहकाता फिरता है तो भी उसको वर्जता नहीं।। विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर हो रहा है।।११९।।

१२०-और बयालीस मास लों युद्ध करने का अधिकार उसे दिया गया।। और उसने ईश्वर के विरुद्ध निन्दा करने को अपना मुंह खोला कि उसके नाम की और उसके तम्बू की और स्वर्ग में वास करनेहारों की निन्दा करे।। और उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगों से युद्ध करे और उन पर जय करे और हर एक कुल और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया।।

-यो० प्र० प० १३। आ० ५। ६। ७।।

(समीक्षक) भला ! जो पृथिवी के लोगों को बहकाने के लिये शैतान और पशु आदि को भेजे और पवित्र मनुष्यों से युद्ध करावे वह काम डाकुओं के सरदार के समान है वा नहीं। ऐसा काम ईश्वर वा ईश्वर के भक्तों का नहीं हो सकता।।१२०।।

१२१-और मैंने दृष्टि की और देखो मेम्ना सियोन पर्वत पर खड़ा है और उसके संग एक लाख चवालीस सहस्र जन थे जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिता का नाम लिखा है।। -यो० प्र० प० १४। आ० १।।

(समीक्षक) अब देखिये ! जहां ईसा का बाप रहता था वहीं उसी सियोन पहाड़ पर उसका लड़का भी रहता था। परन्तु एक लाख चवालीस सहस्र मनुष्यों की गणना क्योंकर की? एक लाख चवालीस सहस्र ही स्वर्ग के वासी हुए। शेष करोड़ों ईसाइयों के शिर पर न मोहर लगी? क्या ये सब नरक में गये? ईसाइयों को चाहिये कि सियोन पर्वत पर जाके देखें कि ईसा का उक्त बाप और उनकी सेना वहां है वा नहीं? जो हों तो यह लेख ठीक है; नहीं तो मिथ्या। यदि कहीं से वहां आया है तो कहां से आया? जो कहो स्वर्ग से; तो क्या वे पक्षी हैं कि इतनी बड़ी सेना और आप ऊपर नीचे उड़ कर आया जाया करें? यदि वह आया जाया करता है तो एक जिले के न्यायाधीश के समान हुआ। और वह एक दो

या तीन हो तो नहीं बन सकेगा किन्तु न्यून एक-एक भूगोल में एक-एक ईश्वर चाहिए। क्योंकि एक दो तीन अनेक ब्रह्माण्डों का न्याय करने और सर्वत्र युगपत् घूमने में समर्थ कभी नहीं हो सकते।।१२१।।
१२२-आत्मा कहता है हां कि वे अपने परिश्रम से विश्राम करेंगे परन्तु उनके कार्य्य उनके संग हो लेते हैं।। -यो० प्र० प० १४। आ० १३।।
(समीक्षक) देखिये ! ईसाइयों का ईश्वर तो कहता है उनके कर्म उन के संग रहेंगे अर्थात् कर्मानुसार फल सब को दिये जायेंगे और ये लोग कहते हैं कि ईसा पापों को ले लेगा और क्षमा भी किये जायेंगे। यहां बुद्धिमान् विचारें कि ईश्वर का वचन सच्चा वा ईसाइयों का ? एक बात में दोनों तो सच्चे हो ही नहीं सकते। इनमें से एक झूठा अवश्य होगा। हम को क्या ! चाहे ईसाइयों का ईश्वर झूठा हो वा ईसाई लोग।।१२२।।
१२३-और उसे ईश्वर के कोप के बड़े रस के कुण्ड में डाला। और रस के कुण्ड का रौंदन नगर के बाहर किया गया और रस के कुण्ड में से घोड़ों के लगाम तक लोहू एक सौ कोश तक बह निकला।।
-यो० प्र० प० १४। आ० १९। २०।।
(समीक्षक) अब देखिये ! इनके गपोड़े पुराणों से भी बढ़कर हैं वा नहीं? ईसाइयों का ईश्वर कोप करते समय बहुत दुःखित हो जाता होगा और उसके कोप
के कुण्ड भरे हैं क्या उसका कोप जल है? वा अन्य द्रवित पदार्थ है कि जिससे कुण्ड भरे हैं? और सौ कोश तक रुधिर का बहना असम्भव है क्योंकि रुधिर वायु लगने से भफ़ट जम जाता है पुनः क्यों कर बह सकता है? इसलिये ऐसी बातें मिथ्या होती हैं।।१२३।।
१२४-और देखो स्वर्ग में साक्षी के तम्बू का मन्दिर खोला गया।। -यो० प्र० प० १५। आ० ५।।
(समीक्षक) जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो साक्षियों का क्या काम? क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता होता। इससे सर्वथा यही निश्चय होता है कि इनका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं किन्तु मनुष्यवत् अल्पज्ञ है। वह ईश्वरता का क्या काम कर सकता है? नहि नहि नहि, और इसी प्रकरण में दूतों की बड़ी-बड़ी असम्भव बातें लिखी हैं उनको सत्य कोई नहीं मान सकता। कहां तक लिखें इस प्रकरण में सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं।।१२४।।
१२५-और ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है।। जैसा उसने तुम्हें दिया है तैसा उसको भर देओ और उसके कर्मों के अनुसार दूना उसे दे देओ।।

-यो० प्र० प० १८। आ० ५। ६।।
(समीक्षक) देखो! प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है। क्योंकि न्याय उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल देना। उससे अधिक न्यून देना अन्याय है। जो अन्यायकारी की उपासना करते हैं वे अन्यायकारी क्यों न हों।।१२५।।
१२६-क्योंकि मेम्ने का विवाह आ पहुंचा है और उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है।। -यो० प्र० प० १९। आ० ७।।
(समीक्षक) अब सुनिये! ईसाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं! क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वहीं किया। पूछना चाहिये कि उसके श्वसुर, सासू, सालादि कौन थे और लड़के बाले कितने हुए? और वीर्य के नाश होने से बल, बुद्धि, पराक्रम आयु आदि के भी न्यून होने से अब तक ईसा ने वहां शरीर त्याग किया होगा क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ का वियोग अवश्य होता है। अब तक ईसाइयों ने उसके विश्वास में धोखा खाया और न जाने कब तक धोखे में रहेंगे।।१२६।।
१२७-और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन सांप को जो दियाबल और शैतान है पकड़ के उसे सहस्र वर्ष लों बांध रक्खा।। और उसको अथाह कुण्ड में डाला और बन्द करके उसे छाप दी जिसतें वह जब लों सहस्र वर्ष पूरे न हों तब लों फिर देशों के लोगों को न भरमावे।। -यो० प्र० प० २०। आ० २। ३।।
(समीक्षक) देखो ! मरूं मरूं करके शैतान को पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्ध किया; फिर भी छूटेगा। क्या फिर न भरमावेगा? ऐसे दुष्ट को तो बन्दीगृह में ही रखना वा मारे विना छोड़ना ही नहीं। परन्तु यह शैतान का होना ईसाइयों का भ्रममात्र है वास्तव में कुछ भी नहीं। केवल लोगों को डरा के अपने जाल में लाने का उपाय रचा है। जैसे किसी धूर्त्त ने किन्हीं भोले मनुष्य से कहा कि चलो ! तुमको देवता का दर्शन कराऊं। किसी एकान्त देश में ले जाके एक मनुष्य को चतुर्भुज बना कर रक्खा। भफ़ाड़ी में खड़ा करके कहा कि आंख मीच लो। जब मैं कहूं तब खोलना और फिर जब कहूँ तभी मीच लो । जो न मीचेगा वह अन्धा हो जायेगा। वैसी इन मत वालों की बातें हैं कि जो हमारा मजहब न मानेगा वह शैतान का बहकाया हुआ है। जब वह सामने आया तब कहा-देखो! और पुनः शीघ्र कहा कि मीच लो। जब फिर भफ़ाड़ी में छिप गया तब कहा-खोलो! देखा नारायण को, सब ने दर्शन किया ! वैसी लीला मजहबियों की है। इसलिये इनकी माया में किसी को न फंसना चाहिये।।१२७।।
१२८-जिसके सम्मुख से पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली।। और मैंने क्या छोटे क्या बड़े सब मृतकों को ईश्वर के आगे खड़े देखा

और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवन का पुस्तक खोला गया और पुस्तकों में लिखी हुई बातों से मृतकों का विचार उनके कर्मों के अनुसार किया गया।। -यो० प्र० प० २०। आ० ११। १२।।
(समीक्षक) यह देखो लड़कपन की बात! भला पृथिवी और आकाश कैसे भाग सकेंगे? और वे किस पर ठहरेंगे? जिनके सामने से भगे। और उसका सिहासन और वह कहाँ ठहरा? और मुर्दे परमेश्वर के सामने खड़े किये गये तो परमेश्वर भी बैठा वा खड़ा होगा? क्या यहां की कचहरी और दूकान के समान ईश्वर का व्यवहार है जो कि पुस्तक लेखानुसार होता है? और सब जीवों का हाल ईश्वर ने लिखा वा उसके गुमाश्तों ने? ऐसी-ऐसी बातों से अनीश्वर को ईश्वर और ईश्वर को अनीश्वर ईसाई आदि मत वालों ने बना दिया।।१२८।।
१२९-उनमें से एक मेरे पास आया और मेरे संग बोला कि आ मैं दुलहिन को अर्थात् मेम्ने की स्त्री को तुझे दिखाऊंगा।। -यो० प्र० प० २१। आ० ९।।
(समीक्षक) भला! ईसा ने स्वर्ग में दुलहिन अर्थात् स्त्री अच्छी पाई, मौज करता होगा। जो जो ईसाई वहां जाते होंगे उनको भी स्त्रियां मिलती होंगी और लड़के बाले होते होंगे और बहुत भीड़ के हो जाने के कारण रोगोत्पत्ति होकर मरते भी होंगे। ऐसे स्वर्ग को दूर से हाथ ही जोड़ना अच्छा है।।१२९।।
१३०-और उसने उस नल से नगर को नापा कि साढ़े सात सौ कोश का है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई और ऊँचाई एक समान है।। और उसने उसकी भीत को मनुष्य के अर्थात् दूत के नाप से नापा कि एक सौ चवालीस हाथ की है।। और उसकी भीत की जुड़ाई सूर्य्यकान्त की थी और नगर निर्मल सोने का था जो निर्मल कांच के समान था।। और नगर की भीत की नेवें हर एक बहुमूल्य पत्थर से सँवारी हुई थीं। पहिली नेव सूर्य्यकान्त की थी; दूसरी नीलमणि की; तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की।। पांचवीं गोमेदक की, छठवीं माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेरोज की, नवीं पुखराज की, दशवीं लहसनिये की, ग्यारहवीं धूम्रकान्त की, बारहवीं मर्टीष की।। और बारह फाटक बारह मोती थे, एक-एक मोती से एक-एक फाटक बना था और नगर की सड़क स्वच्छ कांच के ऐसे निर्मल सोने की थी।। -यो० प्र० प० २१। आ० १६। १७। १८। १९। २०। २१।।
(समीक्षक) सुनो ईसाइयों के स्वर्ग का वर्णन! यदि ईसाई मरते जाते और जन्मते जाते हैं तो इतने बड़े शहर में कैसे समा सकेंगे? क्योंकि उसमें मनुष्यों का आगम होता है और उससे निकलते नहीं और जो यह बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई नगरी मानी है और सर्व सोने की है इत्यादि लेख केवल भोले-भोले मनुष्यों को बहका

कर फंसाने की लीला है। भला लम्बाई चौड़ाई तो उस नगर की लिखी सो हो सकती परन्तु ऊँचाई साढ़े सात सौ कोश क्योंकर हो सकती है? यह सर्वथा मिथ्या कपोलकल्पना की बात है और इतने बड़े मोती कहां से आये होंगे। इस लेख के लिखने वाले के घर के घड़े में से। यह गपोड़ा पुराण का भी बाप है।।१३०।।

१३१-और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करनेहारा अथवा झूठ पर चलने हारा उसमें किसी रीति से प्रवेश न करेगा।। -यो० प्र० प० २१। आ० २७।।

(समीक्षक) जो ऐसी बात है तो ईसाई लोग क्यांे कहते हैं कि पापी लोग भी स्वर्ग में ईसाई होने से जा सकते हैं। यह बात ठीक नहीं है। यदि ऐसा है तो योहन्ना स्वप्ने की मिथ्या बातों का करनेहारा स्वर्ग में प्रवेश कभी न कर सका होगा और ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता तो जो अनेक पापियों के पाप के भार से युक्त है वह क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है।।१३१।।

१३२-और अब कोई श्राप न होगा और ईश्वर का और मेम्ने का सिहासन उसमें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे।। और ईश्वर उसका मुंह देखेंगे और उसका नाम उनके माथे पर होगा।। और वहां रात न होगी और उन्हें दीपक का अथवा सूर्य्य की ज्योति का प्रयोजन नहीं क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें ज्योति देगा, वे सर्वदा राज्य करेंगे।। -यो० प्र० प० २२। आ० ३। ४। ५।।

(समीक्षक) देखिये यही ईसाइयों का स्वर्गवास ! क्या ईश्वर और ईसा सिहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे? और उनके दास उनके सामने सदा मुंह देखा करेंगे। अब यह तो कहिये तुम्हारे ईश्वर का मुंह यूरोपियन के सदृश गोरा वा अफ्रीका वालों के सदृश काला अथवा अन्य देश वालों के समान है? यह तुम्हारा स्वर्ग भी बन्धन है क्योंकि जहां छोटाई बड़ाई है और उसी एक नगर में रहना अवश्य है तो वहां दुःख क्यों न होता होगा जो मुख वाला है वह ईश्वर सर्वज्ञ सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता।।१३२।।

१३३-देख ! मैं शीघ्र आता हूँ और मेरा प्रतिफल मेरे साथ है जिसतें हर एक को जैसा उसका कार्य ठहरेगा वैसा फल देऊंगा।। -यो० प्र० प० २२। आ० १२।।

(समीक्षक) जब यही बात है कि कर्मानुसार फल पाते हैं तो पापों की क्षमा कभी नहीं होती और जो क्षमा होती है तो इञ्जील की बातें झूठीं। यदि कोई कहे कि क्षमा करना भी इञ्जील में लिखा है तो पूर्वापर विरुद्ध अर्थात् 'हल्फदरोगी' हुई तो भफ़ूठ है। इसका मानना छोड़ देओ। अब कहां तक लिखें इनकी बाइबल में

लाखों बातें खण्डनीय हैं। यह तो थोड़ा सा चिह्न मात्र ईसाइयों की बाइबल पुस्तक का दिखलाया है। इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे। थोड़ी सी बातों को छोड़ शेष सब भफ़ूठ भरा है। जैसे झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता वैसा ही बाइबल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है।।१३३।।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते कृश्चीनमतविषये त्रयोदश समुल्लास सम्पूर्ण ।।१३।।

अनुभूमिका (४)

जो यह १४ चौदहवां समुल्लास मुसलमानों के मतविषय में लिखा है सो केवल कुरान के अभिप्राय से। अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं यद्यपि फिरके होने के कारण किसी शब्द अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब ऐकमत्य हैं। जो कुरान अर्बी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है, उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य्यभाषान्तर करा के पश्चात् अर्बी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उस को उचित है कि मौलवी साहबांे के तर्जुमों का पहले खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे। क्योंकि यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिये है। सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ मूठ बुराई या भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो-जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सब को विदित होवे। न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिस की इच्छा हो वह न माने वा माने। किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता। और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें। और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें करावें, क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है। इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उस को सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायेगा क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इन को बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है। अब यह १४ चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का मतविषय सब सज्जनों के सामने निवेदन करता हूँ। विचार कर इष्ट का ग्रहण अनिष्ट का परित्याग कीजिये।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु।

इत्यनुभूमिका।।

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

इसके आगे मुसलमानों के मतविषय में लिखेंगे-

१-आरम्भ साथ नाम अल्लाह् के क्षमा करने वाला दयालु।।
-मंजिल १। सिपारा १। सूरत १।।

(समीक्षक) मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह कुरान खुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इस को बनाने वाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो ष्आरम्भ साथ नाम अल्लाह केष् ऐसा न कहता किन्तु ष्आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों केष् ऐसा कहता। यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं। क्योंकि इस से पाप का आरम्भ भी खुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जाएगा। जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिला कर, मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं? और यह भी कहना था कि ष्परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भष् बुरी बातों का नहीं। इस कथन में गोलमाल है। क्या चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि अधर्म का भी आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाय? इसी से देख लो कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने में भी 'बिस्मिल्लाह' इस वचन को पढ़ते हैं। जो यही इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं और मुसलमानों का 'खुदा' दयालु भी न रहेगा क्योंकि उस की दया उन पशुओं पर न रही। और जो मुसलमान लोग इस का अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है। यदि मुसलमान लोग इस का अर्थ और करते हैं तो सूधा अर्थ क्या है ? इत्यादि।।१।।

२-सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते हैं जो परवरदिगार अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसार का।। क्षमा करने वाला दयालु है ।।
-मंन १। सि० १। सूरतुल्फातिहा आयत १। २।।

(समीक्षक) जो कुरान का खुदा संसार का पालन करने हारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मत वाले और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता । जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि

ष्काफिरों को कतल करोष् अर्थात् जो कुरान और पैगम्बर को न मानें वे काफिर हैं ऐसा क्यों कहता ? इसलिये कुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता।।२।।
३-मालिक दिन न्याय का।। तुभफ़ ही को हम भक्ति करते हैं और तुभफ़ ही से सहाय चाहते हैं।। दिखा हम को सीधा रास्ता।।
-मंन१। सि० १। सू० १। आ० ३। ४। ५।।
(समीक्षक) क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता ? किसी एक दिन न्याय करता है ? इस से तो अन्धेर विदित होता है! उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना ? और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा दूसरे का भी ? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते ? क्या सूधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते? यदि भलाई सब की एक है तो फिर मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती हैं।।३।।
४-दिखा उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने निआमत की।। और उनका मार्ग मत दिखा कि जिन के ऊपर तू ने गजब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा।। -मंन १। सि० १। सू० १। आ० ६। ७।।
(समीक्षक) जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पाप पुण्य नहीं मानते तो किन्हीं पर निआमत अर्थात् पफ़जल वा दया करने और किन्हीं पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जायगा। क्योंकि विना पाप-पुण्य सुख-दुःख देना केवल अन्याय की बात है। और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी स्वभाव से बहिः है क्योंकि विना भलाई बुराई के वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व संचित पुण्य पाप ही नहीं तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता। और इस सूरत की टिप्पन पर यह **ष्सूर अल्लाह साहेब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें।ष्** जो यह बात है तो 'अलिफ बे' आदि अक्षर भी खुदा ही ने पढ़ाये होंगे, जो कहो कि नहीं तो विना अक्षर ज्ञान के इस सूरः को कैसे पढ़ सके ? क्या कण्ठ ही से बुलाये और बोलते गये ? जो ऐसा है तो सब कुरान ही कण्ठ से पढ़ाया होगा। इस से ऐसा समभफ़ना चाहिये कि जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जायें वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता। जैसा कि अरबी भाषा में उतारने से अरब वालों को इस का पढ़ना सुगम, अन्य भाषा बोलने वालों को कठिन होता है। इसी से खुदा में पक्षपात आता है। और जैसे परमेश्वर ने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्यायदृष्टि से सब देशभाषाओं से विलक्षण

संस्कृत भाषा कि जो सब देशवालों के लिये एक से परिश्रम से विदित होती है उसी में वेदों का प्रकाश किया है, यह करता तो कुछ भी दोष नहीं होता।।४।।
५-यह पुस्तक कि जिस में सन्देह नहीं; परहेजगारों को मार्ग दिखलाती है।। जो कि ईमान लाते हैं साथ गैब (परोक्ष) के, नमाज पढ़ते, और उस वस्तु से जो हम ने दी खर्च करते हैं।। और वे लोग जो उस किताब पर ईमान लाते हैं जो रखते हैं तेरी ओर वा तुझ से पहिले उतारी गई, और विश्वास कयामत पर रखते हैं।। ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही छुटकारा पाने वाले हैं।। निश्चय जो काफिर हुए उन पर तेरा डराना न डराना समान है। वे ईमान न लावेंगे।। अल्लाह ने उन के दिलों, कानों पर मोहर कर दी और उन की आंखों पर पर्दा है और उन के वास्ते बड़ा अ-जाब है।। -मंन १। सि०१। सूरत २। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७।।
(समीक्षक) क्या अपने ही मुख से अपनी किताब की प्रशंसा करना खुदा की दम्भ की बात नहीं? जब 'परहे-जगार' अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सच्चे मार्ग पर हैं और जो झूठे मार्ग पर हैं उन को यह कुरान मार्ग ही नहीं दिखला सकता, फिर किस काम का रहा? ।।१।। क्या पाप पुण्य और पुरुषार्थ के विना खुदा अपने ही खजाने से खर्च करने को देता है ? जो देता है तो सब को क्यों नहीं देता? और मुसलमान लोग परिश्रम क्यों करते हैं? ।।२।। और जो बाइबल इञ्जील आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान इञ्जील आदि पर ईमान जैसा कुरान पर है वैसा क्यों नहीं लाते? और जो लाते हैं तो कुरान[१] का होना किसलिये? जो कहें कि कुरान में अधिक बातें हैं तो पहली किताब में लिखना खुदा भूल गया होगा! और जो नहीं भूला तो कुरान का बनाना निष्प्रयोजन है। और हम देखते हैं तो बाइबल और कुरान की बातें कोई-कोई न मिलती होंगी नहीं तो सब मिलती हैं। एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है क्यों न बनाया? कयामत पर ही विश्वास रखना चाहिये; अन्य पर नहीं? ।।३।। क्या जो ईसाई और मुसलमान ही खुदा की शिक्षा पर हैं उन में कोई भी पापी नहीं है? क्या ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं वे भी छुटकारा पावें और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें तो बड़े अन्याय और अन्धेर की बात नहीं है? ।।४।। और क्या जो लोग मुसलमानी मत को न मानें उन्हीं को काफिर कहना वह एकतर्फी डिगरी नहीं है? ।।५ ।। जो परमेश्वर ही ने उनके अन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसी से वे पाप करते हैं तो उन का कुछ भी दोष नहीं। यह दोष खुदा ही का है फिर उन पर सुख-दुःख वा पाप-पुण्य नहीं हो सकता पुनः उन को सजा

जजा क्यों करता है? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रता से नहीं किया।।५।।
६-उनके दिलों में रोग है, अल्लाह ने उन का रोग बढ़ा दिया।।
-मंन १। सि० १। सू० २। आ० १०।।
(समीक्षक) भला विना अपराध खुदा ने उन का रोग बढ़ाया, दया न आई, उन बिचारों को बड़ा दुःख हुआ होगा! क्या यह शैतान से बढ़कर शैतानपन का काम नहीं है? किसी के मन पर मोहर लगाना, किसी का रोग बढ़ाना, यह खुदा का काम नहीं हो सकता क्योंकि **रोग का बढ़ना अपने पापों से है**।।६।।
७-जिस ने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया।।
-मंन१। सि०१। सू०२। आ० २२।।
(समीक्षक) भला आसमान छत किसी की हो सकती है? यह अविद्या की बात है। आकाश को छत के समान मानना हंसी की बात है। यदि किसी प्रकार की पृथिवी को आसमान मानते हों तो उनकी घर की बात है।।७ ।।
८-जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हम ने अपने पैगम्बर के ऊपर उतारी तो उस कैसी एक सूरत ले आओ और अपने साक्षी अपने लोगों को पुकारो अल्लाह के विना जो तुम सच्चे हो।। जो तुम और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिस का इन्धन मनुष्य है, और काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।। -मंन१। सि०१। सू०२। आ०२३। २४।।
(समीक्षक) भला यह कोई बात है कि उस के सदृश कोई सूरत न बने? क्या अकबर बादशाह के समय में मौलवी -फैजी ने विना नुकते का कुरान नहीं बना लिया था? वह कौन सी दो-जख की आग है? क्या इस आग से न डरना चाहिये ? इस का भ्।ी इन्धन जो कुछ पड़े सब है। जैसे कुरान में लिखा है कि काफिरों के वास्ते दोजख की आग तैयार की गई है तो वैसे पुराणों में लिखा है

१- वास्तव में यह शब्द "व़्ाफ़ुरआन" है परन्तु भाषा में लोगों के बोलने में व़्ाफ़ुरान आता है इसलिये ऐसा ही लिखा है।

कि म्लेच्छों के लिये घोर नरक बना है! अब कहिये किस की बात सच्ची मानी जाय ? अपने-अपने वचन से दोनों स्वर्गगामी और दूसरे के मत से दोनों नरकगामी होते हैं। इसलिए इन सब का भफ़गड़ा भफ़ूठा है किन्तु जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे सब मतों में दुःख पावेंगे।।८।।
९-और आनन्द का सन्देशा दे उन लोगांे को कि ईमान लाए और काम किए अच्छे। यह कि उन के वास्ते बहिश्तें हैं जिन के नीचे से चलती हैं नहरें। जब उन में से मेवों के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि यह वो वस्तु हैं जो हम

पहिले इस से दिये गये थे------ और उन के लिये पवित्र बीवियाँ सदैव वहाँ रहने वाली हैं।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० २५।।

(समीक्षक) भला! यह कुरान का बहिश्त संसार से कौन सी उत्तम बात वाला है ? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं और इतना विशेष है कि यहाँ जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं। किन्तु यहाँ की स्त्रियाँ सदा नहीं रहतीं और वहाँ बीवियाँ अर्थात् उत्तम स्त्रियाँ सदा काल रहती हैं तो जब तक कयामत की रात न आवेगी तब तक उन बिचारियों के दिन कैसे कटते होंगे ? हां जो खुदा की उन पर कृपा होती होगी! और खुदा ही के आश्रय समय काटती होंगी तो ठीक है। क्योंकि यह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलिये गुसाँइयों के गोलोक और मन्दिर के सदृश दीखता है क्योंकि वहाँ स्त्रियों का मान्य बहुत, पुरुषों का नहीं। वैसे ही खुदा के घर में स्त्रियों का मान्य अधिक और उन पर खुदा का प्रेम भी बहुत है उन पुरुषों पर नहीं। क्योंकि बीवियों को खुदा ने बहिश्त में सदा रक्खा और पुरुषों को नहीं। वे बीवियां विना खुदा की मर्जी स्वर्ग में कैसे ठहर सकतीं ? जो यह बात ऐसी ही हो तो खुदा स्त्रियों में फंस जाय!।।९।।

१०-आदम को सारे नाम सिखाये। फिर फरिश्तों के सामने करके कहा जो तुम सच्चे हो मुझे उन के नाम बताओ।। कहा हे आदम! उन को उन के नाम बता दे। तब उस ने बता दिये तो खुदा ने फरिश्तों से कहा कि क्या मैंने तुम से नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथिवी और आसमान की छिपी वस्तुओं को और प्रकट छिपे कर्मों को जानता हूँ ।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ३०। ३१।।

(समीक्षक) भला ऐसे फरिश्तों को धोखा देकर अपनी बड़ाई करना खुदा का काम हो सकता है ? यह तो एक दम्भ की बात है। इस को कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता। क्या ऐसी बातों से ही खुदा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है ? हाँ! जंगली लोगों में कोई कैसा ही पाखण्ड चला लेवे चल सकता है; सभ्य जनों में नहीं ।।१०।।

११-जब हमने फरिश्तों से कहा कि बाबा आदम को दण्डवत् करो, देखा सभों ने दण्डवत् किया परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफिर था।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ३४।।

(समीक्षक) इस से खुदा सर्वज्ञ नहीं अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान की पूरी बातें नहीं जानता। जो जानता हो तो शैतान को पैदा ही क्यों किया ? और खुदा में कुछ तेज भी नहीं है क्योंकि शैतान ने खुदा का हुक्म ही न माना और

खुदा उस का कुछ भी न कर सका। और देखिये! एक शैतान काफिर ने खुदा का भी छक्का छुड़ा दिया तो मुसलमानों के कथनानुसार भिन्न जहाँ क्रोड़ों काफिर हैं वहाँ मुसलमानों के खुदा और मुसलमानों की क्या चल सकती है? कभी-कभी खुदा भी किसी का रोग बढ़ा देता, किसी को गुमराह कर देता है। खुदा ने ये बातें शैतान से सीखी होंगी और शैतान ने खुदा से। क्योंकि विना खुदा के शैतान का उस्ताद और कोई नहीं हो सकता।।११।।

१२-हमने कहा कि ओ आदम! तू और तेरी जोरू बहिश्त में रह कर आनन्द में जहाँ चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के कि पापी हो जाओगे।। शैतान ने उन को डिगाया और उन को बहिश्त के आनन्द से खो दिया। तब हम ने कहा कि उतरो तुम्हारे में कोई परस्पर शत्रु है। तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है।। आदम अपने मालिक की कुछ बातें सीखकर पृथिवी पर आ गया।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ३५। ३६। ३७।।

(समीक्षक) अब देखिये खुदा की अल्पज्ञता! अभी तो स्वर्ग में रहने का आशीर्वाद दिया और पुनः थोड़ी देर में कहा कि निकलो। जो भविष्यत् बातों को जानता होता तो वर ही क्यों देता? और बहकाने वाले शैतान को दण्ड देने से असमर्थ भी दीख पड़ता है। और वह वृक्ष किस के लिये उत्पन्न किया था? क्या अपने लिये वा दूसरे के लिये ? जो अपने लिये किया तो उस को क्या जरूरत थी? और जो दूसरे के लिये तो क्यों रोका? इसलिये ऐसी बातें न खुदा की और न उसके बनाये पुस्तक में हो सकती हैं। आदम साहेब खुदा से कितनी बातें सीख आये? और जब पृथिवी पर आदम साहेब आये तब किस प्रकार आये? क्या वह बहिश्त पहाड़ पर है वा आकाश पर? उस से कैसे उतर आये? अथवा पक्षी के तुल्य आये अथवा जैसे ऊपर से पत्थर गिर पड़े? इस में यह विदित होता है कि जब आदम साहेब मट्टी से बनाये गये तो इन के स्वर्ग में भी मट्टी होगी। और जितने वहाँ और हैं वे भी वैसे ही फरिश्ते आदि होंगे, क्योंकि मट्टी के शरीर विना इन्द्रिय भोग नहीं हो सकता। जब पार्थिव शरीर है तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये। यदि मृत्यु होता है तो वे वहाँ से कहां जाते हैं? और मृत्यु नहीं होता तो उन का जन्म भी नहीं हुआ। जब जन्म है तो मृत्यु अवश्य ही है। यदि ऐसा है तो कुरान में लिखा है कि बीबियां सदैव बहिश्त में रहती हैं सो भफूठा हो जायगा क्योंकि उन का भी मृत्यु अवश्य होगा। जब ऐसा है तो बहिश्त में जाने वालों का भी मृत्यु अवश्य ही होगा।।१२।।

१३-उस दिन से डरो जब कोई जीव किसी जीव से कुछ भरोसा न रक्खेगा। न उस की सिफारिश स्वीकार की जावेगी, न उस से बदला लिया जावेगा और न वे सहाय पावेंगे।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ४८।।

(समीक्षक०) क्या वर्त्तमान दिनों में न डरें? बुराई करने में सब दिन डरना चाहिये। जब सिफारिश न मानी जावेगी तो फिर पैगम्बर की गवाही वा सिफारिश से खुदा स्वर्ग देगा यह बात क्योंकर सच हो सकेगी? क्या खुदा बहिश्त वालों ही का सहायक है; दोजखवालों का नहीं? यदि ऐसा है तो खुदा पक्षपाती है।।१३।।

१४-हमने मूसा को किताब और मौजिजे दिये।।
-मंन १। सि० १। सू० २। आ० ५३।।

(समीक्षक) जो मूसा को किताब दी तो कुरान का होना निरर्थक है। और उस को आश्चर्यशक्ति दी यह बाइबल और कुरान में भी लिखा है परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता, जो अब नहीं तो पहले भी न था। जैसे स्वार्थी लोग आज कल भी अविद्वानों के सामने विद्वान् बन जाते हैं वैसे उस समय भी कपट किया होगा। क्योंकि खुदा और उस के सेवक अब भी विद्यमान हैं पुनः इस समय खुदा आश्चर्यशक्ति क्यों नहीं देता? और नहीं कर सकते? जो मूसा को किताब दी थी तो पुनः कुरान का देना क्या आवश्यक था? क्योंकि जो भलाई बुराई करने न करने का उपदेश सर्वत्र एक सा हो तो पुनः भिन्न-भिन्न पुस्तक करने से पुनरुक्त दोष होता है। क्या मूसा जी आदि को दी हुई पुस्तकों में खुदा भूल गया था? ।।१४।।

१५-और कहो कि क्षमा मांगते हैं हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करने वालों के।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ५२।।

(समीक्षक) भला यह खुदा का उपदेश सब को पापी बनाने वाला है वा नहीं? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से कोई भी नहीं डरता। इसलिये ऐसा कहने वाला खुदा और यह खुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह न्यायकारी है, अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करने में अन्यायकारी हो जाता है किन्तु यथापराध दण्ड ही देने में न्यायकारी हो सकता है।।१५।।

१६-जब मूसा ने अपनी कौम के लिये पानी मांगा, हम ने कहा कि अपना असा (दण्ड) पत्थर पर मार। उस में से बारह चश्मे बह निकले।।
-मंन १। सि० १। सू० २। आ० ६०।।

(समीक्षक) अब देखिये! इन असम्भव बातों के तुल्य दूसरा कोई कहेगा? एक पत्थर की शिला में डण्डा मारने से बारह भफ़रनों का निकलना सर्वथा असम्भव है। हां! उस पत्थर को भीतर से पोलाकर उस में पानी भर बाहर छिद्र करने से सम्भव है; अन्यथा नहीं।।१६।।

१७-हम ने उन को कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ यह एक भय दिया जो उन के सामने और पीछे थे उन को और शिक्षा ईमानदारों को।।
-मंन १। सि० १। सू० २। आ० ६५। ६६।।

(समीक्षक) जो खुदा ने निन्दित बन्दर हो जाना केवल भय देने के लिए कहा था तो उस का कहना मिथ्या हुआ वा छल किया। जो ऐसी बातें करता और जिस में ऐसी बातें हैं वह न खुदा और न यह पुस्तक खुदा का बनाया हो सकता है।।१७।।

१८-इस तरह खुदा मुर्दों को जिलाता है और तुम को अपनी निशानियाँ दिखलाता है कि तुम समभफ़ो।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ७३।।

(समीक्षक) क्या मुर्दों को खुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता? क्या कयामत की रात तक कबरों में पड़े रहेंगे? आजकल दौड़ासुपुर्द हैं? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियां हैं? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियां नहीं हैं? क्या संसार में जो विविध रचना विशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं ये निशानियां कम हैंे?
।।१८।।

१९-वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुण्ठ में वास करने वाले हैं।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ८२।।

(समीक्षक) कोई भी जीव अनन्त पाप पुण्य करने का सामर्थ्य नहीं रखता इसलिये सदैव स्वर्ग नरक में नहीं रह सकते। और जो खुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् हो जावे। कयामत की रात न्याय होगा तो मनुष्यों के पाप पुण्य बराबर होना उचित है। जो अनन्त नहीं है उस का फल अनन्त कैसे हो सकता है? और सृष्टि हुए सात आठ हजार वर्षों से इधर ही बतलाते हैं। क्या इस के पूर्व खुदा निकम्मा बैठा था? और कयामत के पीछे भी निकम्मा रहेगा? ये बातें सब लड़कों के समान हैं क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव वर्त्तमान रहते हैं और जितने जिस के पाप पुण्य हैं उतना ही उसको फल देता है इसलिये कुरान की यह बात सच्ची नहीं।।१९।।

२०-जब हम ने तुम से प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू अपने आपस के और किसी अपने आपस को घरों से न निकालना, फिर प्रतिज्ञा की तुम ने, इस के तुम ही साक्षी हो।। फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपस को मार डालते हो, एक फिरके

को आप में से घरों उन के से निकाल देते हो। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ८४। ८५।।

(समीक्षक) भला! प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पज्ञों की बात है वा परमात्मा की जब परमेश्वर सर्वज्ञ है तो ऐसी कड़ाकूट संसारी मनुष्य के समान क्यों करेगा? भला यह कौन सी भली बात है कि आपस का लोहू न बहाना, अपने मत वालों को घर से न निकालना, अर्थात् दूसरे मत वालों का लोहू बहाना, और घर से निकाल देना? यह मिथ्या मूर्खता और पक्षपात की बात है। क्या परमेश्वर प्रथम ही से नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञा से विरुद्ध करेंगे? **इस से विदित होता है कि मुसलमानों का खुदा भी ईसाइयों की बहुत सी उपमा रखता है और यह कुरान स्वतन्त्र नहीं बन सकता क्योंकि इसमें से थोड़ी सी बातों को छोड़कर बाकी सब बातें बायबिल की हैं।।२०।।**

२१-ये वे लोग हैं कि जिन्होंने आखरत के बदले जिन्दगी यहाँ की मोल ले ली। उन से पाप कभी हलका न किया जावेगा और न उन को सहायता दी जावेगी।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ८६।।

(समीक्षक) भला ऐसी ईर्ष्या द्वेष की बातें कभी ईश्वर की ओर से हो सकती हैं? जिन लोगों के पाप हलके किये जायेंगे वा जिन को सहायता दी जावेगी वे कौन हैं? यदि वे पापी हैं और पापों का दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे तो अन्याय होगा। जो सजा देकर हलके किये जावेंगे तो जिन का बयान इस आयत में है ये भी सजा पाके हलके हो सकते हैं। और दण्ड देकर भी हलके न किये जावेंगे तो भी अन्याय होगा। जो पापों से हलके किये जाने वालों से प्रयोजन धर्मात्माओं का है तो उन के पाप तो आप ही हलके हैं; खुदा क्या करेगा? इस से यह लेख विद्वान् का नहीं। और वास्तव में धर्मात्माओं को सुख और अधिर्म्मयों को दुःख उन के कर्मों के अनुसार सदैव देना चाहिये।।२१।।

२२-**निश्चय हम ने मूसा को किताब दी और उस के पीछे हम पैगम्बर को लाये और मरियम के पुत्र ईसा को प्रकट मौजिजे अर्थात् दैवीशक्ति और सामर्थ्य दिये उस को साथ रूहल्कुद्स[1] के। जब तुम्हारे पास उस वस्तु सहित पैगम्बर आया कि जिस को तुम्हारा जी चाहता नहीं; फिर तुम ने अभिमान किया। एक मत को भफ़ुठलाया और एक को मार डालते हो।।**

-मंन १। सि० १। सू० २। आ० ८७।।

१- रूहल्कुद्स कहते हैं जबरईल को जो कि हरदम मसीह के साथ रहता था।

(समीक्षक) जब कुरान में साक्षी है कि मूसा को किताब दी तो उस का मानना मुसलमानों को आवश्यक हुआ और जो-जो उस पुस्तक में दोष हैं वे भी मुसलमानों के मत में आ गिरे और 'मौजिजे' अर्थात् दैवी शक्ति की बातें सब अन्यथा हैं भोले भाले मनुष्यों को बहकाने के लिये झूंठ मूंठ चला ली हैं क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूंठी ही होती हैं जो उस समय ''मौजिजे'' थे तो इस समय क्यों नहीं। जो इस समय भी नहीं तो उस समय भी न थे इस में कुछ भी सन्देह नहीं।।२२।।

२३-और इस से पहिले काफिरों पर विजय चाहते थे जो कुछ पहिचाना था जब उन के पास वह आया भफ़ट काफिर हो गये। काफिरों पर लानत है अल्लाह की।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ८९।।

(समीक्षक) क्या जैसे तुम अन्य मत वालों को काफिर कहते हो वैसे वे तुम को काफिर नहीं कहते हैं? और उन के मत के ईश्वर की ओर से धिक्कार देते हैं फिर कहो कौन सच्चा और कौन भफ़ूठा? जो विचार कर देखते हैं तो सब मत वालों में भफ़ूठ पाया जाता है जो सच है सो सब में एक सा है, ये सब लड़ाइयां मूर्खता की हैं।।२३।।

२४-आनन्द का सन्देशा ईमानदारों को।। अल्लाह, फरिश्तों, पैगम्बरों जिबरईल और मीकाईल का जो शत्रु है अल्लाह भी ऐसे काफिरों का शत्रु है।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ९७।९८।।

(समीक्षक) जब मुसलमान कहते हैं कि 'खुदा लाशरीक' है फिर यह फौज की फौज 'शरीक' कहां से कर दी? क्या जो औरों का शत्रु वह खुदा का भी शत्रु है। यदि ऐसा है तो ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर किसी का शत्रु नहीं हो सकता।।२४।।

२५-और अल्लाह खास करता है जिस को चाहता है साथ दया अपनी के।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० १०३।।

(समीक्षक) क्या जो मुख्य और दया करने के योग्य न हो उस को भी प्रधान बनाता और उस पर दया करता है? जो ऐसा है तो खुदा बड़ा गड़बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा? और बुरे कर्म को कौन छोड़ेगा? क्योंकि खुदा की प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं, कर्मफल पर नहीं, इस से सब को अनास्था होकर कर्मोच्छेदप्रसंग होगा।।२५।।

२६-ऐसा न हो कि काफिर लोग ईर्ष्या करके तुम को ईमान से फेर देवें क्योंकि उन में से ईमान वालों के बहुत से दोस्त हैं।।
-मंन १। सि० १। सू० २। आ० १०१।।

(समीक्षक) अब देखिये! खुदा ही उन को चिताता है कि तुम्हारे ईमान को काफिर लोग न डिगा देवें। क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? ऐसी बातें खुदा की नहीं हो सकती हैं।।२६।।

२७-तुम जिधर मुंह करो उधर ही मुंह अल्लाह का है।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ११५।।

(समीक्षक) जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान 'किबले' की ओर मुंह क्यों करते हैं? जो कहें कि हम को किबले की ओर मुंह करने का हुक्म है तो यह भी हुक्म है कि चाहें जिधर की ओर मुख करो। क्या एक बात सच्ची और दूसरी बात भफ़ूठी होगी? और जो अल्लाह का मुख है तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता। क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा, सब ओर क्योंकर रह सकेगा? इसलिए यह संगत नहीं।।२७।।

२८-जो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है। जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उस को करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि हो जा! बस हो जाता है।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० ११७।।

(समीक्षक) भला खुदा ने हुक्म दिया कि हो जा तो हुक्म किस ने सुना? और किस को सुनाया? और कौन बन गया? किस कारण से बनाया? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय खुदा के कोई भी दूसरा वस्तु न था तो यह संसार कहां से आया? विना कारण के कोई भी कार्य्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत् कारण के विना कहां से हुआ? यह बात केवल लड़कपन की है।

(पूर्वपक्षी) नहीं नहीं, खुदा की इच्छा से ।

(उत्तरपक्षी) क्या तुम्हारी इच्छा से एक मक्खी की टांग भी बन जा सकती है? जो कहते हो कि खुदा की इच्छा से यह सब कुछ जगत् बन गया।

(पूर्वपक्षी) खुदा सर्वशक्तिमान् है इसलिये जो चाहे सो कर लेता है।

(उत्तरपक्षी) सर्वशक्तिमान् का क्या अर्थ है?

(पूर्वपक्षी) जो चाहे सो कर सके।

(उत्तरपक्षी) क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है? अपने आप मर सकता है? मूर्ख रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है?

(पूर्वपक्षी) ऐसा कभी नहीं बन सकता।

(उत्तरपक्षी) इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे संसार में किसी वस्तु के बनने बनाने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं-एक बनानेवाला जैसे कुम्हार, दूसरी घड़ा बनने वाली मिट्टी और तीसरा उस का साधन जिस से घड़ा बनाया जाता है। जैसे

कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बनने वाले घड़े के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं वैसे ही जगत् के बनने से पूर्व परमेश्वर जगत् का कारण प्रकृति और उन के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं। इसलिये यह कुरान की बात सर्वथा असम्भव है ।।२८।।
२९-जब हमने लोगों के लिये काबे को पवित्र स्थान सुख देने वाला बनाया तुम **नमाज** के लिये इबराहीम के स्थान को पकड़ो।।
-मंन १। सि० १। सू० २। आ० १२५।।
(समीक्षक) क्या काबे के पहले पवित्र स्थान खुदा ने कोई भी न बनाया था? जो बनाया था तो काबे के बनाने की कुछ आवश्यकता न थी जो नहीं बनाया था तो विचारे पूर्वोत्पन्नों को पवित्र स्थान के विना ही रक्खा था? पहले ईश्वर को पवित्र स्थान बनाने का स्मरण न हुआ होगा।।२९।।
३०-वो कौन मनुष्य हैं जो इबराहीम के दीन से फिर जावें परन्तु जिस ने अपनी जान को मूर्ख बनाया और निश्चय हम ने दुनिया में उसी को पसन्द किया और निश्चय आखरत में वो ही नेक हैं।। -मंन १। सि० १। सू० २। आ० १३०।।
(समीक्षक) यह कैसे सम्भव है कि जो इबराहीम के दीन को नहीं मानते वे सब मूर्ख हैं। इबराहीम को ही खुदा ने पसन्द किया इस का क्या कारण है? यदि धर्मात्मा होने के कारण से किया तो धर्मात्मा और भी बहुत हो सकते हैं। यदि विना धर्मात्मा होने के ही पसन्द किया तो अन्याय हुआ। हाँ! यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा है वही ईश्वर को प्रिय होता है; अधर्मी नहीं।।३०।।
३१-निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं अवश्य हम तुझे उस किबले को फेरेंगे कि पसन्द करे उस को बस अपना मुख मस्जिदुल्हराम की ओर फेर, जहाँ कहीं तुम हो अपना मुख उस की ओर फेर लो।।
-मंन १। सि० २। सू० २। आ० १४४।।
(समीक्षक) क्या यह छोटी बुत्परस्ती है? नहीं बड़ी।
(पूर्वपक्षी) हम मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं हैं किन्तु बुत्शिकन अर्थात् मूर्त्तों को तोड़नेहारे हैं क्योंकि हम किबले को खुदा नहीं समझते।
(उत्तरपक्षी) जिन को तुम बुत्परस्त समझते हो वे भी उन-उन मूर्त्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उन के सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद किबले बड़े बुत् को क्यों न तोड़ा?
(पूर्वपक्षी) वाह जी! हमारे तो किबले की ओर मुख फेरने का कुरान में हुक्म है और इन को वेद में नहीं है फिर वे बुत्परस्त क्यों नहीं? और हम क्यों? क्योंकि हम को खुदा का हुक्म बजा लाना अवश्य है।

(उत्तरपक्षी) जैसे तुम्हारे लिये कुरान में हुक्म है वैसे उन के लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम कुरान को खुदा का कलाम समझते हो वैसे पुराणी भी पुराणों को खुदा के अवतार व्यास जी का वचन समझते हैं। तुम में और इन में बुत्परस्ती का कुछ भिन्नभाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बुत्परस्त और ये छोटे हैं। क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तब तक उस के घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय वैसे ही मुहम्मद साहेब ने छोटे बुत् को मुसलमानों के मत से निकाला परन्तु बड़ा बुत् जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है वह सब मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करा दी; क्या यह छोटी बुत्परस्ती है? हां! जो हम वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो बुत्परस्ती आदि बुराइयों से बच सको; अन्यथा नहीं। तुम को जब तक अपनी बड़ी बुत्परस्ती को न निकाल दो तब तक दूसरे छोटे बुत्परस्तों के खण्डन से लज्जित होके निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बुत्परस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये।।३१।।

३२-जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उन के लिये यह मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं।। -मंन १। सि० २। सू० २। आ० १५४।।

(समीक्षक) भला ईश्वर के मार्ग में मरने मारने की क्या आवश्यकता है? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मारने से न डरेंगे, लूट मार कराने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा; पश्चात् विषयानन्द करेंगे इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है।।३२।।

३३-और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देने वाला है।। शैतान के पीछे मत चलो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है।। उसके विना और कुछ नहीं कि बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते।। -मंन १। सि० २। सू० २। आ० १६८। १६९। १७०।।

(समीक्षक) क्या कठोर दुःख देने वाला दयालु खुदा पापियों पुण्यात्माओं पर है अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है? जो ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य कहीं धर्म करेगा उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा उस पर दण्डदाता होगा तो फिर बीच में मुहम्मद साहेब और कुरान को मानना आवश्यक न रहा। और जो सब को बुराई कराने वाला मनुष्यमात्र का शत्रु शैतान है उस को खुदा ने उत्पन्न ही क्यों किया? क्या वह भविष्यत् की बात नहीं जानता था? जो कहो कि जानता था परन्तु परीक्षा के लिये बनाया तो भी नहीं बन सकता क्योंकि परीक्षा करना

अल्पज्ञ का काम है; सर्वज्ञ तो सब जीवों के अच्छे बुरे कर्मों को सदा से ठीक-ठीक जानता है। और शैतान सब को बहकाता है तो शैतान को किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप से आप बहकता है तो अन्य भी आप से आप बहक सकते हैं; बीच में शैतान का क्या काम? और जो खुदा ही ने शैतान को बहकाया तो खुदा शैतान का भी शैतान ठहरेगा। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती। और जो कोई बहकाता है वह कुसंग तथा अविद्या से भ्रान्त होता है।।३३।।

३४-तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूअर का हराम है और अल्लाह के विना जिस पर कुछ पुकारा जावे।। -मंन १। सि० २। सू० २। आ० १७३।।

(समीक्षक) यहां विचारना चाहिये कि मुर्दा चाहे आप से आप मरे वा किसी के मारने से दोनों बराबर हैं। हां! इन में कुछ भेद भी है तथापि मृतकपन में कुछ भेद नहीं। और जब एक सूअर का निषेध किया तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है? क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वर के नाम पर शत्रु आदि को अत्यन्त दुःख देके प्राणहत्या करनी? इस से ईश्वर का नाम कलंकित हो जाता है। हां! ईश्वर ने विना पूर्वजन्म के अपराध के मुसलमानों के हाथ से दारुण दुःख क्यों दिलाया? क्या उन पर दयालु नहीं है? उन को पुत्रवत् नहीं मानता? **जिस वस्तु से अधिक उपकार होवे उन गाय आदि के मारने का निषेध न करना जानो हत्या करा कर खुदा जगत् का हानिकारक है ।** हिंसारूप पाप से कलंकित भी हो जाता है। ऐसी बातें खुदा और खुदा के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं।।३४।।

३५-रोजे की रात तुम्हारे लिये हलाल की गई कि मदनोत्सव करना अपनी बीबियों से। वे तुम्हारे वास्ते पर्दा हैं और तुम उन के लिये पर्दा हो। अल्लाह ने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार, बस फिर अल्लाह ने क्षमा किया तुम को बस उन से मिलो और ढूंढो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये लिख दिया है अर्थात् सन्तान, खाओ पीयो यहां तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले तागे से सुपेद तागा वा रात से जब दिन निकले।। -मंन १। सि० २। सू० २। आ० १८७।।

(समीक्षक) यहां यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानों का मत चला वा उसके पहले किसी ने किसी पौराणिक को पूछा होगा कि चान्द्रायण व्रत जो एक महीने भर का होता है उस की विधि क्या है? वह शास्त्रविधि जो कि मध्याह्न में-चंद्र की कला घटने बढ़ने के अनुसार ग्रासों को घटाना बढ़ाना और मध्याह्न दिन में खाना लिखा है उस को न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमा का

दर्शन करके खाना, उस को इन मुसलमान लोगों ने इस प्रकार का कर लिया। परन्तु व्रत में स्त्री समागम का त्याग है वह एक बात खुदा ने बढ़कर कह दी कि तुम स्त्रियों का भी समागम भले ही किया करो और रात में चाहे अनेक बार खाओ। भला यह व्रत क्या हुआ? दिन को न खाया रात को खाते रहे। यह सृष्टिक्रम से विपरीत है कि दिन में न खाना रात में खाना।।३५।।

३६-अल्लाह के मार्ग में लड़ो उन से जो तुम से लड़ते हैं।। मार डालो तुम उन को जहाँ पाओ, कतल से कुफ्र बुरा है।। यहां तक उन से लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाह का।। उन्होंने जितनी जियादती करी तुम पर उतनी ही तुम उन के साथ करो।। -मंन १। सि० २। सू० २। आ० १९०। १९१। १९२। १९३।।

(समीक्षक) जो कुरान में ऐसी बातें न होतीं तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है; न करते। और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करना है उस को कुफ्र कहते हैं अर्थात् कुफ्र से कतल को मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं। अर्थात् जो हमारे दीन को न मानेगा उस को हम कतल करेंगे सो करते ही आये। मजहब पर लड़ते-लड़ते आप ही राज्य आदि से नष्ट हो गये। और उन का मन अन्य मत वालों पर अति कठोर रहता है। क्या चोरी का बदला चोरी है? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि चोरी करें क्या हम भी चोरी करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है। क्या कोई अज्ञानी हम को गालियां दे क्या हम भी उस को गाली देवें? यह बात न ईश्वर की और न ईश्वर के भक्त विद्वान् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है। यह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्य की है।।३६।।

३७-अल्लाह झगड़ा करने वाले को मित्र नहीं रखता।। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो इस्लाम में प्रवेश करो।। -मंन १। सि० २। सू० २। आ० २०५। २०८।।

(समीक्षक) जो झगड़ा करने वाले को खुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता? और झगड़ालू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता है? क्या मुसलमानों के मत में मिलने ही से खुदा राजी है तो वह मुसलमानों ही का पक्षपाती है; सब संसार का ईश्वर नहीं। इस से यहां यह विदित होता है कि न कुरान ईश्वरकृत और न इस में कहा हुआ ईश्वर हो सकता है।।३७।।

३८-खुदा जिसको चाहे अनन्त रिजक देवे।।
-मंन १। सि० २। सू० २। आ० २१२।।

(समीक्षक) क्या विना पाप पुण्य के खुदा ऐसे ही रिजक देता है? फिर भलाई बुराई का करना एक सा ही हुआ। क्योंकि सुख दुःख प्राप्त होना उस की इच्छा पर है। इस से धर्म से विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई कोई इस कुरानोक्त पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं।।३८।।

३९-प्रश्न करते हैं तुभफ़ से रजस्वला को कह वो अपवित्र हैं। पृथव्फ़ रहो ऋतु समय में उन के समीप मत जाओ जब तक कि वे पवित्र न हों। जब नहा लेवें उन के पास उस स्थान से जाओ खुदा ने आज्ञा दी।। तुम्हारी बीवियां तुम्हारे लिये खेतियां हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में।। तुम को अल्लाह लगब (बेकार, व्यर्थ) शपथ में नहीं पकड़ता।।

-मंन १। सि० २। सू० २। आ० २२२। २२३। २२४।।

(समीक्षक) जो यह रजस्वला का स्पर्श संग न करना लिखा है वह अच्छी बात है। परन्तु जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा और जैसा जिस तरह से चाहो जाओ यह मनुष्यों को विषयी करने का कारण है। जो खुदा बेकार शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब भफ़ूठ बोलेंगे शपथ तोडें़गे। इस से खुदा भफ़ूठ का प्रवर्त्तक होगा।।३९।।

४०-वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे। अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उस को उस के वास्ते।। -मंन १। सि० २। सू० २। आ० २४५।।

(समीक्षक) भला खुदा को कर्ज उधार१ लेने से क्या प्रयोजन? जिस ने सारे संसार को बनाया वह मनुष्य से कर्ज लेता है? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समभफ़े कहा जा सकता है। क्या उस का -ाजाना खाली हो गया था? क्या वह हुण्डी पुड़िया व्यापारादि में मग्न होने से टोटे में फंस गया था जो उधार लेने लगा? और एक का दो-दो देना स्वीकार करता है, क्या यह साहूकारों का काम है? किन्तु ऐसा काम तो दिवालियों वा खर्च अविमक करने वाले और आय न्यून होने वालों को करना पड़ता है; ईश्वर को नहीं।।४०।।

४१-उनमें से कोई ईमान न लाया और कोई काफिर हुआ, जो अल्लाह चाहता न लड़ते, जो चाहता है अल्लाह करता है।।

-मंन १। सि० ३। सू० २। आ० २४९।।

(समीक्षक) क्या जितनी लड़ाई होती है वह ईश्वर ही की इच्छा से। क्या वह अधर्म करना चाहे तो कर सकता है? जो ऐसी बात है तो वह खुदा ही नहीं, क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्तिभंग करके लड़ाई करावें। इस से विदित होता है कि यह कुरान न ईश्वर का बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान् का रचित है।।४१।।

४२-जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है? चाहे उस की कुरसी ने आसमान और पृथिवी को समा लिया है।।
-मंन १। सि० ३। सू० २। आ० २५५।।
(समीक्षक) जो आकाश भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं, अपने लिये नहीं क्योंकि वह पूर्णकाम है, उस को किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं। जब उस की कुर्सी है तो वह एकदेशी है। जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है।।४२।।
४३-अल्लाह सूर्य को पूर्व से लाता है बस तू पश्चिम से ले आ, बस जो काफिर था हैरान हुआ था, निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता।। -मंन १। सि० ३। सू० २। आ० २५८।।
(समीक्षक) देखिये यह अविद्या की बात! सूर्य्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है, वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है। इस से निश्चित जाना जाता है कि कुरान के कर्ता को खगोल और न भूगोल विद्या आती थी। जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के खुदा की आवश्यकता नहीं। क्योंकि धर्मात्मा तो धर्ममार्ग में ही होते हैं। मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है। सो कर्त्तव्य के न करने से कुरान

१- इसी आयत के भाष्य में तफसीरहुसैनी में लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहब के पास आया। उसने कहा कि ऐ रसूलल्लाह खुदा कर्ज क्यों मांगता है ? उन्होंने उत्तर दिया कि तुम को बहिश्त में ले जाने के लिये। उस ने कहा जो आप जमानत लें तो मैं दूं। मुहम्मद साहब ने उसकी जमानत ले ली। खुदा का भरोसा न हुआ, उस के दूत का हुआ।

के कर्त्ता की बड़ी भूल है।।४३।।
४४-कहा चार जानवरों से ले उन की सूरत पहिचान रख। फिर हर पहाड़ पर उन में से एक-एक टुकड़ा रख दे। फिर उन को बुला, दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे।। -मंन १। सि० ३। सू० २। आ० २६०।।
(समीक्षक) वाह-वाह देखो जी! मुसलमानों का खुदा भानमती के समान खेल कर रहा है! क्या ऐसी ही बातों से खुदा की खुदाई है। बुद्धिमान् लोग ऐसे खुदा को तिलाञ्जलि देकर दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फसेंगे? इस से खुदा की बड़ाई के बदले बुराई उस के पल्ले पड़ेगी।।४४।।
४५-जिस को चाहे नीति देता है।। -मंन १। सि० ३। सू० २। आ० २६१।।
(समीक्षक) जब जिस को चाहता है उस को नीति देता है तो जिस को नहीं चाहता है उस को अनीति देता होगा। यह बात ईश्वरता की नहीं किन्तु जो

पक्षपात छोड़ सब को नीति का उपदेश करता है वही ईश्वर और आप्त हो सकता है; अन्य नहीं।।४५।।
४६-जो लोग ब्याज खाते हैं वे कबरों से नहीं खड़े होंगे।। -मंन १। सि० ३। सू० २। आ० २७५।।
(समीक्षक) क्या वे कबरों में ही पड़े रहेंगे और जो पड़े रहेंगे तो कब तक ? ऐसी असम्भव बात ईश्वर के पुस्तक की तो नहीं हो सकती किन्तु बालबुद्धियों की तो हो सकती है ।।४६।।
४७-वह कि जिस को चाहेगा क्षमा करेगा जिस को चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है।। -मंन १। सि० ३। सू० २। आ० २६९।।
(समीक्षक) क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गवरगण्ड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है? यदि ईश्वर जिस को चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप-पुण्य न लगना चाहिये और जब ईश्वर ने उस को वैसा ही किया तो जीव को दुःख-सुख भी होना न चाहिये। जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उस का फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं।।४७।।
४८-कह इस से अच्छी और क्या परहेजगारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं जिन में नहरें चलती हैं उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीबियां हैं अल्लाह की प्रसन्नता से। अल्लाह उन को देखने वाला है साथ बन्दों के।।
-मंन १। सि० ३। सू० ३। आ० १५।।
(समीक्षक) भला यह स्वर्ग है किवा वेश्यावन? इस को ईश्वर कहना वा स्त्रैण? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिस में हों उस को परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है? यह पक्षपात क्यों करता है। जो बीबियां बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहाँ गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं। यदि यहां जन्म पाकर वहाँ गई हैं और जो कयामत की रात से पहले ही वहाँ बीबियों को बुला लिया तो उन के खाविन्दों को क्यों न बुला लिया। और कयामत की रात में सब का न्याय होगा इस नियम को क्यों तोड़ा । यदि वहीं जन्मी हैं तो कयामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं। जो उन के लिये पुरुष भी हैं तो यहां से बहिश्त में जाने वाले मुसलमानों को खुदा बीबियां कहां से देगा? और जैसे बीबियां बहिश्त में सदा रहने वाली बनाईं वैसे पुरुषों को वहाँ सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया। इसलिये मुसलमानों का खुदा अन्यायकारी, बे समभफ़ है।।४८।।
४९-निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है।।
-मंन १। सि० ३। सू० ३। आ० १९।।

(समीक्षक) क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं? क्या तेरह सौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं? इसी से यह कुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है।।४९।।

५०-प्रत्येक जीव को पूरा दिया जावेगा जो कुछ उस ने कमाया और वे न अन्याय किये जावेंगे।। कह या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिस को चाहे देता है, जिस से चाहे छीनता है, जिस को चाहे प्रतिष्ठा देता है, जिस को चाहे अप्रतिष्ठा देता है, सब कुछ तेरे ही हाथ में है, प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान् है।। रात को दिन में और दिन को रात में पैठाता है और मृतक को जीवित से जीवित को मृतक से निकालता है और जिस को चाहे अनन्त अन्न देता है।। मुसलमानों को उचित है कि काफ़िरों को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के जो कोई यह करे बस वह अल्लाह की ओर से नहीं।। कह जो तुम चाहते हो अल्लाह को तो पक्ष करो मेरा। अल्लाह चाहेगा तुम को और तुम्हारे पाप क्षमा करेगा; निश्चय ही करुणामय है।। -मंन १। सि० ३। सू० ३। आ० २५। २६। २७। २८। २९।।

(समीक्षक) जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा-पूरा फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा। और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा और अन्याय होगा जब विना उत्तम कर्मों के राज्य प्रतिष्ठा देगा तो भी अन्यायी हो जायगा और विना पाप के राज्य और प्रतिष्ठा छीन लेगा तो भी अन्यायकारी हो जायगा। भला! जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कभी हो सकता है? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य-अभेद्य है। कभी अदल-बदल नहीं हो सकती। अब देखिये पक्षपात की बातें कि जो मुसलमान के मजहब में नहीं हैं उन को काफिर ठहराना। उन में श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के लिये उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है। इस से यह कुरान, कुरान का खुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अविद्या के भरे हुए हैं। इसीलिये मुसलमान लोग अन्धेरे में हैं। और देखिये मुहम्मद साहेब की लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो खुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उस की क्षमा भी करेगा। इस से सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहेब का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था। इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहेब ने कुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है।।५०।।

५१-जिस समय कहा फरिश्तों ने कि ऐ मर्य्यम तुभफ़ को अल्लाह् ने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत् की स्त्रियों के।।
-मंन १। सि० ३। सू० ३। आ० ४५।।
(समीक्षक) भला जब आज कल खुदा के फरिश्ते और खुदा किसी से बातें करने को नहीं आते तो प्रथम कैसे आये होंगे? जो कहो कि पहले के मनुष्य पुण्यात्मा थे अब के नहीं तो यह बात मिथ्या है। किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था उस समय उन देशों में जंगली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसी लिये ऐसे विद्या-विरुद्ध मत चल गये। अब विद्वान् अधिक हैं इसलिये नहीं चल सकता। किन्तु जो-जो ऐसे पोकल मजहब हैं वे भी अस्त होते जाते हैं; वृद्धि की तो कथा ही क्या है।।५१।।
५२-उस को कहता है कि हो बस हो जाता है।। काफिरों ने धोखा दिया, ईश्वर ने धोखा दिया, ईश्वर बहुत मकर करने वाला है।।
-मंन १। सि० ३। सू० ३। आ० ५३। ५४।।
(समीक्षक) जब मुसलमान लोग खुदा के सिवाय दूसरी चीज नहीं मानते तो खुदा ने किस से कहा? और उस के कहने से कौन हो गया? इस का उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी नहीं दे सकेंगे। क्योंकि विना उपादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता। विना कारण के कार्य कहना जानो अपने माँ बाप के विना मेरा शरीर हो गया ऐसी बात है। जो धोखा देता और मकर अर्थात् छल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता।।५२।।
५३-क्या तुम को यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुम को तीन हजार फरिश्तों के साथ सहाय देवे।। -मंन १। सि० ४। सू० ३। आ० १२४।।
(समीक्षक) जो मुसलमानों को तीन हजार फरिश्तों के साथ सहाय देता था तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत सी नष्ट हो गई और होती जाती है क्यों सहाय नहीं देता? इसलिये यह बात केवल लोभ देके मूर्खों को फंसाने के लिये महा अन्याय की है।।५३।।
५४-और काफिरों पर हम को सहाय कर।। अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज है।। जो तुम अल्लाह के मार्ग में मारे जाओ वा मर जाओ, अल्लाह की दया बहुत अच्छी है।। -मंन १। सि० ४। सू० ३। आ० १४७। १५०। १५८।।
(समीक्षक) अब देखिये मुसलमानों की भूल कि जो अपने मत से भिन्न हैं उन के मारने के लिये खुदा की प्रार्थना करते हैं। क्या परमेश्वर भोला है जो इन की बात मान लेवे? यदि मुसलमानों का कारसाज अल्लाह ही है तो फिर

मुसलमानों के कार्य नष्ट क्यों होते हैं? और खुदा भी मुसलमानों के साथ मोह से फंसा हुआ दीख पड़ता है, जो ऐसा पक्षपाती खुदा है तो धर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता।।५४।।

५५-और अल्लाह तुम को परोक्षज्ञ नहीं करता परन्तु अपने पैगम्बरों से जिस को चाहे पसन्द करे। बस अल्लाह और उस के रसूल के साथ ईमान लाओ।।
-मंन १। सि० ४। सू० ३। आ० १७९।।

(समीक्षक) जब मुसलमान लोग सिवाय खुदा के किसी के साथ ईमान नहीं लाते और न किसी को खुदा का साझी मानते हैं तो पैगम्बर साहेब को क्यों ईमान में खुदा के साथ शरीक किया? अल्लाह ने पैगम्बर के साथ ईमान लाना लिखा, इसी से पैगम्बर भी शरीक हो गया, पुनः लाशरीक का कहना ठीक न हुआ । यदि इस का अर्थ यह समझा जाय कि मुहम्मद साहेब के पैगम्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मुहम्मद साहब के होने की क्या आवश्यकता है? यदि खुदा उन को पैगम्बर किये विना अपना अभीष्ट कार्य नहीं कर सकता तो अवश्य असमर्थ हुआ।।५५।।

५६-ऐ ईमानवालो! सन्तोष करो परस्पर थामे रक्खो और लड़ाई में लगे रहो। अल्लाह से डरो कि तुम छुटकारा पाओ।।
-मंन १। सि० ४। सू० ३। आ० १८६।।

(समीक्षक) यह कुरान का खुदा और पैगम्बर दोनों लड़ाईबाज थे। जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करने वाला होता है। क्या नाम मात्र खुदा से डरने से छुटकारा पाया जाता है? वा अधर्मयुक्त लड़ाई आदि से डरने से? जो प्रथम पक्ष है तो डरना न डरना बराबर और जो द्वितीय पक्ष है तो ठीक है।।५६।।

५७-ये अल्लाह की हदें हैं जो अल्लाह और उनके रसूल का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुँचेगा जिन में नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है।। जो अल्लाह की और उस के रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उस की हदों से बाहर हो जायगा वो सदैव रहने वाली आग में जलाया जावेगा और उस के लिये खराब करने वाला दुःख है।। -मंन १। सि० ४। सू० ४। आ० १३। १४।।

(समीक्षक) खुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैगम्बर को अपना शरीक कर लिया है और खुद कुरान ही में लिखा है। और देखो! खुदा पैगम्बर साहेब के साथ कैसा फंसा है कि जिस ने बहिश्त में रसूल का साझा कर दिया है। किसी एक बात

में भी मुसलमानों का खुदा स्वतन्त्र नहीं तो लाशरीक कहना व्यर्थ है। ऐसी-ऐसी बातें ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकतीं।।५७।।
५८-और एक त्रसरेणु की बराबर भी अल्लाह अन्याय नहीं करता। और जो भलाई होवे उस का दुगुण करेगा उस को।।
-मंन १। सि० ५। सू० ४। आ० ४०।।
(समीक्षक) जो एक त्रसरेणु के बराबर भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्य को द्विगुण क्यों देता? और मुसलमानों का पक्षपात क्यों करता है? वास्तव में द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का देवे तो खुदा अन्यायी हो जावे।।५८।।
५९-जब तेरे पास से बाहर निकलते हैं तो तेरे कहने के सिवाय (विपरीत) शोचते हैं। अल्लाह उन की सलाह को लिखता है।। अल्लाह ने उन की कमाई वस्तु के कारण से उन को उलटा किया। क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह के गुमराह किये हुए को मार्ग पर लाओ? बस जिस को अल्लाह गुमराह करे उसको कदापि मार्ग न पावेगा।। -मंन १। सि० ५। सू० ४। आ० ८१-८८।।
(समीक्षक) जो अल्लाह बातों को लिख बहीखाता बनाता जाता है तो सर्वज्ञ नहीं। जो सर्वज्ञ है तो लिखने का क्या काम? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सब को बहकाने से दुष्ट हुआ है तो जब खुदा ही जीवों को गुमराह करता है तो खुदा और शैतान में क्या भेद रहा? हां! इतना भेद कह सकते हैं कि खुदा बड़ा शैतान, वह छोटा शैतान। क्योंकि मुसलमानों ही का कौल है कि जो बहकाता है वही शैतान है तो इस प्रतिज्ञा से खुदा को भी शैतान बना दिया।।५९।।
६०-और अपने हाथों को न रोकें तो उन को पकड़ लो और जहाँ पाओ मार डालो।। मुसलमान को मुसलमान का मारना योग्य नहीं। जो कोई अनजाने से मार डाले बस एक गर्दन मुसलमान का छोड़ना है और खून बहा उन लोगों की ओर सौंपी हुई जो उस कौम से होवें, और तुम्हारे लिये दान कर देवें, जो दुश्मन की कौम से।। और जो कोई मुसलमान को जान कर मार डाले वह सदैव काल दोजख में रहेगा, उस पर अल्लाह का क्रोध और लानत है।। -मंन १। सि० ५। सू० ४। आ० ९१। ९२। ९३।।
(समीक्षक) अब देखिये महा पक्षपात की बात कि जो मुसलमान न हो उस को जहाँ पाओ मार डालो और मुसलमानों को न मारना। भूल से मुसलमानों के मारने में प्रायश्चित्त और अन्य को मारने से बहिश्त मिलेगा ऐसे उपदेश को कुए में डालना चाहिये। ऐसे-ऐसे पुस्तक ऐसे-ऐसे पैगम्बर ऐसे-ऐसे खुदा और ऐसे-ऐसे मत से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं। ऐसों का न होना अच्छा और

ऐसे प्रामादिक मतों से बुद्धिमानों को अलग रह कर वेदोक्त सब बातों को मानना चाहिये क्योंकि उस में असत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। और जो मुसलमान को मारे उस को दोजख मिले और दूसरे मत वाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिले। अब कहो इन दोनों मतों में से किस को मानें किस को छोड़ें? किन्तु ऐसे मूढ़ प्रकल्पित मतों को छोड़ कर वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्यों के लिये है कि जिस में आर्य्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना और दस्यु अर्थात् दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है; सर्वोत्तम है।।६०।।

६१-और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिस ने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया; अवश्य हम उनको दोजख में भेजेंगे।।
-मंन १। सि० ५। सू० ४। आ० ११५।।

(समीक्षक) अब देखिये खुदा और रसूल की पक्षपात की बातें! मुहम्मद साहेब आदि समझते थे कि जो खुदा के नाम से ऐसी हम न लिखेंगे तो अपना मजहब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा। इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन बिगाड़ने में। इस से ये अनाप्त थे। इन की बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता।।६१।।

६२-जो अल्लाह फरिश्तों किताबों रसूलों और कयामत के साथ कुफ्र करे निश्चय वह गुमराह है।। निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफिर हुए फिर-फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ्र में अधिक बढ़े। अल्लाह उन को कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा।। -मंन १। सि० ५। सू० ४। आ० १३६। १३७।।

(समीक्षक) क्या अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है? क्या लाशरीक कहते जाना और उस के साथ बहुत से शरीक भी मानते जाना यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है? क्या तीन बार क्षमा के पश्चात् खुदा क्षमा नहीं करता? और तीन वार कुफ्र करने पर रास्ता दिखलाता है? वा चौथी बार से आगे नहीं दिखलाता? यदि चार-चार बार भी कुफ्र सब लोग करें तो कुफ्र बहुत ही बढ़ जाये।।६२।।

६३-निश्चय अल्लाह बुरे लोगों और काफिरों को जमा करेगा दोजख में।। निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उन को वह धोखा देता है।। ऐ ईमान वालो! मुसलमानों को छोड़ काफिरों को मित्र मत बनाओ।।
-मंन १। सि० ५। सू० ४। आ० १४०। १४२। १४४।।

(समीक्षक) मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोज़ख में जाने का क्या प्रमाण? वाह जी वाह! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा खुदा हम से अलग रहे किन्तु जो धोखेबाज हैं उन से जाकर मेल करे और वे उस से मेल करें। क्योंकि-

ष्यादृशी शीतलादेवी तादृश खरवाहन।ष्

जैसे को तैसा मिले तभी निर्वाह होता है। जिस का खुदा धोखेबाज है उस के उपासक लोग धोखेबाज क्यों न हों? क्या दुष्ट मुसलमान हो उस से मित्रता और अन्य श्रेष्ठ मुसलमान भिन्न से शत्रुता करना किसी को उचित हो सकती है? ।।६३।।

६४-ऐ लोगो! निश्चय तुम्हारे पास सत्य के साथ खुदा की ओर से पैगम्बर आया। बस तुम उन पर ईमान लाओ।। अल्लाह माबूद अकेला है।।
-मंन १। सि० ६। सू० ४। आ० १७०। १७१।।

(समीक्षक) क्या जब पैगम्बरों पर ईमान लाना लिखा तो ईमान में पैगम्बर खुदा का शरीक अर्थात् साभफ़ी हुआ वा नहीं। जब अल्लाह एकदेशी है, व्यापक नहीं, तभी तो उस के पास से पैगम्बर आते जाते हैं तो वह ईश्वर भी नहीं हो सकता। कहीं सर्वदेशी लिखते हैं, कहीं एकदेशी। इस से विदित होता है कि कुरान एक का बनाया नहीं किन्तु बहुतों ने बनाया है।।६४।।

६५-तुम पर हराम किया गया मुर्दार, लोहू, सूअर का मांस जिस पर अल्लाह के विना कुछ और पढ़ा जावे, गला घोटे, लाठी मारे, ऊपर से गिर पड़े, सींग मारे और दरन्दे का खाया हुआ।। -मंन २। सि० ६। सू० ५। आ० ३।।

(समीक्षक) क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं? अन्य बहुत से पशु तथा तिर्य्यक्फ़ जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे? इस वास्ते यह मनुष्यों की कल्पना है; ईश्वर की नहीं। इस से इस का प्रमाण भी नहीं।।६५।।

६६-और अल्लाह को अच्छा उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्तों में भेजूंगा।। -मंन २। सि० ६। सू० ५। आ० १२।।

(समीक्षक) वाह जी! मुसलमानों के खुदा के घर में कुछ भी धन विशेष नहीं रहा होगा। जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता? और उन को क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ा के तुम को स्वर्ग में भेजूंगा? यहां विदित होता है कि खुदा के नाम से मुहम्मद साहेब ने अपना मतलब साधा है।।६६।।

६७-जिस को चाहता है क्षमा करता है जिस को चाहे दुःख देता है।। जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया।।
-मंन २। सि० ६। सू० ५। आ० १८। २०।।

(समीक्षक) जैसे शैतान जिस को चाहता पापी बनाता वैसे ही मुसलमानों का खुदा भी शैतान का काम करता है ! जो ऐसा है तो फिर बहिश्त और दोजख में खुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने वाला हुआ, जीव पराधीन है। जैसी सेना सेनापति के आवमीन रक्षा करती और किसी को मारती है, उस की भलाई बुराई
सेनापति को होती है; सेना पर नहीं।।६७।।
६८-आज्ञा मानो अल्लाह की और आज्ञा मानो रसूल की।।
-मंन २। सि० ७। सू० ५। आ० ९२।।
(समीक्षक) देखिये! यह बात खुदा के शरीक होने की है। फिर खुदा को 'लाशरीक' मानना व्यर्थ है।।६८।।
६९-अल्लाह ने माफ किया जो हो चुका और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उस से बदला लेगा।। -मंन २। सि० ७। सू० ५। आ० ९५।।
(समीक्षक) किये हुए पापों का क्षमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है किन्तु पापवर्द्धक है। हां ! आगामी पाप छुड़वाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे, छोड़े नहीं, तो भी कुछ नहीं हो सकता।।६९।।
७०-और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर भफ़ूठ बांध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई परन्तु वही उस की ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूँगा कि जैसे अल्लाह उतारता है।।
-मंन २। सि० ७। सू० ६। आ० ९३।।
(समीक्षक) इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास खुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी मुहम्मद साहेब के तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं, मुभफ़ को भी पैगम्बर मानो। इस को हटाने औार अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मुहम्मद साहेब ने यह उपाय किया होगा।।७०।।
७१-अवश्य हम ने तुम को उत्पन्न किया, फिर तुम्हारी सूरतें बनाईं। फिर हम ने फरिश्तों से कहा कि आदम को सिजदा करो, बस उन्होंने सिजदा किया परन्तु शैतान सिजदा करने वालों में से न हुआ।। कहा जब मैंने तुभफ़े आज्ञा दी फिर किस ने रोका कि तूने सिजदा न किया, कहा मैं उस से अच्छा हूँ, तूने मुझ को आग से और उस को मिट्टी से उत्पन्न किया।। कहा बस उस में से उतर, यह तेरे

योग्य नहीं है कि तू उस में अभिमान करे।। कहा उस दिन तक ढील दे कि कबरों में से उठाये जावें।। कहा निश्चय तू ढील दिये गयों से है।। कहा बस इस की कसम है कि तूने मुभफ़ को गुमराह किया, अवश्य मैं उन के लिये तेरे सीधे मार्ग पर बैठूंगा।। और प्रायः तू उन को धन्यवाद करने वाला न पावेगा।। कहा उस से दुर्दशा के साथ निकल, अवश्य जो कोई उन में से तेरा पक्ष करेगा तुम सब से दोजख को भरूंगा।।
-मंन २। सि० ८। सू० ७। आ० ११। १२। १३। १४। १५। १६। १७।।
(समीक्षक) अब ध्यान देकर सुनो खुदा और शैतान के भफ़गड़े को। एक फरिश्ता, जैसा कि चपरासी हो, था। वह भी खुदा से न दबा और खुदा उस के आत्मा को पवित्र भी न कर सका। फिर ऐसे बागी को जो पापी बना कर गदर करने वाला था उस को खुदा ने छोड़ दिया। खुदा की यह बड़ी भूल है। शैतान तो सब को बहकाने वाला और खुदा शैतान को बहकाने वाला होने से यह सिद्ध होता है कि शैतान का भी शैतान खुदा है। क्योंकि शैतान प्रत्यक्ष कहता है कि तूने मुभफ़े गुमराह किया। इस से खुदा में पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयों का चलाने वाला मूल कारण खुदा हुआ। ऐसा खुदा मुसलमानों ही का हो सकता है, अन्य श्रेष्ठ विद्वानों का नहीं। और फरिश्तांे से मनुष्यवत् वार्तालाप करने से देहधारी, अल्पज्ञ, न्यायरहित मुसलमानों का खुदा है। इसी से विद्वान् लोग इसलाम के मज़हब को पसन्द नहीं करते।।७१।।
७२-निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिस ने आसमानों और पृथिवी को छः दिन में उत्पन्न किया। फिर करार पकड़ा अर्श पर।। दीनता से अपने मालिक को पुकारो।। -मंन २। सि० ८। सू० ७। आ० ५४। ५६।।
(समीक्षक) भला! जो छः दिन में जगत् को बनावे, (अर्श) अर्थात् ऊपर के आकाश में सिहासन पर आराम करे वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी हो सकता है? इस के न होने से वह खुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा खुदा बधिर है जो पुकारने से सुनता है? ये सब बातें अनीश्वरकृत हैं। इस से कुरान ईश्वरकृत नहीं हो सकता। यदि छः दिनों में जगत् बनाया, सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा और अब तक सोता है वा जागा है? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल सपट्टा और ऐश करता फिरता है।।७२।।
७३-मत फिरो पृथिवी पर भफ़गड़ा करते।। -मंन २। सि० ८। सू० ७। आ० ७४।।
(समीक्षक) यह बात तो अच्छी है परन्तु इस से विपरीत दूसरे स्थानों में जिहाद करना काफिरों को मारना भी लिखा है। अब कहो यह पूर्वापर विरुद्ध नहीं है?

इस से यह विदित होता है कि जब मुहम्मद साहेब निर्बल हुए होंगे तब उन्होंने यह उपाय रचा होगा और जब सबल हुए होंगे तब भफ़गड़ा मचाया होगा। इसी से ये बातें परस्पर विरुद्ध होने से दोनों सत्य नहीं हैं।।७३।।

७४-बस एक ही बार अपना असा डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष।।
-मंन २। सि० ९। सू० ७। आ० १०७।।

(समीक्षक) अब इस के लिखने से विदित होता है कि ऐसी भफ़ूठी बातों को खुदा और मुहम्मद साहेब भी मानते थे। जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान् नहीं थे क्योंकि जैसे आंख से देखने को और कान से सुनने को अन्यथा कोई नहीं कर सकता। इसी से ये इन्द्रजाल की बातें हैं।।७४।।

७५-बस हम ने उन पर मेह का तूफान भेजा! टीढ़ी, चिचड़ी और मैंढक और लोहू।। बस उन से हम ने बदला लिया और उन को डुबो दिया दरियाव में।। और हम ने बनी इसराईल को दरियाव से पार उतार दिया।। निश्चय वह दीन भफ़ूठा है कि जिस में वे हैं और उन का कार्य्य भी भफ़ूठा है।।
-मंन २। सि० ९। सू० ७। आ० १३३। १३६। १३७। १३९।।

(समीक्षक) अब देखिये! जैसा कोई पाखण्डी किसी को डरावे कि हम तुभफ़ पर सर्पों को काटने के लिये भेजेंगे। ऐसी ही यह भी बात है। भला! जो ऐसा पक्षपाती कि एक जाति को डुबा दे और दूसरी को पार उतारे वह अधर्मी खुदा क्यों नहीं। जो दूसरे मतों को कि जिन में हजारों क्रोड़ों मनुष्य हों भफ़ूठा बतलावे और अपने को सच्चा, उस से परे भफ़ूठा दूसरा मत कौन हो सकता है? क्योंकि किसी मत में सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते। यह इकतर्फी डिगरी करना महामूर्खों का मत है। क्या तौरेत जबूर का दीन, जो कि उन का था; भफ़ूठा हो गया? वा उन का कोई अन्य मजहब था कि जिस को भफ़ूठा कहा और जो वह अन्य मजहब था तो कौन सा था कहो कि जिस का नाम कुरान में हो।।७५।।

७६-बस तू मुभफ़ को अलबत्ता देख सकेगा, जब प्रकाश किया उस के मालिक ने पहाड़ की ओर उस को परमाणु-परमाणु किया। गिर पड़ा मूसा बेहोश।।
-मंन २। सि० ९। सू० ७। आ० १४३।।

(समीक्षक) जो देखने में आता है वह व्यापक नहीं हो सकता। और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो खुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसी को क्यों नहीं दिखलाता? सर्वथा विद्या विरुद्ध होने से यह बात मानने योग्य नहीं।।७६।।

७७-और अपने मालिक को दीनता डर से मन में याद कर, धीमी आवाज से सुबह को और शाम को।। -मंन २। सि० ९। सू० ७। आ० २०५।।

(समीक्षक) कहीं-कहीं कुरान में लिखा है कि बड़ी आवाज से अपने मालिक को पुकार और कहीं-कहीं धीरे-धीरे मन में ईश्वर का स्मरण कर। अब कहिये! कौन सी बात सच्ची? और कौन सी भफ़ूठी? जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीत के समान होती है। यदि कोई बात भ्रम से विरुद्ध निकल जाय उस को मान ले तो कुछ चिन्ता नहीं।।७७।।

७८-प्रश्न करते हैं तुभफ़ को लूटों से कह लूटें वास्ते अल्लाह के और रसूल के और डरो अल्लाह से।। -मंन २। सि० ९। सू० ८। आ० १।।

(समीक्षक) जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें करावें और खुदा तथा पैगम्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्य की बात है और अल्लाह का डर बतलाते और डाकादि बुरे काम भी करते जायें और 'उत्तम मत हमारा है' कहते लज्जा भी नहीं। हठ छोड़ के सत्य वेदमत का ग्रहण न करें इस से अधिक कोई बुराई दूसरी होगी? ।।७८।।

७९-और काटे जड़ काफिरों की।। मैं तुम को सहाय दूंगा। साथ सहस्र फरिश्तों के पीछे पीछे आने वाले।। अवश्य मैं काफिरों के दिलों में भय डालूंगा। बस मारो ऊपर गर्दनों के मारो उन में से प्रत्येक पोरी (सन्धि) पर।। -मंन २। सि० ९। सू० ८। आ० ७। ९। १२।।

(समीक्षक) वाह जी वाह! कैसा खुदा और कैसे पैगम्बर दयाहीन। जो मुसलमानी मत से भिन्न काफिरों की जड़ कटवावे। और खुदा आज्ञा देवे उन की गर्दन पर मारो और हाथ पग के जोड़ों को काटने का सहाय और सम्मति देवे ऐसा खुदा लंकेश से क्या कुछ कम है? यह सब प्रपञ्च कुरान के कर्त्ता का है, खुदा का नहीं। यदि खुदा का हो तो ऐसा खुदा हम से दूर और हम उस से दूर रहें।।७९।।

८०-अल्लाह मुसलमानों के साथ है।। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार करो वास्ते अल्लाह के और वास्ते रसूल के ।। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अल्लाह की रसूल की और मत चोरी करो अमानत अपनी की।। और मकर करता था अल्लाह और अल्लाह भला मकर करने वालों का है।। -मंन २। सि० ९। सू० ८। आ० १९। २०। २९। ३०।।

(समीक्षक) क्या अल्लाह मुसलमानों का पक्षपाती है, जो ऐसा है तो अधर्म करता है। नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि भर का है। क्या खुदा बिना पुकारे नहीं सुन सकता। बधिर है? और उस के साथ रसूल को शरीक करना बहुत बुरी बात नहीं है? अल्लाह का कौन सा ख़जाना भरा है जो चोरी करेगा? क्या रसूल और अपने अमानत की चोरी छोड़कर अन्य सब की चोरी किया करे? ऐसा उपदेश अविद्वान् और अधर्मियों का हो सकता है? भला! जो मकर करता और

जो मकर करने वालों का संगी है वह खुदा कपटी, छली और अधर्मी क्यों नहीं ? इसलिये यह कुरान खुदा का बनाया हुआ नहीं है। किसी कपटी छली का बनाया होगा। नहीं तो ऐसी अन्यथा बातें लिखित क्यों होतीं? ।।८०।।
८१-और लड़ो उन से यहां तक कि न रहे फितना अर्थात् बल काफिरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के।। और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पाँचवाँ हिस्सा उस का और वास्ते रसूल के।। -मंन २। सि० ९। सू० ८। आ० ३९। ४१।।
(समीक्षक) ऐसे अन्याय से लड़ने लड़ाने वाला मुसलमानों के खुदा से भिन्न शान्तिभंगकर्ता दूसरा कौन होगा? अब देखिये यह मजहब कि अल्लाह और रसूल के वास्ते सब जगत् को लूटना लुटवाना लुटेरों का काम नहीं है? और लूट के माल में खुदा का हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनना खुदा अपनी खुदाई में बट्टा लगाता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसा पुस्तक, ऐसा खुदा और ऐसा पैगम्बर संसार में ऐसी उपाधि और शान्तिभंग करके मनुष्यों को दुःख देने के लिये कहां से आया? जो ऐसे-ऐसे मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता।।८१।।
८२-और कभी देखे तू जब काफिरों को फरिश्ते कब्ज करते हैं, मारते हैं, मुख उन के और पीठें उन की और कहते चखो अजाब जलने का।। हम ने उन के पाप से उन को मारा और हम ने फिराओन की कौम को डुबा दिया ।। और तैयारी करो वास्ते उन के जो कुछ तुम कर सको।।
-मंन २। सि० ९। सू० ८। आ० ५०। ५४। ६०।।
(समीक्षक) क्यों जी! आजकल रूस ने रूम आदि और इंग्लैण्ड ने मिश्र की दुर्दशा कर डाली; फरिश्ते कहां सो गये? और अपने सेवकों के शत्रुओं को खुदा पूर्व मारता डुबाता था यह बात सच्ची हो तो आजकल भी ऐसा करे जिस से ऐसा नहीं होता इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं? अब देखिये ! यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्न मत वालों के लिये दुःखदायक कर्म करो। ऐसी आज्ञा विद्वान् और धार्मिक दयालु की नहीं हो सकती। फिर लिखते हैं कि खुदा दयालु और न्यायकारी है। ऐसी बातों से मुसलमानों के खुदा से न्याय और दयादि सद्गुण दूर बसते हैं।।८२।।
८३-ऐ नबी किफायत है तुझ को अल्लाह और उन को जिन्होंने मुसलमानों से तेरा पक्ष किया।। ऐ नबी रगबत अर्थात् चाह चस्का दे मुसलमानों को ऊपर लड़ाई के, जो हों तुम में से २० आदमी सन्तोष करने वाले तो पराजय करें दो सौ का।। बस खाओ उस वस्तु से कि लूटा है तुमने हलाल पवित्र और डरो

अल्लाह से वह क्षमा करने वाला दयालु है।। -मंन २। सि० १०। सू० ८। आ० ६४। ६५। ६९।।
(समीक्षक) भला यह कौन सी न्याय, विद्वत्ता और धर्म की बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहें अन्याय भी करे उसी का पक्ष और लाभ पहुँचावे? और जो प्रजा में शान्तिभंग करके लड़ाई करे करावे और लूट मार के पदार्थों को हलाल बतलावे और फिर उसी का नाम क्षमावान् दयालु लिखे यह बात खुदा की तो क्या किन्तु किसी भले आदमी की भी नहीं हो सकती। ऐसी-ऐसी बातों से कुरान ईश्वरवाक्य कभी नहीं हो सकता।।८३।।
८४-सदा रहेंगे बीच उस के, अल्लाह समीप है उस के पुण्य बड़ा।। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत पकड़ो बापों अपने को और भाइयों अपने को मित्र जो दोस्त रखें कुफ्र को ऊपर ईमान के।। फिर उतारी अल्लाह ने तसल्ली अपनी ऊपर रसूल अपने के और ऊपर मुसलमानों के और उतारे लश्कर नहीं देखा तुम ने उन को और अजाब किया उन लोगों को और यही सजा है काफिरों को।। फिर-फिर आवेगा अल्लाह पीछे उस के ऊपर।। और लड़ाई करो उन लोगों से जो ईमान नहीं लाते।। -मंन २। सि० १०। सू० ९। आ० २२। २३। २६। २७।।
(समीक्षक) भला जो बहिश्तवालों के समीप अल्लाह रहता है तो सर्वव्यापक क्योंकर हो सकता है? जो सर्वव्यापक नहीं तो सृष्टिकर्त्ता और न्यायाधीश नहीं हो सकता। और अपने माँ, बाप, भाई और मित्र को छुड़वाना केवल अन्याय की बात है। हां! जो वे बुरा उपदेश करें; न मानना परन्तु उन की सेवा सदा करनी चाहिये। जो पहले खुदा मुसलमानों पर बड़ा सन्तोषी था; और उनके सहाय के लिए लश्कर उतारता था सच हो तो अब ऐसा क्यों नहीं करता? और जो प्रथम काफिरों को दण्ड देता और पुनः उसके ऊपर आता था तो अब कहाँ गया? क्या विना लड़ाई के ईमान खुदा नहीं बना सकता? ऐसे खुदा को हमारी ओर से सदा तिलाञ्जलि है, खुदा क्या है एक खिलाड़ी है? ।।८४।।
८५-और हम बाट देखने वाले हैं वास्ते तुम्हारे यह कि पहुँचावें तुम को अल्लाह अजाब अपने पास से वा हमारे हाथों से।।
-मंन २। सि० १०। सू० ९। आ० ५२।।
(समीक्षक) क्या मुसलमान ही ईश्वर की पुलिस बन गये हैं कि अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथ से अन्य किसी मत वालों को पकड़ा देता है? क्या दूसरे क्रोड़ों मनुष्य ईश्वर को अप्रिय हैं? मुसलमानों में पापी भी प्रिय हैं? यदि ऐसा है तो अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजा की सी व्यवस्था दीखती है। आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान् मुसलमान हैं वे भी इस निर्मूल अयुक्त मत को मानते हैं।।८५।।

८६-प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमान वालों से और ईमानवालियों से बहिश्तें चलती हैं नीचे उन के से नहरें सदैव रहने वाली बीच उस के और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की ओर बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा।। बस ठट्ठा करते हैं उन से, ठट्ठा किया अल्लाह ने उन से।। -मंन २। सि० १०। सू० ९। आ० ७३। ८०।।

(समीक्षक) यह खुदा के नाम से स्त्री पुरुषों को अपने मतलब के लिये लोभ देना है। क्योंकि जो ऐसा प्रलोभन न देते तो कोई मुहम्मद साहेब के जाल में न फंसता। ऐसे ही अन्य मत वाले भी किया करते हैं। मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया ही करते हैं परन्तु खुदा को किसी से ठट्ठा करना उचित नहीं है। यह कुरान क्या है बड़ा खेल है।।८६।।

८७-परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया उन्होंने साथ धन अपने के तथा जानों अपनी के और इन्हीं लोगों के लिये भलाई है ।। और मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उन के, बस वे नहीं जानते।।
-मंन २। सि० १०। सू० ९। आ० ८८। ९३।।

(समीक्षक) अब देखिये मतलबसिन्धु की बात! कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहेब के साथ ईमान लाये और जो नहीं लाये वे बुरे हैं! क्या यह बात पक्षपात और अविद्या से भरी हुई नहीं है? जब खुदा ने मोहर ही लगा दी तो उन का अपराध पाप करने में कोई भी नहीं किन्तु खुदा ही का अपराध है क्योंकि उन बिचारों को भलाई से दिलों पर मोहर लगा के रोक दिये; यह कितना बड़ा अन्याय है!!! ।।८७।।

८८-ले माल उनके से खैरात कि पवित्र करे तू उन को अर्थात् बाहरी और शुद्ध करे तू उन को साथ उन के अर्थात् गुप्त में।। निश्चय अल्लाह ने मोल ली हैं मुसलमानों से जानें उन की और माल उन के बदले, कि वास्ते उन के बहिश्त है। लडें़गे बीच मार्ग अल्लाह के बस मारेंगे और मर जावेंगे।। -मंन २। सि० ११। सू० ९। आ० १०३। १११।।

(समीक्षक) वाह जी वाह मुहम्मद साहेब! आपने तो गोकुलिये गुसांइयों की बराबरी कर ली क्योंकि उन का माल लेना और उन को पवित्र करना यही बात तो गुसांइयों की है। वाह खुदा जी! आपने अच्छी सौदागरी लगाई कि मुसलमानों के हाथ से अन्य गरीबों के प्राण लेना ही लाभ समझा और उन अनाथों को मरवा कर उन निर्दयी मनुष्यों को स्वर्ग देने से दया और न्याय से मुसलमानों का खुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाई में बट्टा लगा के बुद्धिमान् धार्मिकों में घृणित हो गया।।८८।।

८९-ऐ लोगो जो ईमान लाये हो लड़ो उन लोगों से कि पास तुम्हारे हैं काफिरों से और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे दृढ़ता।। क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओं में डाले जाते हैं बीच हर वर्ष के एक बार वा दो बार। फिर वे नहीं तोबा करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं।। -मंन २। सि० ११। सू० ९। आ० १२३। १२६।।

(समीक्षक) देखिये! ये भी एक विश्वासघात की बातें खुदा मुसलमानों को सिखलाता है कि चाहें पड़ोसी हो वा किसी के नौकर हों जब अवसर पावें तभी लड़ाई वा घात करें। ऐसी बातें मुसलमानों से बहुत बन गई हैं इसी कुरान के लेख से। अब तो मुसलमान समझ के इन कुरानोक्त बुराइयों को छोड़ दें तो बहुत अच्छा है।।८९।।

९०-निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिस ने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छः दिन के। फिर करार पकड़ा ऊपर अर्श के, तदबीर करता है काम की।। -मंन ३। सि० ११। सू० १०। आ० ३।।

(समीक्षक) आसमान आकाश एक और बिना बना अनादि है। उस का बनाना लिखने से निश्चय हुआ कि वह कुरानकर्त्ता पदार्थविद्या को नहीं जानता था? क्या परमेश्वर के सामने छः दिन तक बनाना पड़ता है? तो जो 'हो मेरे हुक्म से और हो गया' जब कुरान में ऐसा लिखा है फिर छः दिन कभी नहीं लग सकते।। इससे छः दिन लगना झूठ है। जो वह व्यापक होता तो ऊपर अर्श के क्यों ठहरता? और जब काम की तदबीर करता है तो ठीक तुम्हारा खुदा मनुष्य के समान है क्योंकि जो सर्वज्ञ है वह बैठा-बैठा क्या तदबीर करेगा? इस से विदित होता है कि ईश्वर को न जानने वाले जंगली लोगों ने यह पुस्तक बनाया होगा।।९०।।

९१-शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानों के।। -मंन ३। सि० ११। सू० १०। आ० ५७।।

(समीक्षक) क्या यह खुदा मुसलमानों ही का है? दूसरों का नहीं? और पक्षपाती है जो मुसलमानों ही पर दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं। यदि मुसलमान ईमानदारों को कहते हैं तो उन के लिये शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं और मुसलमानों से भिन्नों को उपदेश नहीं करता तो खुदा की विद्या ही व्यर्थ है।।९१।।

९२-परीक्षा लेवे तुम को, कौन तुम में से अच्छा है कर्मों में। जो कहे तू! अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्यु के।। -मंन ३। सि० १२। सू० ११। आ० ७।।

(समीक्षक) जब कर्मों की परीक्षा करता है तो सर्वज्ञ ही नहीं। और जो मृत्यु पीछे उठाता है तो दोैड़ा सुपुर्द रखता है और अपने नियम जो कि मरे हुए न जीवें उस को तोड़ता है। यह खुदा को बट्टा लगता है।।९२।।

९३-और कहा गया ऐ पृथिवी अपना पानी निगल जा और ऐ आसमान बस कर और पानी सूख गया।। और ऐ कौम यह है कि निशानी ऊंटनी अल्लाह की वास्ते तुम्हारे, बस छोड़ दो उस को बीच पृथिवी अल्लाह के खाती फिरे।। -मंन ३। सि० १२। सू० ११। आ० ४४। ६४।।

(समीक्षक) क्या लड़केपन की बात है! पृथिवी और आकाश कभी बात सुन सकते हैं? वाह जी वाह! खुदा के ऊंटनी भी है तो ऊंट भी होगा? तो हाथी घोड़े, गवमे आदि भी होंगे? और खुदा का ऊंटनी से खेत खिलाना क्या अच्छी बात है? क्या ऊंटनी पर चढ़ता भी है? जो ऐसी बातें हैं तो नवाबी की सी घसड़पसड़ खुदा के घर में भी हुई।।९३।।

९४-और सदैव रहने वाले बीच उस के जब तक कि रहें आसमान और पृथिवी।। और जो लोग सुभागी हुए बस बहिश्त के सदा रहने वाले हैं; जब तक रहें आसमान और पृथिवी।। -मंन ३। सि० १२। सू० ११। आ० १०७। १०८।।

(समीक्षक) जब दोजख और बहिश्त में कयामत के पश्चात् सब लोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किस लिए रहेगी? और जब दोज़ख और बहिश्त के रहने की आसमान पृथिवी के रहने तक अवधि हुई तो सदा रहेंगे बहिश्त वा दोजख में, यह बात भफ़ूठी हुई। ऐसा कथन अविद्वानों का होता है; ईश्वर वा विद्वानों का नहीं।।९४।।

९५-जब यूसुफ ने अपने बाप से कहा कि ऐ बाप मेरे मैंने एक स्वप्न में देखा।। -मंन ३। सि० १२। सू० १२। आ० ४ से ५९ तक।।

(समीक्षक) इस प्रकरण में पिता पुत्र का संवादरूप किस्सा कहानी भरी है इसलिये कुरान ईश्वर का बनाया नहीं। किसी मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास लिख दिया है।।९५।।

९६-अल्लाह वह है कि जिस ने खड़ा किया आसमानों को विना खम्भे के देखते हो तुम उस को। फिर ठहरा ऊपर अर्श के। आज्ञा वर्तने वाला किया सूरज और चांद को।। और वही है जिस ने बिछाया पृथिवी को।। उतारा आसमान से पानी बस बहे नाले साथ अन्दाजे अपने के।। अल्लाह खोलता है भोजन को वास्ते जिस को चाहे और तंग करता है।।
-मंन ३। सि० १३। सू० १३। आ० २। ३। १७। २६।।

(समीक्षक) मुसलमानों का खुदा पदार्थविद्या कुछ भी नहीं जानता था। जो जानता तो गुरुत्व न होने से आसमान को खम्भे लगाने की कथा कहानी कुछ भी न लिखता। यदि खुदा अर्शरूप एक स्थान में रहता है तो वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं हो सकता । और जो खुदा मेघविद्या जानता तो आकाश से पानी उतारा लिखा पुनः यह क्यों न लिखा कि पृथिवी से पानी ऊपर चढ़ाया। इससे निश्चय हुआ कि कुरान का बनाने वाला मेघ की विद्या को भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे बुरे कामों के सुख दुःख देता है तो पक्षपाती अन्यायकारी निरक्षर भट्ट है।।९६।।

९७-कह निश्चय अल्लाह गुमराह करता है जिस को चाहता है और मार्ग दिखलाता है तर्फ अपनी उस मनुष्य को रुजू करता है।।
-मंन ३। सि० १३। सू० १३। आ० २७।।

(समीक्षक) जब अल्लाह गुमराह करता है तो खुदा और शैतान में क्या भेद हुआ? जब कि शैतान दूसरों को गुमराह अर्थात् बहकाने से बुरा कहाता है तो खुदा भी वैसा ही काम करने से बुरा शैतान क्यों नहीं? और बहकाने के पाप से दोजखी क्यों नहीं होना चाहिये? ।।९७।।

९८-इसी प्रकार उतारा हम ने इस कुरान को अर्बी में, जो पक्ष करेगा तू उन की इच्छा का पीछे इस के आई तेरे पास विद्या से।। बस सिवाय इस के नहीं कि ऊपर तेरे पैगाम पहुँचाना है और ऊपर हमारे है हिसाब लेना।। -मंन ३। सि० १३। सू० १३। आ० ३७। ४०।।

(समीक्षक) कुरान किधर की ओर से उतारा? क्या खुदा ऊपर रहता है? जो यह बात सच्च है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस व्यापक है। पैगाम पहुँचाना हल्कारे का काम है और हल्कारे की आवश्यकता उसी को होती है जो मनुष्यवत् एकदेशी हो। और हिसाब लेना देना भी मनुष्य का काम है; ईश्वर का नहीं क्योंकि वह सर्वज्ञ है। यह निश्चय होता है कि किसी अल्पज्ञ मनुष्य का बनाया कुरान है।।९८।।

९९-और किया सूर्य चन्द्र को सदैव फिरने वाला।। निश्चय आदमी अवश्य अन्याय और पाप करने वाला है।। -मंन ३। सि० १३। सू० १४। आ० ३३। ३४।।

(समीक्षक) क्या चन्द्र, सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षों का दिन रात होवे। और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करने वाला है तो कुरान से शिक्षा करना व्यर्थ है। क्योंकि जिन का स्वभाव पाप ही करने का है तो उन में पुण्यात्मता कभी न होगी और संसार में पुण्यात्मा

और पापात्मा सदा दीखते हैं। इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती।।९९।।

१००-बस जब ठीक करूँ मैं उस को और फूंक दूं बीच उसके रूह अपनी से। बस गिर पड़ो वास्ते उस के सिजदा करते हुए।। कहा ऐ रब मेरे, इस कारण कि गुमराह किया तू ने मुभफ़ को अवश्य जीनत दूंगा मैं वास्ते उन के बीच पृथिवी के और गुमराह करूंगा।। -मंन ३। सि० १४। सू० १५। आ० २९। से ३९। तक।।

(समीक्षक) जो खुदा ने अपनी रूह आदम साहेब में डाली तो वह भी खुदा हुआ और जो वह खुदा न था तो सिजदा अर्थात् नमस्कारादि भक्ति करने में अपना शरीक क्यों किया? जब शैतान को गुमराह करने वाला खुदा ही है तो वह शैतान का भी शैतान बड़ा भाई गुरु क्यों नहीं? क्योंकि तुम लोग बहकाने वाले को शैतान मानते हो तो खुदा ने भी शैतान को बहकाया और प्रत्यक्ष शैतान ने कहा कि मैं बहकाऊंगा। फिर भी उस को दण्ड देकर कैद क्यों न किया? और मार क्यों न डाला? ।।१००।।

१०१-और निश्चय भेजे हम ने बीच हर उम्मत के पैगम्बर।। जब चाहते हैं हम उस को, यह कहते हैं हम उस को हो! बस हो जाती है।।
-मंन ३। सि० १४। सू० १६। आ० ३५।४०।।

(समीक्षक) जो सब कौमों पर पैगम्बर भेजे हैं तो सब लोग जो कि पैगम्बर की राय पर चलते हैं वे काफिर क्यों? क्या दूसरे पैगम्बर का मान्य नहीं सिवाय तुम्हारे पैगम्बर के? यह सर्वथा पक्षपात की बात है। जो सब देश में पैगम्बर भेजे तो आर्य्यावर्त में कौन सा भेजा? इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं। जब खुदा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो जा, वह जड़ कभी नहीं सुन सकती। खुदा का हुक्म क्योंकर बजा सकेगा? और सिवाय खुदा के दूसरी चीज नहीं मानते तो सुना किस ने? और हो कौन गया? ये सब अविद्या की बातें हैं। ऐसी बातों को अनजान लोग मानते हैं।।१०१।।

१०न-और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के बेटियां-पवित्रता है उस को- और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें।। कसम अल्लाह की अवश्य भेजे हम ने पैगम्बर।।
-मंन ३। सि० १४। सू० १६। आ० ५७। ६३।।

(समीक्षक) अल्लाह बेटियों से क्या करेगा? बेटियां तो किसी मनुष्य को चाहिये, क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते और बेटियां नियत की जाती हैं? इस का क्या कारण है? बताइये? कसम खाना भफूठों का काम है, खुदा की बात नहीं। क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा देखने में आता है कि जो भफूठा होता है वही कसम खाता है। सच्चा सौगन्ध क्यों खावे? ।।१०२।।

१०३-ये लोग वे हैं कि मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उन के और कानों उन के और आंखों उन की के और ये लोग वे हैं बेखबर।। और पूरा दिया जावेगा हर जीव को जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जावेंगे।। -मंन ३। सि० १४। सू० १६। आ० १०८-१११।।

(समीक्षक)-जब खुदा ही ने मोहर लगा दी तो वे बिचारे विना अपराध मारे गये क्योंकि उन को पराधीन कर दिया। यह कितना बड़ा अपराध है? और फिर कहते हैं कि जिस ने जितना किया है उतना ही उस को दिया जायगा; न्यूनाधिक नहीं। भला! उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु खुदा के कराने से किये। पुनः उन का अपराध ही न हुआ। उन को फल न मिलना चाहिये। इस का फल खुदा को मिलना उचित है। और जो पूरा दिया जाता है तो क्षमा किस बात की जाती है? जो क्षमा की जाती है तो न्याय उड़ जाता है। ऐसा गड़बड़ाध्याय ईश्वर का कभी नहीं हो सकता किन्तु निर्बुद्धि छोकरों का होता है।।१०३।।

१०४-और किया हमने दोजख को वास्ते काफिरों के घेरने वाला स्थान।। और हर आदमी को लगा दिया हम ने उस को अमलनामा उस का बीच गर्दन उस की के और निकालेंगे हम वास्ते उस के दिन कयामत के एक किताब कि देखेगा उस को खुला हुआ।। और बहुत मारे हम ने कुरनून से पीछे नूह के।। -मंन ४। सि० १५। सू० १७। आ० ८-१३। १७।।

(समीक्षक) यदि काफिर वे ही हैं कि जो कुरान, पैगम्बर और कुरान के कहे खुदा, सातवें आसमान और नमाज आदि को न मानें और उन्हीं के लिये दोजख होवे तो यह बात केवल पक्षपात की ठहरे क्योंकि कुरान ही के मानने वाले सब अच्छे और अन्य के मानने वाले सब बुरे कभी हो सकते हैं? यह बड़ी लड़कपन की बात है कि प्रत्येक की गर्दन में कर्मपुस्तक! हम तो किसी एक की भी गर्दन में नहीं देखते। यदि इस का प्रयोजन कर्मों का फल देना है तो फिर मनुष्यों के दिलों, नेत्रें आदि पर मोहर रखना और पापों का क्षमा करना क्या खेल मचाया है? कयामत की रात को किताब निकालेगा खुदा तो आज कल वह किताब कहां है? क्या साहूकार की बही समान लिखता रहता है? यहां यह विचारना चाहिये कि जो पूर्वजन्म नहीं तो जीवों के कर्म ही नहीं हो सकते फिर कर्म की रेखा क्या लिखी? जो विना कर्म के लिखा तो उन पर अन्याय किया क्योंकि विना अच्छे बुरे कर्म्मों के उन को दुःख-सुख क्यों दिया? जो कहो कि खुदा की मरजी, तो भी उसने अन्याय किया। अन्याय उस को कहते हैं कि विना बुरे भले कर्म किये दुःख सुखरूप फल न्यूनाधिक देना और उस समय खुदा ही किताब

बांचेगा वा कोई सरिश्तेदार सुनावेगा? जो खुदा ही ने दीर्घकाल सम्बन्धी जीवों को विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी हो गया। जो अन्यायकारी होता है वह खुदा ही नहीं हो सकता।।१०४।।
१०५-और दिया हमने समूद को ऊंटनी प्रमाण।। और बहका जिस को बहका सके।। जिस दिन बुलावेंगे हम सब लोगों को साथ पेशवाओं उन के बस जो कोई दिया गया अमलनामा उस का बीच दहिने हाथ उस के।।
-मंन ४। सि० १५। सू० १७। आ० ५९। ६४। ७१।।
(समीक्षक) वाह जी! जितनी खुदा की साश्चर्य निशानी हैं उन में से एक ऊंटनी भी खुदा के होने में प्रमाण अथवा परीक्षा में साधक है। यदि खुदा ने शैतान को बहकाने का हुक्म दिया तो खुदा ही शैतान का सरदार और सब पाप कराने वाला ठहरा। ऐसे को खुदा कहना केवल कम समझ की बात है। जब कयामत की रात अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने कराने के लिये पैगम्बर और उन के उपदेश मानने वालों को खुदा बुलावेगा तो जब तक प्रलय न होगा तब तक सब दौरा सुपुर्द रहे और दौरा सुपुर्द सब को दुःखदायक है जब तक न्याय न किया जाय। इसलिये शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है। यह तो पोपांबाई का न्याय ठहरा। जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जब तक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों तब तक उन को दण्ड वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये। वैसा ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरा सुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया। ऐसा न्याय का काम नहीं हो सकता। न्याय तो वेद और मनुस्मृति का देखो जिस में क्षण मात्र विलम्ब नहीं होता और अपने-अपने कर्मानुसार दण्ड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं। दूसरा पैगम्बरों को गवाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है। भला ! ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तक का उपदेश करने वाला ईश्वर कभी हो सकता है? कभी नहीं।।१०५।।१०६-ये लोग वास्ते उन के हैं बाग हमेशह रहने के, चलती हैं नीचे उन के से नहरें, गहना पहिराये जावेंगे बीच उस के कंगन सोने के से और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाहि की से और ताफते की से तकिये किये हुए बीच उस के ऊपर तख़तों के। अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठाने की।।
-मंन ४। सि० १५। सू० १८। आ० ३१।।
(समीक्षक) वाह जी वाह! क्या कुरान का स्वर्ग है जिस में बाग, गहने, कपड़े, गद्दी, तकिये आनन्द के लिये हैं। भला! कोई बुद्धिमान् यहां विचार करे तो यहां से वहाँ मुसलमानों के बहिश्त में अधिक कुछ भी नहीं है सिवा अन्याय के, वह

यह कि कर्म उन के अन्त वाले और फल उन का अनन्त। और जो मीठा नित्य खावे तो थोड़े दिन में विष के समान प्रतीत होता है। जब सदा वे सुख भोगेंगे तो उन को सुख ही दुःखरूप हो जायगा। इसलिये महाकल्प पर्यन्त मुक्तिसुख भोग के पुनर्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है।।१०६।।

१०७-और यह बस्तियां हैं कि मारा हम ने उन को जब अन्याय किया उन्होंने और हम ने उन के मारने की प्रतिज्ञा स्थापन की।।

-मंन ४। सि० १५। सू० १८। आ० ५९।।

(समीक्षक) भला! सब बस्ती भर पापी कभी हो सकती है? और पीछे से प्रतिज्ञा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा क्योंकि जब उन का अन्याय देखा तो प्रतिज्ञा की, पहिले नहीं जानता था। इस से दयाहीन भी ठहरा।।१०७।।

१०८-और वह जो लड़का, बस थे माँ बाप उस के ईमान वाले, बस डरे हम यह कि पकड़े उन को सरकशी में और कुफ्र में।। यहां तक कि पहुँचा जगह डूबने सूर्य्य की, पाया उसको डूबता था बीच चश्मे कीचड़ के ।। कहा उन ने ऐजुलकरनैन! निश्चय याजूज माजूज फिसाद करने वाले हैं बीच पृथिवी के।। -मंन ४। सि० १६। सू० १८। आ० ८०। ८६। ९४।।

(समीक्षक) भला! यह खुदा की कितनी बेसमभफ़ है! शंका से डरा कि लड़के के माँ बाप कहीं मेरे मार्ग से बहका कर उलटे न कर दिये जावें। यह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सकती। अब आगे की अविद्या की बात देखिये कि इस किताब का बनाने वाला सूर्य्य को एक भफ़ील में रात्रि को डूबा जानता है, फिर प्रातःकाल निकलता है। भला! सूर्य्य तो पृथिवी से बहुत बड़ा है। वह नदी वा भफ़ील वा समुद्र में कैसे डूब सकेगा? इस से यह विदित हुआ कि कुरान के बनाने वाले को भूगोल खगोल की विद्या नहीं थी। जो होती तो ऐसी विद्याविरुद्ध बात क्यों लिख देता । और इस पुस्तक को मानने वालों को भी विद्या नहीं है। जो होती तो ऐसी मिथ्या बातों से युक्त पुस्तक को क्यों मानते? अब देखिये खुदा का अन्याय! आप ही पृथिवी को बनाने वाला राजा न्यायाधीश है औार याजूज माजूज को पृथिवी में फसाद भी करने देता है। यह ईश्वरता की बात से विरुद्ध है। इस से ऐसी पुस्तक को जंगली लोग माना करते हैं; विद्वान् नहीं।।१०८।।

१०९-और याद करो बीच किताब के मर्यम को, जब जा पड़ी लोगों अपने से मकान पूर्वी में।। बस पड़ा उन से इधर पर्दा, बस भेजा हम ने रूह अपनी को अर्थात् फरिश्ता, बस सूरत पकड़ी वास्ते उस के आदमी पुष्ट की।। कहने लगी निश्चय मैं शरण पकड़ती हूँ रहमान की तुभफ़ से, जो है तू परहेजगार।। कहने

लगा सिवाय इस के नहीं कि मैं भेजा हुआ हूं मालिक तेरे के से, ताकि दे जाऊं मैं तुभफ़ को लड़का पवित्र।। कहा कैसे होगा वास्ते मेरे लड़का नहीं हाथ लगाया मुभफ़ को आदमी ने, नहीं मैं बुरा काम करने वाली।। बस गिर्भत हो गई साथ उस के और जा पड़ी साथ उस के मकान दूर अर्थात् जंगल में।।
-मंन ४। सि० १६। सू० १९। आ० १६। १७। १८। १९। २०-२३।।
(समीक्षक) अब बुद्धिमान् विचार लें कि फरिश्ते सब खुदा की रूह हैं तो खुदा से अलग पदार्थ नहीं हो सकते। दूसरा यह अन्याय कि वह मर्यम कुमारी के लड़का होना। किसी का संग करना नहीं चाहती थी परन्तु खुदा के हुक्म से फरिश्ते ने उस को गर्भवती किया। यह न्याय से विरुद्ध बात है। यहां अन्य भी असभ्यता की बातें बहुत लिखी हैं उन को लिखना उचित नहीं समभफ़ा।।१०९।।
११०-क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हम ने शैतानों को ऊपर काफिरों के बहकाते हैं उन को बहकाने कर।। -मंन ४। सि० १६। सू० १९। आ० ८३।।
(समीक्षक) जब खुदा ही शैतानों को बहकाने के लिये भेजता है तो बहकने वालों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उन को दण्ड हो सकता और न शैतानों को। क्योंकि यह खुदा के हुक्म से सब होता है। इस का फल खुदा को होना चाहिये। जो सच्चा न्यायकारी है तो उस का फल दोजख आप ही भोगे और जो न्याय को छोड़ के अन्याय को करे तो अन्यायकारी हुआ। अन्यायकारी ही पापी कहाता है।।११०।।

१११-और निश्चय क्षमा करने वाला हूँ वास्ते उस मनुष्य के तोबाः की और ईमान लाया और कर्म किये अच्छे, फिर मार्ग पाया।।
-मंन ४। सि० १६। सू० २०। आ० ८२।।
(समीक्षक) जो तोबाः से पाप क्षमा करने की बात कुरान में है यह सब को पापी कराने वाली है क्योंकि पापियों को इस से पाप करने का साहस बहुत बढ़ जाता है। इस से यह पुस्तक और इस का बनाने वाला पापियों को पाप करने में हौसला बढ़ाने वाले हैं। इस से यह पुस्तक परमेश्वरकृत और इस में कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता।।१११।।
११२-और किये हम ने बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे।। -मंन ४। सि० १७। सू० २१। आ० ३०।।
(समीक्षक) यदि कुरान का बनाने वाला पृथिवी का घूमना आदि जानता तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती। शंका

हुई कि जो पहाड़ नहीं धरता तो हिल जाती! इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती है? ।।११२।।

११३-और शिक्षा दी हम ने उस औरत को और रक्षा की उस ने अपने गुह्य अंगों की। बस फूंक दिया हम ने बीच उस के रूह अपनी को।।
-मंन ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९१।।

(समीक्षक) ऐसी अश्लील बातें खुदा की पुस्तक में खुदा की क्या और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होतीं। जब कि मनुष्यों में ऐसी बातों का लिखना अच्छा नहीं तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है? ऐसी-ऐसी बातों से कुरान दूषित होता है। यदि अच्छी बात होती तो अति प्रशंसा होती; जैसे वेदों की।।११३।।

११४-क्या नहीं देखा तूने कि अल्लाह को सिजदा करते हैं जो कोई बीच आसमानों और पृथिवी के हैं, सूर्य और चन्द्र तारे और पहाड़, वृक्ष और जानवर।। पहिनाये जावेंगे बीच उस के कंगन सोने और मोती के और पहिनावा उन का बीच उसके रेशमी है।। और पवित्र रख घर मेरे को वास्ते गिर्द फिरने वालों के और खड़े रहने वालों के।। फिर चाहिये कि दूर करें मैल अपने और पूरी करें भेंटें अपनी और चारों ओर फिरें घर कदीम के।। ताकि नाम अल्लाह का याद करें।।
-मंन ४। सि० १७। सू० २२। आ० १८। २३। २६। २८। ३३।।

(समीक्षक) भला! जो जड़ वस्तु हैं, परमेश्वर को जान ही नहीं सकते, फिर वे उस की भक्ति क्योंकर कर सकते हैं? इस से यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता किन्तु किसी भ्रान्त का बनाया हुआ दीखता है। वाह! बड़ा अच्छा स्वर्ग है जहाँ सोने मोती के गहने और रेशमी कपड़े पहिरने को मिलें। यह बहिश्त यहां के राजाओं के घर से अधिक नहीं दीख पड़ता। और जब परमेश्वर का घर है तो वह उसी घर में रहता भी होगा फिर बुत्परस्ती क्यों न हुई? और दूसरे बुत्परस्तों का खण्डन क्यों करते हैं? जब खुदा भेंट लेता, अपने घर की परिक्रमा करने की आज्ञा देता है और पशुओं को मरवा के खिलाता है तो यह खुदा मन्दिर वाले और भैरव, दुर्गा के सदृश हुआ और महाबुत्परस्ती का चलाने वाला हुआ क्योंकि मूर्तियों से मस्जिद बड़ा बुत् है। इस से खुदा और मुसलमान बड़े बुत्परस्त और पुराणी तथा जैनी छोटे बुत्परस्त हैं।।११४।।

११५-फिर निश्चय तुम दिन कयामत के उठाये जाओगे।। -मंन ४। सि० १८। सू० २३। आ० १६।।

(समीक्षक) कयामत तक मुर्दे कबरों में रहेंगे वा किसी अन्य जगह? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रहकर पुण्यात्मा भी दुःख भोग करेंगे? यह न्याय अन्याय है। और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से खुदा और मुसलमान पापभागी होंगे।।११५।।

११६-उस दिन की गवाही देवेंगे ऊपर उन के जबानें उन की और हाथ उन के और पांव उन के साथ उस वस्तु के कि थे करते।। अल्लाह नूर है आसमानों का और पृथिवी का, नूर उस के कि मानिन्द ताक की है बीच उस के दीप हो और दीप बीच कंदील शीशों के हैं, वह कंदील मानो कि तारा है चमकता, रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतून के से, न पूर्व की ओर है न पश्चिम की, समीप है तेल उस का रोशन हो जावे जो न लगे ऊपर रोशनी के मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने के जिस को चाहता है।।

-मंन ४। सि० १८। सू० २४। आ० २४। ३५।।

(समीक्षक) हाथ पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या है। क्या खुदा आगी बिजुली है? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं घट सकता। हां! किसी साकार वस्तु में घट सकता है।।११६।।

११७-और अल्लाह ने उत्पन्न किया हर जानवर को पानी से बस कोई उन में से वह है कि जो चलता है पेट अपने के।। और जो कोई आज्ञा पालन करे अल्लाह की रसूल उस के की।। कह आज्ञा पालन करे खुदा की रसूल उस के की और आज्ञा पालन करो रसूल की ताकि दया किये जाओ।।

-मंन ४। सि० १८। सू० २४। आ० ४५। ५२। ५६।।

(समीक्षक) यह कौन सी फिलासफी है कि जिन जानवरों के शरीर में सब तत्त्व दीखते हैं और कहना कि केवल पानी से उत्पन्न किये। यह केवल अविद्या की बात है। जब अल्लाह के साथ पैगम्बर की आज्ञा पालन करना होता है तो खुदा का शरीक हो गया वा नहीं? यदि ऐसा है तो क्यों खुदा को लाशरीक कुरान में लिखा और कहते हो? ।।११७।।

११८-और जिस दिन कि फट जावेगा आसमान साथ बदली के और उतारे जावेंगे फरिश्ते।। बस मत कहा मान काफिरों का और भफ़गड़ा कर उन से साथ भफ़गड़ा बढ़ा ।। और बदल डालता है अल्लाह बुराइयों उन की को भलाइयों से।। और जो कोई तोबाः करे और कर्म करे अच्छे बस निश्चय आता है तरफ अल्लाह

की।। -मंन ४। सि० १९। सू० २५। आ० २५-५२। ७०। ७१।।

(समीक्षक) यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बद्दलों के साथ फट जावे। यदि आकाश कोई मूर्त्तिमान् पदार्थ हो तो फट सकता है। यह मुसलमानों का कुरान शान्ति भंग कर गदर भफ़गड़ा मचाने वाला है। इसीलिये धार्मिक विद्वान् लोग इस को नहीं मानते। यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्य का अदला बदला हो जाय। क्या यह तिल और उड़द की सी बात है जो पलटा हो जावे? जो तोबा करने से पाप छूटे और ईश्वर मिले तो कोई भी पाप करने से न डरे। इसलिये ये सब बातें विद्या से विरुद्ध हैं।।११८।।

११९-वही की हम ने तरफ मूसा की यह कि ले चल रात को बन्दों मेरे को, निश्चय तुम पीछा किये जाओगे।। बस भेजे लोग फिरोन ने बीच नगरों के जमा करने वाले।। और वह पुरुष कि जिसने पैदा किया मुभफ़ को है, बस वही मार्ग दिखलाता है।। और वह जो खिलाता है मुभफ़ को पिलाता है मुभफ़ को।। और उस पुरुष की आशा रखता हूँ मैं यह कि क्षमा करे वास्ते मेरे अपराध मेरा दिन कयामत के।। -मंन ५। सि० १९। सू० २६। आ० ५२। ५३। ७८। ७९। ८२।।
(समीक्षक) जब खुदा ने मूसा की ओर बही भेजी पुनः दाऊद, ईसा और मुहम्मद साहेब की ओर किताब क्यों भेजी? क्योंकि परमेश्वर की बात सदा एक सी और बेभूल होती है और उस के पीछे कुरान तक पुस्तकों का भेजना पहली पुस्तक को अपूर्ण भूलयुक्त माना जायगा। यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं तो यह कुरान भफ़ूठा होगा। चारों का जो कि परस्पर प्रायः विरोध रखते हैं उन का सर्वथा सत्य होना नहीं हो सकता। यदि खुदा ने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं तो वे मर भी जायेंगे अर्थात् उन का कभी नाश कभी अभाव भी होगा? जो परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियों को खिलाता पिलाता है तो किसी को रोग होना न चाहिये और सब को तुल्य भोजन देना चाहिये । पक्षपात से एक को उत्तम और दूसरे को निकृष्ट जैसा कि राजा और कंगले को श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिलता है; न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिलाने पिलाने और पथ्य कराने वाला है तो रोग ही न होने चाहिये परन्तु मुसलमान आदि को भी रोग होते हैं। यदि खुदा ही रोग छुड़ा कर आराम करने वाला है तो मुसलमानों के शरीरों में रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो खुदा पूरा वैद्य नहीं है यदि पूरा वैद्य है तो मुसलमानों के शरीरों में रोग क्यों रहते हैं? यदि वही मारता और जिलाता है तो उसी खुदा को पाप पुण्य लगता होगा। यदि जन्म जन्मान्तर के कर्मानुसार व्यवस्था करता है तो उस को कुछ भी अपराध नहीं। यदि वह पाप क्षमा और न्याय कयामत की रात में करता है तो खुदा पाप बढ़ाने वाला होकर पापयुक्त

होगा। यदि क्षमा नहीं करता तो यह कुरान की बात झूठी होने से बच नहीं सकती है।।११९।।

१२०-नहीं तू परन्तु आदमी मानिन्द हमारी बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चों से।। कहा यह ऊंटनी है वास्ते उस के पानी पीना है एक बार।। -मंन ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५४। १५५।।

(समीक्षक) भला! इस बात को कोई मान सकता है कि पत्थर से ऊंटनी निकले! वे लोग जंगली थे कि जिन्होंने इस बात को मान लिया। और ऊंटनी की निशानी देनी केवल जंगली व्यवहार है; ईश्वरकृत नहीं। यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इस में न होतीं।।१२०।।

१२१-ऐ मूसा बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूँ गालिब।। और डाल दे असा अपना, बस जब कि देखा उस को हिलता था मानो कि वह सांप है---ऐ मूसा मत डर, निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैगम्बर।। अल्लाह नहीं कोई माबूद परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का।। यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर।।

-मंन ५। सि० १९। सू० २७। आ० ९। १०। २६। ३१।।

(समीक्षक) और भी देखिये अपने मुख आप अल्लाह बड़ा जबरदस्त बनता है। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं; खुदा का क्योंकर हो सकता है? तभी तो इन्द्रजाल का लटका दिखला जंगली मनुष्यों को वश कर आप जंगलस्थ खुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक में कभी नहीं हो सकती। यदि वह बड़े अर्श अर्थात् सातवें आसमान का मालिक है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता है। यदि सरकशी करना बुरा है तो खुदा और मुहम्मद साहेब ने अपनी स्तुति से पुस्तक क्यों भर दिये? मुहम्मद साहेब ने अनेकों को मारे इस से सरकशी हुई वा नहीं? यह कुरान पुनरुक्त और पूर्वापर विरुद्ध बातों से भरा हुआ है।।१२१।।

१२२-और देखेगा तू पहाड़ों को अनुमान करता है तू उन को जमे हुए और वे चले जाते हैं मानिन्द चलने बादलों की, कारीगरी अल्लाह की जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को, निश्चय वह खबरदार है उस वस्तु के कि करते हो।। -मंन ५। सि० २०। सू० २७। आ० ८७। ८८।।

(समीक्षक) बद्दलों के समान पहाड़ का चलना कुरान बनाने वालों के देश में होता होगा; अन्यत्र नहीं। और खुदा की -ाबरदारी तो शैतान बाजी को न पकड़ने और न दण्ड देने से ही विदित होती है कि जिस ने एक बाजी को भी

अब तक न पकड़ पाया; न दण्ड दिया। इस से अधिक असावधानी क्या होगी।।१२२।।

१२३-बस मुष्ट मारा उस को मूसा ने, बस पूरी की आयु उस की।। कहा ऐ रब मेरे, निश्चय मैंने अन्याय किया जान अपनी को, बस क्षमा कर मुझ को, बस क्षमा कर दिया उस को, निश्चय वह क्षमा करने वाला दयालु है।। और मालिक तेरा उत्पन्न करता है, जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है।।

-मंन ५। सि० २०। सू० २८। आ० १५। १६। ६८।।

(समीक्षक) अब अन्य भी देखिये मुसलमान और ईसाइयों के पैगम्बर और खुदा कि मूसा पैगम्बर मनुष्य की हत्या किया करे और खुदा क्षमा किया करे। ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं? क्या अपनी इच्छा ही से जैसा चाहता है वैसी उत्पत्ति करता है? क्या उस ने अपनी इच्छा ही से एक को राजा दूसरे को कंगाल और एक को विद्वान् दूसरे को मूर्खादि किया है? यदि ऐसा है तो न कुरान सत्य और न अन्यायकारी होने से यह खुदा ही हो सकता है।।१२३।।

१२४-और आज्ञा दी हम ने मनुष्य को साथ मा बाप के भलाई करना और जो झगड़ा करें तुझ से दोनों यह कि शरीक लावे तू साथ मेरे उस वस्तु को, कि नहीं वास्ते तेरे साथ उस के ज्ञान, बस मत कहा मान उन दोनों का, तर्फ मेरी है।। और अवश्य भेजा हम ने नूह को तर्फ कौम उस के कि बस रहा बीच उन के हजार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम।। -मंन ५। सि० २०। सू० २९। आ० ८। १४।।

(समीक्षक) माता-पिता की सेवा करना अच्छा ही है जो खुदा के साथ शरीक करने के लिये कहे तो उन का कहना न मानना यह भी ठीक है परन्तु यदि माता पिता मिथ्याभाषणादि करने की आज्ञा देवें तो क्या मान लेना चाहिये? इसलिये यह बात आवमी अच्छी और आधी बुरी है। क्या नूह आदि पैगम्बरों ही को खुदा संसार में भेजता है तो अन्य जीवों को कौन भेजता है? यदि सब को वही भेजता है तो सभी पैगम्बर क्यों नहीं? और जो प्रथम मनुष्यों की हजार वर्ष की आयु होती थी तो अब क्यों नहीं होती? इसलिये यह बात ठीक नहीं।।१२४।।

१२५-अल्लाह पहिली बार करता है उत्पत्ति, फिर दूसरी बार करेगा उस को, फिर उसी की ओर फेरे जाओगे।। और जिस दिन वर्षा अर्थात् खड़ी होगी कयामत निराश होंगे पापी।। बस जो लोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे बस वे बीच बाग के सिंगार किये जावेंगे।। और जो भेज दें हम एक बाव, बस देखें उसी खेती को पीली हुई।। इसी प्रकार मोहर रखता है अल्लाह ऊपर

दिलों उन लोगों के कि नहीं जानते।। -मंन ५। सि० २१। सू० ३०। आ० ११। १२। १५। ५१। ५९।।

(समीक्षक) यदि अल्लाह् दो बार उत्पत्ति करता है तीसरी बार नहीं तो उत्पत्ति की आदि और दूसरी बार के अन्त में निकम्मा बैठा रहता होगा? और एक तथा दो बार उत्पत्ति के पश्चात् उस का सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ हो जायगा। यदि न्याय करने के दिन पापी लोग निराश हों तो अच्छी बात है परन्तु इस का प्रयोजन यह तो कहीं नहीं है कि मुसलमानों के सिवाय सब पापी समझ कर निराश किये जायें? क्योंकि कुरान में कई स्थानों में पापियों से औरों का ही प्रयोजन है। यदि बगीचे में रखना और शृंगार पहिराना ही मुसलमानों का स्वर्ग है तो इस संसार के तुल्य हुआ और वहाँ माली और सुनार भी होंगे अथवा खुदा ही माली और सुनार आदि का काम करता होगा। यदि किसी को कम गहना मिलता होगा तो चोरी भी होती होगी और बहिश्त से चोरी करने वालों को दोजख में भी डालता होगा। यदि ऐसा होता होगा तो सदा बहिश्त में रहेंगे यह बात झूठ हो जायगी। जो किसानों की खेती पर भी खुदा की दृष्टि है सो यह विद्या खेती करने के अनुभव ही से होती है। और यदि माना जाय कि खुदा ने अपनी विद्या से सब बात जान ली है तो ऐसा भय देना अपना घमण्ड प्रसिद्ध करना है। यदि अल्लाह् ने जीवों के दिलों पर मोहर लगा पाप कराया तो उस पाप का भागी वही होवे जीव नहीं हो सकते। जैसे जय पराजय सेनाधीश का होता है वैसे यह सब पाप खुदा ही को प्राप्त होवे।।१२५।।

१२६-ये आयतें हैं किताब हिक्मत वाले की।। उत्पन्न किया आसमानों को बिना सुतून अर्थात् खम्भे के देखते हो तुम उस को और डाले बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे।। क्या नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है दिन को बीच रात के।। क्या नहीं देखा कि किश्तियां चलती हैं बीच दर्य्या के साथ निआमतों अल्लाह् के, ताकि दिखलावे तुम को निशानियां अपनी।। -मंन ५। सि० २१। सू० ३१। आ० २। १०। २९। ३१।।

(समीक्षक) वाह जी वाह! हिक्मतवाली किताब ! कि जिस में सर्वथा विद्या से विरुद्ध आकाश की उत्पत्ति और उस में खम्भे लगाने की शंका और पृथिवी को स्थिर रखने के लिये पहाड़ रखना। थोड़ी सी विद्या वाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता और हिक्मत देखो कि जहाँ दिन है वहाँ रात नहीं और जहाँ रात है वहाँ दिन नहीं। उस को एक दूसरे में प्रवेश कराना लिखता है यह बड़े अविद्वानों की बात है। इसलिये यह कुरान विद्या की पुस्तक नहीं हो सकती। क्या यह विद्याविरुद्ध बात नहीं है कि नौका मनुष्य और क्रिया

कौशलादि से चलती हैं वा खुदा की कृपा से? यदि लोहे वा पत्थरों की नौका बना कर समुद्र में चलावें तो खुदा की निशानी डूब जाय वा नहीं? इसलिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वर का बनाया हुआ हो सकता है।।१२६।।

१२७-तदबीर करता है काम की आसमान से तर्फ पृथिवी की फिर चढ़ जाता है तर्फ उस की बीच एक दिन के कि है अवधि उसकी सहस्र वर्ष उन वर्षों से कि गिनते हो तुम।। यह है जानने वाला गैब का और प्रत्यक्ष का गालिब दयालु।। फिर पुष्ट किया उस को और फूंका बीच रूह अपनी से।। कह कब्ज करेगा तुम को फरिश्ता मौत का वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे।। और जो चाहते हम अवश्य देते हम हर एक जीव को शिक्षा उस की, परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओर से कि अवश्य भरूँगा मैं दोजख को जिनों से और आदमियों से इकट्ठे।। -मंन ५। सि० २१। सू० ३२। आ० ५। ६। ९। ११। १३।।

(समीक्षक) अब ठीक सिद्ध हो गया कि मुसलमानों का खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। क्योंकि जो व्यापक होता तो एकदेश से प्रबन्ध करना और उतरना चढ़ना नहीं हो सकता। यदि खुदा फरिश्ते को भेजता है तो भी आप एकदेशी हो गया। आप आसमान पर टंगा बैठा है और फरिश्तों को दौड़ाता है। यदि फरिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़ दें वा किसी मुर्दे को छोड़ जायें तो खुदा को क्या मालूम हो सकता है? मालूम तो उस को हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हो, सो तो है ही नहीं; होता तो फरिश्तों के भेजने तथा कई लोगों की कई प्रकार से परीक्षा लेने का क्या काम था? और एक हजार वर्षों में तथा आने जाने प्रबन्ध करने से सर्वशक्तिमान् भी नहीं। यदि मौत का फरिश्ता है तो उस फरिश्ते का मारने वाला कौन सा मृत्यु है? यदि वह नित्य है तो अमरपन में खुदा के बराबर शरीक हुआ। एक फरिश्ता एक समय में दोजख भरने के लिये जीवों को शिक्षा नहीं कर सकता और उन को विना पाप किये अपनी मर्जी से दोजख भर के उन को दुःख देकर तमाशा देखता है तो वह खुदा पापी अन्यायकारी और दयाहीन है! ऐसी बातें जिस पुस्तक में हों न वह विद्वान् और ईश्वरकृत और जो दया न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता।।१२७।।

१२८-कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुम को जो भागो तुम मृत्यु वा कत्ल से।। ऐ बीबियो नबी की! जो कोई आवे तुम में से निर्लज्जता प्रत्यक्ष के, दुगुणा किया जायेगा वास्ते उसके अजाब और है यह ऊपर अल्लाह के सहल।।
-मंन ५। सि० २१। सू० ३३। आ० १५। ३०।।

(समीक्षक) यह मुहम्मद साहेब ने इसलिये लिखा लिखवाया होगा कि लड़ाई में कोई न भागे, हमारा विजय होवे, मरने से भी न डरे, ऐश्वर्य बढ़े, मजहब

बढ़ा लेवें? और यदि बीबी निर्लज्जता से न आवे तो क्या पैगम्बर साहेब निर्लज्ज हो कर आवें? बीबियों पर अजाब हो और पैगम्बर साहेब पर अजाब न होवे। यह किस घर का न्याय है? ।।१२८।।

१२९-और अटकी रहो बीच घरों अपने के, आज्ञा पालन करो अल्लाह और रसूल की; सिवाय इसके नहीं।। बस जब अदा कर ली जैद ने हाजित उस से, ब्याह दिया हम ने तुझ से उस को ताकि न होवे ऊपर ईमान वालों के तंगी बीच बीबियों से ले पालकों उन के के, जब अदा कर लें उन से हाजित और है आज्ञा खुदा की की गई।। नहीं है ऊपर नबी के कुछ तंगी बीच उस वस्तु के।। नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्द का।। और हलाल की स्त्री ईमानवाली जो देवे बिना महर के जान अपनी वास्ते नबी के।। ढील देवे तू जिस को चाहे उन में से और जगह देवे तर्फ अपनी जिस को चाहे, नहीं पाप ऊपर तेरे।। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरों में पैगम्बर के।।

-मंन ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ३३। ३६। ३७। ४०। ५०। ५१। ५२।।

(समीक्षक) यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में कैद के समान रहे और पुरुष खुल्ले रहें। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा? इसी अपराध से मुसलमानों के लड़के विशेषकर सयलानी और विषयी होते हैं। अल्लाह और रसूल की एक अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न-भिन्न विरुद्ध? यदि एक है तो दोनों की आज्ञा पालन करो कहना व्यर्थ है और जो भिन्न-भिन्न विरुद्ध है तो एक सच्ची और दूसरी झूठी? एक खुदा दूसरा शैतान हो जायगा? और शरीक भी होगा? वाह कुरान का खुदा और पैगम्बर तथा कुरान को! जिस को दूसरे का मतलब नष्ट कर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य रचता है। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे। यदि न होते तो (लेपालक) बेटे की स्त्री को जो पुत्र की स्त्री थी; अपनी स्त्री क्यों कर लेते? और फिर ऐसी बातें करने वाले का खुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। मनुष्यों में जो जंगली भी होगा वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना! यदि नबी किसी का बाप न था तो जैद (लेपालक) बेटा किस का था? और क्यों लिखा? यह उसी मतलब की बात है कि जिस से बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से पैगम्बर साहेब न बचे, अन्य से क्योंकर बचे होंगे? ऐसी चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होना कभी नहीं छूट सकता। क्या जो कोई

पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न होकर निकाह करना चाहे तो भी हलाल है? और यह महा अधर्म की बात है कि नबी तो जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्री लोग यदि पैगम्बर अपराधी भी हो तो कभी न छोड़ सकें! जैसे पैगम्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार दृष्टि से प्रवेश न करें तो वैसे पैगम्बर साहेब भी किसी के घर में प्रवेश न करें। क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निशंक प्रवेश करें और माननीय भी रहें? भला! कौन ऐसा हृदय का अन्धा है कि जो इस कुरान को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेब को पैगम्बर और कुरानोक्त ईश्वर को परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातों से युक्त इस मत को अर्ब देशनिवासी आदि मनुष्यों ने मान लिया!।।१२९।।

१३०-नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूल को, यह कि निकाह करो बीबियों उस की को पीछे उस के कभी, निश्चय यह है समीप अल्लाह के बड़ा पाप।। निश्चय जो लोग कि दुःख देते हैं अल्लाह को और रसूल उस के को, लानत की है उन को अल्लाह ने।। और वे लोग कि दुःख देते हैं मुसलमानों को और मुसलमान औरतों को विना इस के, बुरा किया है उन्होंने बस निश्चय उठाया उन्होंने बोहतान अर्थात् भफ़ूठ और प्रत्यक्ष पाप।। लानत मारे, जहाँ पाये जावें पकड़े जावें कतल किये जावें खूब मारा जाना।। ऐ रब हमारे, दे उन को द्विगुणा अजाब से और लानत से बड़ी लानत कर।।

-मंन ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ५३। ५४। ५५। ६१। ६८।।

(समीक्षक) वाह! क्या खुदा अपनी खुदाई को धर्म के साथ दिखला रहा है? जैसे रसूल को दुःख देने का निषेध करना तो ठीक है परन्तु दूसरे को दुःख देने में रसूल को भी रोकना योग्य था सों क्यों न रोका? क्या किसी के दुःख देने से अल्लाह भी दुःखी हो जाता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। क्या अल्लाह और रसूल को दुःख देने का निषेध करने से यह नहीं सिद्ध होता कि अल्लाह और रसूल जिस को चाहें दुःख देवें? अन्य सब को दुःख देना चाहिये? जैसे मुसलमानों और मुसलमानों की स्त्रियों को दुःख देना बुरा है तो इन से अन्य मनुष्यों को दुःख देना भी अवश्य बुरा है।। जो ऐसा न माने तो उस की यह बात भी पक्षपात की है। वाह गदर मचाने वाले खुदा और नबी! जैसे ये निर्दयी संसार में हैं वैसे और बहुत थोड़े होंगे। जैसा यह कि अन्य लोग जहाँ पाये जावें, मारे जावें पकड़े जावें, लिखा है वैसी ही मुसलमानों पर कोई आज्ञा देवे तो मुसलमानों को यह बात बुरी लगेगी वा नहीं? वाह क्या हिंसक पैगम्बर आदि हैं कि जो परमेश्वर से प्रार्थना करके अपने से दूसरों को दुगुण दुःख देने के

लिये प्रार्थना करना लिखा है। यह भी पक्षपात मतलबसिन्धुपन और महा अधर्म की बात है। इसी से अब तक भी मुसलमान लोगों में से बहुत से शठ लोग ऐसा ही कर्म करने में नहीं डरते। यह ठीक है कि सुशिक्षा के विना मनुष्य पशु के समान रहता है।।१३०।।

१३१-और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है हवाओं को बस उठाती हैं बादलों को, बस हांक लेते हैं तर्फ शहर मुर्दे की, बस जीवित किया हम ने साथ उस के पृथिवी को पीछे मृत्यु उस की के, इसी प्रकार कबरों में से निकालना है।। जिस ने उतारा बीच घर सदा रहने के दया अपनी से, नहीं लगती हम को बीच उस के मेहनत और नहीं लगती बीच उस के माँदगी।।

-मंन ५। सि० २२। सू० ३५। आ० ९। ३५।।

(समीक्षक) वाह क्या फिलासफी खुदा की है। भेजता है वायु को, वह उठाता फिरता है बद्दलों को! और खुदा उस से मुर्दों को जिलाता फिरता है! यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर का काम निरन्तर एक सा होता रहता है। जो घर होंगे वे विना बनावट के नहीं हो सकते और जो बनावट का है वह सदा नहीं रह सकता। जिस के शरीर है वह परिश्रम के विना दुःखी होता और शरीर वाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता। जो एक स्त्री से समागम करता है वह विना रोग के नहीं बचता तो जो बहुत स्त्रियों से विषयभोग करता है उस की क्या ही दुर्दशा होती होगी? इसलिये मुसलमानों का रहना बहिश्त में भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता।।१३१।।

१३२-कसम है कुरान दृढ़ की।। निश्चय तू भेजे हुओं से है।। ऊपर मार्ग सीधे के।। उतारा है गालिब दयावान् ने।।

-मंन ५। सि० २३। सू० ३६। आ० २। ३। ४। ५।।

(समीक्षक) अब देखिये! यह कुरान खुदा का बनाया होता तो वह इस की सौगन्द क्यों खाता? यदि नबी खुदा का भेजा होता तो (लेपालक) बेटे की स्त्री पर मोहित क्यों होता? यह कथनमात्र है कि कुरान के मानने वाले सीधे मार्ग पर हैं। क्योंकि सीधा मार्ग वही होता है जिस में सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपात रहित न्याय धर्म्म का आचरण करना आदि हैं और इन से विपरीत का त्याग करना। सो न कुरान में न मुसलमानों में और न इन के खुदा में ऐसा स्वभाव है। यदि सब पर प्रबल पैगम्बर मुहम्मद साहेब होते तो सब से अधिक विद्यावान् और शुभगुणयुक्त क्यों न होते? इसलिये जैसे कूंजड़ी अपने बेरों को खट्टा नहीं बतलाती वैसी यह बात भी है।।१३२।।

१३३-और फूंका जावेगा बीच सूर के बस नागहां व कबरों में से तर्फ मालिक अपने की दौडें़गे।। और गवाही देंगे पांव उन के साथ उस वस्तु के थे कमाते।। सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उस की जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु को यह कि कहता वास्ते उस के कि 'हो जा', बस हो जाता है।।
-मंन ५। सि० २३। सू० ३६। आ० ५१। ६६। ८२।।
(समीक्षक) अब सुनिये ऊटपटांग बातें! पग कभी गवाही दे सकते हैं? खुदा के सिवाय उस समय कौन था जिस को आज्ञा दी? किस ने सुनी? और कौन बन गया? यदि न थी तो यह बात भफ़ूठी और जो थी तो वह बात-जो सिवाय खुदा के कुछ चीज नहीं थी और खुदा ने सब कुछ बना दिया-वह भफ़ूठी।।१३३।।
१३४-फिराया जावेगा उनके ऊपर पियाला शराब शुद्ध का।। सफेद मजा देने वाली वास्ते पीने वालों के।। समीप उन के बैठी होंगी नीचे आंख रखने वालियाँ, सुन्दर आंखों वालियां।। मानो कि वे अण्डे हैं छिपाये हुए।। क्या बस हम नहीं मरेंगे।। और अवश्य लूत निश्चय पैगम्बरों से था।। जब कि मुक्ति दी हम ने उस को और लोगों उस के को सब को।। परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहने वालों में है।। फिर मारा हम ने औरों को।।
-मंन ६। सि० २३। सू० ३७। आ० ४५। ४६। ४८। ४९। ५६। १२७। १२८। १२९।।
(समीक्षक) क्यों जी! यहां तो मुसलमान लोग शराब को बुरा बतलाते हैं परन्तु इन के स्वर्ग में तो नदियां की नदियां बहती हैं। इतना अच्छा है कि यहां तो किसी प्रकार मद्य पीना छुड़ाया परन्तु यहां के बदले वहाँ उन के स्वर्ग में बड़ी खराबी है! मारे स्त्रियों के वहाँ किसी का चित्त स्थिर नहीं रहता होगा! और बड़े-बड़े रोग भी होते होंगे! यदि शरीर वाले होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीर वाले न होंगे तो भोग विलास ही न कर सकेंगे। फिर उन के स्वर्ग में जाना व्यर्थ है। यदि लूत को पैगम्बर मानते हो तो जो बाइबल में लिखा है कि उस से उस की लड़कियों ने समागम करके दो लड़के पैदा किये इस बात को भी मानते हो वा नहीं? जो मानते हो तो ऐसे को पैगम्बर मानना व्यर्थ है। और जो ऐसे और ऐसे के सिंगयों को खुदा मुक्ति देता है तो वह खुदा भी वैसा ही है। क्योंकि बुढ़िया की कहानी कहने वाला और पक्षपात से दूसरों को मारने वाला खुदा कभी नहीं हो सकता। ऐसा खुदा मुसलमानों ही के घर में रह सकता है; अन्यत्र नहीं।।१३४।।
१३५-बहिश्तें हैं सदा रहने की खुले हुए हैं दर उन के वास्ते उन के।। तकिये किये हुए बीच उन के मंगावेंगे बीच इस के मेवे और पीने की वस्तु।। और समीप होंगी उनके, नीचे रखने वालियां दृष्टि और दूसरों से समायु।। बस सिजदा किया

फरिश्तों ने सब ने।। परन्तु शैतान ने न माना अभिमान किया और था काफिरों से।। ऐ शैतान किस वस्तु ने रोका तुभफ़ को यह कि सिजदा करे वास्ते उस वस्तु के कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपने के, क्या अभिमान किया तूने वा था तू बड़े अधिकार वालों से ।। कहा कि मैं अच्छा हूँ उस वस्तु से, उत्पन्न किया तूने मुभफ़ को आग से, उस को मट्टी से।। कहा बस निकल इन आसमानों में से, बस निश्चय तू चलाया गया है।। निश्चय ऊपर तेरे लानत है मेरी दिन जजा तक।। कहा ऐ मालिक मेरे, ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे।। कहा कि बस निश्चय तू ढील दिये गयों से है ।। उस दिन समय ज्ञात तक।। कहा कि बस कसम है प्रतिष्ठा तेरी की, अवश्य गुमराह करूंगा उन को मैं इकट्ठे।।

-मंन ६। सि० २३। सू० ३८। आ० ४९। ५०। ५१। ५२। ७०। ७१। ७३। ७५। ७६। ७८। ८०। ८१।।

(समीक्षक) यदि वहाँ जैसे कि कुरान में बाग बगीचे नहरें मकानादि लिखे हैं वैसे हैं तो वे न सदा से थे न सदा रह सकते हैं। क्योंकि जो संयोग से पदार्थ होता है वह संयोग के पूर्व न था, अवश्यभावी वियोग के अन्त में न रहेगा। जब वह बहिश्त ही न रहेगा तो उस में रहने वाले सदा क्योंकर रह सकते हैं ? क्योंकि लिखा है कि गद्दी, तकिये, मेवे और पीने के पदार्थ वहाँ मिलेंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मजहब चला उस समय अर्ब देश विशेष धनाढ्य न था। इसीलिये मुहम्मद साहेब ने तकिये आदि की कथा सुना कर गरीबों को अपने मत में फंसा लिया। और जहाँ स्त्रियां हैं। वहाँ निरन्तर सुख कहां? वे स्त्रियां वहाँ कहां से आई हैं? अथवा बहिश्त की रहने वाली हैं? यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहीं की रहने वाली हैं तो कयामत के पूर्व क्या करती थीं? क्या निकम्मी अपनी उमर को बहा रही थीं? अब देखिये खुदा का तेज कि जिस का हुक्म अन्य सब फरिश्तों ने माना और आदम साहेब को नमस्कार किया और शैतान ने न माना! खुदा ने शैतान से पूछा कहा कि मैंने उस को अपने दोनों हाथों से बनाया, तू अभिमान मत कर। इस से सिद्ध होता है कि कुरान का खुदा दो हाथ वाला मनुष्य था। इसलिए वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कभी नहीं हो सकता। और शैतान ने सत्य कहा कि मैं आदम से उत्तम हूँ, इस पर खुदा ने गुस्सा क्यों किया? क्या आसमान ही में खुदा का घर है; पृथिवी में नहीं? तो काबे को खुदा का घर प्रथम क्यों लिखा? भला! परमेश्वर अपने में से वा सृष्टि में से अलग कैसे निकाल सकता है? और वह सृष्टि सब परमेश्वर की है। इस से स्पष्ट विदित हुआ कि कुरान का खुदा बहिश्त का जिम्मेदार था। खुदा ने उस को लानत धिक्कार दिया और कैद कर लिया और

शैतान ने कहा कि हे मालिक! मुभफ़ को कयामत तक छोड़ दे। खुदा ने खुशामद से कयामत के दिन तक छोड़ दिया। जब शैतान छूटा तो खुदा से कहता है कि अब मैं खूब बहकाऊंगा और गदर मचाऊंगा। तब खुदा ने कहा कि जितनों को तू बहकावेगा मैं उन को दोजख में डाल दूंगा और तुभफ़ को भी। अब सज्जन लोगो विचारिये! कि शैतान को बहकाने वाला खुदा है वा आप से वह बहका? यदि खुदा ने बहकाया तो वह शैतान का शैतान ठहरा। यदि शैतान स्वयं बहका तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे; शैतान की जरूरत नहीं। और जिस से इस शैतान बागी को खुदा ने खुला छोड़ दिया, इस से विदित हुआ कि वह भी शैतान का शरीक अधर्म कराने में हुआ। यदि स्वयं चोरी करा के दण्ड देवे तो उस के अन्याय का कुछ भी पारावार नहीं।।१३५।।

१३६-अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे, निश्चय वह है क्षमा करने वाला दयालु।। और पृथिवी सारी मूठी में है उस की दिन कयामत के और आसमान लपेटे हुए हैं बीच दाहिने हाथ उसके के।। और चमक जावेगी पृथिवी साथ प्रकाश मालिक अपने के और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लाया जावेगा पैगम्बरों को और गवाहों को और फैसला किया जावेगा।। -मंन ६। सि० २४। सू० ३९। आ० ५३। ६७। ६९।।

(समीक्षक) यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसार को पापी बनाता है और दयाहीन है क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा और अन्य बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुँचावेगा। यदि किञ्चित् भी अपराध क्षमा किया जावे तो अपराध ही अपराध जगत् में छा जावे। क्या परमेश्वर अग्निवत् प्रकाश वाला है? और कर्मपत्र कहां जमा रहते हैं? और कौन लिखता है? यदि पैगम्बरों और गवाहों के भरोसे खुदा न्याय करता है तो वह असर्वज्ञ और असमर्थ है । यदि वह अन्याय नहीं करता न्याय ही करता है तो कर्मों के अनुसार करता होगा। वे कर्म पूर्वापर वर्त्तमान जन्मों के हो सकते हैं तो फिर क्षमा करना, दिलों पर ताला लगाना और शिक्षा न करना, शैतान से बहकवाना, दौरा सुपुर्द रखना केवल अन्याय है।।१३६।।

१३७-उतारना किताब का अल्लाह गालिब जानने वाले की ओर से है।। क्षमा करने वाला पापों का और स्वीकार करने वाला तोबाः का।।
-मंन ६। सि० २४। सू० ४०। आ० १। २। ३।।

(समीक्षक) यह बात इसलिये है कि भोले लोग अल्लाह के नाम से इस पुस्तक को मान लेवें कि जिस में थोड़ा सा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्य के साथ मिलकर बिगड़ा सा है। इसीलिये कुरान और कुरान का खुदा

और इस को मानने वाले पाप बढ़ाने हारे और पाप करने कराने वाले हैं। क्योंकि पाप का क्षमा करना अत्यन्त अधर्म है। किन्तु इसी से मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करने में कम डरते हैं।।१३७।।

१३८-बस नियत किया उस को सात आसमान बीच दो दिन के, और डाल दिया बीच हम ने उस के काम उस का।। यहां तक कि जब जावेंगे उस के पास साक्षी देंगे ऊपर उन के कान उन के और आंखें उन की और चमड़े उन के कर्म से।। और कहेंगे वास्ते चमड़े अपने के क्यों साक्षी दी तू ने ऊपर हमारे, कहेंगे कि बुलाया है हम को अल्लाह ने जिस ने बुलाया हर वस्तु को।। अवश्य जिलाने वाला है मुर्दों को।। -मंन ६। सि० २४। सू० ४१। आ० १२। २०। २१। ३९।।

(समीक्षक) वाह जी वाह मुसलमानो ! तुम्हारा खुदा जिस को तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो वह सात आसमानों को दो दिन में बना सका? और जो सर्वशक्तिमान् है वह क्षणमात्र में सब को बना सकता है। भला कान, आंख और चमड़े को ईश्वर ने जड़ बनाया है वे साक्षी कैसे दे सकेंगे? यदि साक्षी दिलावे तो उस ने प्रथम जड़ क्यों बनाये? और अपना पूर्वापर काम नियमविरुद्ध क्यों किया? एक इस से भी बढ़ कर मिथ्या बात यह कि जब जीवों पर साक्षी दी तब वे जीव अपने-अपने चमड़े से पूछने लगे कि तूने हमारे पर साक्षी क्यों दी? चमड़ा बोलेगा खुदा ने दिलायी मैं क्या करूं! भला यह बात कभी हो सकती है? जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का मुख मैंने देखा, यदि पुत्र है तो बन्ध्या क्यों? जो बन्ध्या है तो उस के पुत्र ही होना असम्भव है। इसी प्रकार की यह भी मिथ्या बात है। यदि वह मुर्दों को जिलाता है तो प्रथम मारा ही क्यों? क्या आप भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं? यदि नहीं हो सकता तो मुर्देपन को बुरा क्यों समभफ़ता है? और कयामत की रात तक मृतक जीव किस मुसलमान के घर में रहेंगे? और दौरासुपुर्द खुदा ने विना अपराध क्यों रक्खा? शीघ्र न्याय क्यों न किया? ऐसी-ऐसी बातों से ईश्वरता में बट्टा लगता है।।१३८।।

१३९-वास्ते उस के कुंजियां हैं आसमानों की और पृथिवी की, खोलता
है भोजन जिस के वास्ते चाहता है और तंग करता है।। उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिस को चाहे बेटियां और देता है जिस को चाहे बेटे।। वा मिला देता है उन को बेटे और बेटियाँ और कर देता है जिस को चाहे बाँभफ़।। और नहीं है शक्ति किसी आदमी को कि बात करे उस से अल्लाह परन्तु जी में डालने कर वा पीछे परदे[१] के से वा भेजे फरिश्ते पैगाम लाने वाला।।
-मंन ६। सि० २५। सू० ४२। आ० १०। १२।४७। ४८। ४९।।

(समीक्षक) खुदा के पास कुञ्जियों का भण्डार भरा होगा। क्योंकि सब ठिकाने के ताले खोलने होते होंगे! यह लड़कपन की बात है। क्या जिस को चाहता है उस को विना पुण्य कर्म के ऐश्वर्य देता है? और विना पाप के तंग करता है? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है। अब देखिये कुरान बनाने वाले की चतुराई! कि जिस से स्त्रीजन भी मोहित हो के फसें। यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है तो दूसरे खुदा को भी उत्पन्न कर सकता है वा नहीं? यदि नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमत्ता यहां पर अटक गई। भला मनुष्यों को तो जिस को चाहे बेटे बेटियां खुदा देता है परन्तु मुरगे, मच्छी, सूअर आदि जिन के बहुत बेटा बेटियां होती हैं कौन देता है? और स्त्री पुरुष के समागम विना क्यों नहीं देता? किसी को अपनी इच्छा से बांभफ़ रख के दुःख क्यों देता है? वाह! क्या खुदा तेजस्वी है कि उस के सामने कोई बात ही नहीं कर सकता! परन्तु उसने पहले कहा है कि पर्दा डाल के बात कर सकता है वा फरिश्ते लोग खुदा से बात करते हैं अथवा पैगम्बर। जो ऐसी बात है तो फरिश्ते और पैगम्बर खूब अपना मतलब करते होंगे! यदि कोई कहे खुदा सर्वज्ञ सर्वव्यापक है तो परदे से बात करना अथवा डाक के तुल्य खबर मंगा के जानना लिखना व्यर्थ है। और जो ऐसा ही है तो वह खुदा ही नहीं किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा। इसलिये यह कुरान ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता।।१३९।।

१४०-**और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के।।** -मंन ६। सि० २५। सू० ४३। आ० ६३।।

(समीक्षक) यदि ईसा भी भेजा हुआ खुदा का है तो उस के उपदेश से विरुद्ध कुरान खुदा ने क्यों बनाया? और कुरान से विरुद्ध इञ्जील क्यों की? इसीलिये ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं।।१४०।।

१४१-पकड़ो उस को बस घसीटो उस को बीचों बीच दोजख के।। इसी प्रकार रहेंगे और व्याह देंगे उन को साथ गोरियों अच्छी आंखों वालियों के।।

-मंन ६। सि० २५। सू० ४४। आ० ४७। ५४।।

(समीक्षक) वाह! क्या खुदा न्यायकारी होकर प्राणियों को पकड़ाता और घसीटवाता है? जब मुसलमानों का खुदा ही ऐसा है तो उस के उपासक मुसलमान अनाथ निर्बलों को पकड़ें घसीटें तो इस में क्या आश्चर्य है? और वह संसारी मनुष्यों

१- इस आयत के भाष्य 'तफसीरहुसैनी' में लिखा है कि मुहम्मद साहेब दो परदों में थे और खुदा की आवाज सुनी। एक पर्दा जरी का था दूसरा श्वेत मोतियों का और दोनों परदों के बीच में सत्तर वर्ष चलने योग्य मार्ग था ? बुद्धिमान् लोग इस बात को विचारें कि यह खुदा है वा

परदे की ओट बात करने वाली स्त्री ? इन लोगों ने तो ईश्वर ही की दुर्दशा कर डाली। कहां वेद तथा उपनिषदादि सद्ग्रन्थों में प्रतिपदित शुद्ध परमात्मा और कहां कुरानोक्त परदे की ओट से बात करने वाला खुदा! सच तो यह है कि अरब के अविद्वान् लोग थे, उत्तम बात लाते किस के घर से।

के समान विवाह भी कराता है, जानो कि मुसलमानों का पुरोहित ही है।।१४१।।

१४२-बस जब तुम मिलो उन लोगों से कि काफिर हुए बस मारो गर्दनें उन की यहां तक कि जब चूर कर दो उन को बस दृढ़ करो कैद करना।। और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्ति में बस्ती तेरी से, जिस ने निकाल दिया तुभफ़ को मारा हम ने उन को, बस न कोई हुआ सहाय देने वाला उन का।। तारीफ उस बहिश्त की कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेजगार, बीच उस के नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की, और नहरें हैं दूध की कि नहीं बदला मजा उन का, और नहरें हैं शराब की मजा देने वाली वास्ते पीने वालों के और नहरें हैं शहद साफ किये गये की और वास्ते उन के बीच उस के मेवे हैं प्रत्येक प्रकार से दान मालिक उन के से।। -मंन ६। सि० २६। सू० ४७। आ० ४। १३। १५।।

(समीक्षक) इसी से यह कुरान खुदा और मुसलमान गदर मचाने, सब को दुःख देने और अपना मतलब साधने वाले दयाहीन हैं। जैसा यहां लिखा है वैसा ही दूसरा कोई दूसरे मत वाला मुसलमानों पर करे तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख जैसा कि अन्य को देते हैं हो वा नहीं? और खुदा बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहेब को निकाल दिया उनको खुदा ने मारा। भला! जिसमें शुद्ध पानी, दूध, मद्य और शहद की नहरें हैं वह संसार से अधिक हो सकता है? और दूध की नहरें कभी हो सकती हैं? क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है! इसीलिये बुद्धिमान् लोग कुरान के मत को नहीं मानते।।१४२।।

१४३-जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर।। और उड़ाये जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर।। बस हो जावेंगे भुनगे टुकड़े-टुकड़े।। बस साहब दाहनी ओर वाले क्या हैं साहब दाहनी ओर के।। और बाईं ओर वाले क्या हैं बाईं ओर के।। ऊपर पलंग सोने के तारों से बुने हुए हैं।। तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने-सामने।। और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले।। साथ आबखोरों के और आफताबों के और प्यालों के शराब साफ से ।। नहीं माथा दुखाये जावेंगे उस से और न विरुद्ध बोलेंगे।। और मेवे उस किस्म से कि पसन्द करें।। और गोश्त जानवर पक्षियों के उस किस्म से कि पसन्द करें।। और वास्ते

उन के औरतें हैं अच्छी आंखों वाली।। मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की।। और बिछौने बड़े।। निश्चय हम ने उत्पन्न किया है औरतों को एक प्रकार का उत्पन्न करना है।। बस किया है हम ने उन को कुमारी।। सुहागवालियां बराबर अवस्था वालियां।। बस भरने वाले हो उस से पेटों को।। बस कसम खाता हूँ मैं साथ गिरने तारों के।।
-मंन ७। सि० २७। सू० ५६। आ० ४। ५। ६। ८। ९। १५। १६। १७। १८। १९। २०। २१। २२। २३। ३३। ३४। ३५। ३६। ३७। ३८। ५३।।
(समीक्षक) अब देखिये कुरान बनाने वाले की लीला को! भला पृथिवी तो हिलती ही रहती है उस समय भी हिलती रहेगी। इस से यह सिद्ध होता है कि कुरान बनाने वाला पृथिवी को स्थिर जानता था! भला पहाड़ों को क्या पक्षीवत् उड़ा देगा? यदि भुनगे हो जावेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उन का दूसरा जन्म क्यों नहीं? वाह जी ! जो खुदा शरीरधारी न होता तो उस के दाहिनी ओर और बाईं ओर कैसे खड़े हो सकते? जब वहाँ पलंग सोने के तारों से बुने हुए हैं तो बढ़ई सुनार भी वहाँ रहते होंगे और खटमल काटते होंगे जो उन को रात्रि में सोने भी नहीं देते होंगे। क्या वे तकिये लगाकर निकम्मे बहिश्त में बैठे ही रहते हैं वा कुछ काम किया करते हैं? यदि बैठे ही रहते होंगे तो उन को अन्न पचन न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे? और जो काम किया करते होंगे तो जैसे मेहनत मजदूरी यहां करते हैं वैसे ही वहाँ परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे फिर यहां से वहाँ बहिश्त में विशेष क्या है? कुछ भी नहीं। यदि वहाँ लड़के सदा रहते हैं तो उन के माँ बाप भी रहते होंगे और सासू श्वसुर भी रहते होंगे तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा फिर मल मूत्रदि के बढ़ने से रोग भी बहुत से होते होंगे क्योंकि जब मेवे खावेंगे, गिलासों में पानी पीवेंगे और प्यालों से मद्य पीवेंगे न उन का सिर दूखेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा यथेष्ट मेवा खावेंगे और जानवरों तथा पक्षियों के मांस भी खावेंगे तो अनेक प्रकार के दुःख, पक्षी, जानवर वहाँ होंगे, हत्या होगी और हाड़ जहाँ तहां बिखरे रहेंगे और कसाइयों की दुकानें भी होंगी। वाह क्या कहना इनके बहिश्त की प्रशंसा कि वह अरब देश से भी बढ़ कर दीखती है!!! और जो मद्य मांस पी खा के उन्मत्त होते हैं इसी लिये अच्छी-अच्छी स्त्रियां और लौंडे भी वहाँ अवश्य रहने चाहिये नहीं तो ऐसे नशेबाजों के शिर में गरमी चढ़ के प्रमत्त हो जावें। अवश्य बहुत स्त्री पुरुषों के बैठने सोने के लिये बिछौने बड़े-बड़े चाहिये। जब खुदा कुमारियों को बहिश्त में उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे लड़कों को भी उत्पन्न करता है। भला! कुमारियों का तो विवाह जो यहां से

उम्मीदवार हो कर गये हैं उन के साथ खुदा ने लिखा पर उन सदा रहने वाले लड़कों का भी किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा तो क्या वे भी उन्हीं उम्मीदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये जावेंगे? इस की व्यवस्था कुछ भी न लिखी। यह खुदा में बड़ी भूल क्यों हुई? यदि बराबर अवस्था वाली सुहागिन स्त्रियाँ पतियों को पा के बहिश्त में रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ क्योंकि स्त्रियों से पुरुष का आयु दूना ढाई गुना चाहिये, यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा है। और नरक वाले सिहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खा के पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोजख में होंगे तो कांटे भी लगते होंगे और गर्म पानी पीयेंगे इत्यादि दुःख दोजख में पावेंगे।। कसम का खाना प्रायः भफ़ूठों का काम है; सच्चों का नहीं। यदि खुदा ही कसम खाता है तो वह भी भफ़ूठ से अलग नहीं हो सकता।।१४३।।

१४४-निश्चय अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के।। -मंन ७। सि० २८। सू० ६१। आ० ४।।

(समीक्षक) वाह ठीक है! ऐसी-ऐसी बातों का उपदेश करके विचारे अर्ब देशवासियों को सब से लड़ा के शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया और मजहब का भफ़ण्डा खड़ा करके लड़ाई फैलावे ऐसे को कोई बुद्धिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते।। जो मनुष्य जाति में विरोध बढ़ावे वही सब को दुःखदाता होता है।।१४४।।

१४५-ऐ नबी क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि हलाल किया है खुदा ने तेरे लिये, चाहता है तू प्रसन्नता बीबियों अपनी की, और अल्लाह क्षमा करने वाला दयालु है।। जल्दी है मालिक उस का जो वह तुम को छोड़ दे तो यह है कि उस को तुम से अच्छी मुसलमान और ईमान वालियां बीबियां बदल दे सेवा करने वालियां तोबाः करने वालियां भक्ति करने वालियां रोजा रखने वालियां पुरुष देखी हुईं और बिन देखी हुईं।। -मंन ७। सि० २८। सू० ६६। आ० १। ५।।

(समीक्षक) ध्यान देकर देखना चाहिये कि खुदा क्या हुआ मुहम्मद साहेब के घर का भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करने वाला भृत्य ठहरा !! प्रथम आयत पर दो कहानियां हैं एक तो यह कि मुहम्मद साहेब को शहद का शर्बत प्रिय था। उन की कई बीबियां थीं उन में से एक के घर पीने में देर लगी तो दूसरियों को असह्य प्रतीत हुआ उन के कहने सुनने के पीछे मुहम्मद साहेब सौगन्ध खा गये कि हम न पीवेंगे। दूसरी यह कि उनकी कई बीबियों में से एक की बारी थी। उसके यहां रात्री को गये तो वह न थी; अपने बाप के यहां गई थी। मुहम्मद

साहेब ने एक लौंडी अर्थात् दासी को बुला कर पवित्र किया। जब बीबी को इस की खबर मिली तो अप्रसन्न हो गई। तब मुहम्मद साहेब ने सौगन्ध खाई कि मैं ऐसा न करूँगा। और बीबी से भी कह दिया तुम किसी से यह बात मत कहना। बीबी ने स्वीकार किया कि न कहूँगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबी से जा कहा। इस पर यह आयत खुदा ने उतारी 'जिस वस्तु को हम ने तेरे पर हलाल किया उस को तू हराम क्यों करता है? ' बुद्धिमान् लोग विचारें कि भला कहीं खुदा भी किसी के घर का निमटेरा करता फिरता है? और मुहम्मद साहेब के तो आचरण इन बातों से प्रकट ही हैं क्योंकि जो अनेक स्त्रियों को रक्खे वह ईश्वर का भक्त वा पैगम्बर कैसे हो सके? और जो एक स्त्री का पक्षपात से अपमान करे और दूसरी का मान्य करे वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं और जो बहुत सी स्त्रियों से भी सन्तुष्ट न होकर बाँदियों के साथ फंसे उस की लज्जा, भय और धर्म कहां से रहे? किसी ने कहा है कि-

'कामातुराणां न भयं न लज्जा'।।

जो कामी मनुष्य हैं उन को अधर्म से भय वा लज्जा नहीं होती। और इन का खुदा भी मुहम्मद साहेब की स्त्रियों और पैगम्बर के भफ़गड़े का फैसला करने में जानो सरपंच बना है। अब बुद्धिमान् लोग विचार लें कि यह कुरान विद्वान् वा ईश्वरकृत है वा किसी अविद्वान् मतलबसिन्धु का बनाया? स्पष्ट विदित हो जाएगा और दूसरी आयत से प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहेब से उन की कोई बीबी अप्रसन्न हो गई होगी, उस पर खुदा ने यह आयत उतार कर उस को धमकाया होगा कि यदि तू गड़बड़ करेगी और मुहम्मद साहेब तुभफ़े छोड़ देंगे तो उन को उन का खुदा तुभफ़ से अच्छी बीबियां देगा कि जो पुरुष से न मिली हों। जिस मनुष्य को तनिक सी बुद्धि है वह विचार ले सकता है कि ये खुदा वुदा के काम हैं वा अपना प्रयोजन सिद्धि के! ऐसी-ऐसी बातों से ठीक सिद्ध है कि खुदा कोई नहीं कहता था केवल देशकाल देखकर अपने प्रयोजन सिद्ध होने के लिए खुदा की तर्फ से मुहम्मद साहेब कह देते थे। जो लोग खुदा ही की तर्फ लगाते हैं उन को हम सब क्या, सब बुद्धिमान् यही कहेंगे कि खुदा क्या ठहरा मानो मुहम्मद साहेब के लिये बीबियां लाने वाला नाई ठहरा!!! ।।१४५।।

१४६-ऐ नबी भफ़गड़ा कर काफिरों और गुप्त शत्रुओं से और सख्ती कर ऊपर उन के।। -मंन ७। सि० २८। सू० ६६। आ० ९।।

(समीक्षक) देखिये मुसलमानों के खुदा की लीला! अन्य मत वालों से लड़ने के लिये पैगम्बर और मुसलमानों को उचकाता है इसीलिये मुसलमान लोग उपद्रव

करने में प्रवृत्त रहते हैं। परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे जिस से ये लोग उपद्रव करना छोड़ के सब से मित्रता से वर्त्तें।।१४६।।१४७-फट जावेगा आसमान, बस वह उस दिन सुस्त होगा।। और फरिश्ते होंगे ऊपर किनारों उस के के; और उठावेंगे तख्त मालिक तेरे का ऊपर अपने उस दिन आठ जन।। उस दिन सामने लाये जाओगे तुम, न छिपी रहेगी कोई बात छिपी हुई ।। बस जो कोई दिया गया कर्मपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपने के, बस कहेगा लो पढ़ो कर्मपत्र मेरा।। और जो कोई दिया गया कर्मपत्र बीच बांये हाथ अपने के, बस कहेगा हाथ न दिया गया होता मैं कर्मपत्र अपना।।
-मंन ७। सि० २९। सू० ६९। आ० १६। १७। १८। १९। २५।।
(समीक्षक) वाह क्या फिलासफी और न्याय की बात है! भला आकाश भी कभी फट सकता है? क्या वह वस्त्र के समान है जो फट जावे? यदि ऊपर के लोक को आसमान कहते हैं तो यह बात विद्या से विरुद्ध है। अब कुरान का खुदा शरीरधारी होने में कुछ संदिग्ध न रहा । क्योंकि तख्त पर बैठना, आठ कहारों से उठवाना विना मूर्तिमान् के कुछ भी नहीं हो सकता? और सामने वा पीछे भी आना-जाना मूर्तिमान् ही का हो सकता है। जब वह मूर्तिमान् है तो एकदेशी होने से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता और सब जीवों के सब कर्मों को कभी नहीं जान सकता। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पुण्यात्माओं के दाहिने हाथ में पत्र देना, बचवाना, बहिश्त में भेजना और पापात्माओं के बायें हाथ में कर्मपत्र का देना, नरक में भेजना, कर्मपत्र बांच के न्याय करना! भला यह व्यवहार सर्वज्ञ का हो सकता है? कदापि नहीं। यह सब लीला लड़केपन की है।।१४७।।
१४८-चढ़ते हैं फरिश्ते और रूह तर्फ उस की वह अजाब होगा बीच उस दिन के कि है परिमाण उस का पचास हजार वर्ष।। जब कि निकलेंगे कबरों में से दौड़ते हुए मानो कि वह बुतों के स्थानों की ओर दौड़ते हैं।
-मंन ७। सि० २९। सू० ७०। आ० ४। ४३।।
(समीक्षक) यदि पचास हजार वर्ष दिन का परिमाण है तो पचास हजार वर्ष की रात्रि क्यों नहीं? यदि उतनी बड़ी रात्रि नहीं है तो उतना बड़ा दिन कभी नहीं हो सकता। क्या पचास हजार वर्षों तक खुदा फरिश्ते और कर्मपत्र वाले खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे? यदि ऐसा है तो सब रोगी हो कर पुनः मर ही जायेंगे। क्या कबरों से निकल कर खुदा की कचहरी की ओर दौड़ेंगे? उन के पास सम्मन कबरों में क्योंकर पहुँचेंगे? और उन बिचारों को जो कि पुण्यात्मा वा पापात्मा हैं। इतने समय तक सभी को कबरों में दौरेसुपुर्द कैद

क्यों रक्खा? और आजकल खुदा की कचहरी बन्ध होगी और खुदा तथा फरिश्ते निकम्मे बैठे होंगे? अथवा क्या काम करते होंगे। अपने-अपने स्थानों में बैठे इधर-उधर घूमते, सोते, नाच तमाशा देखते व ऐश आराम करते होंगे। ऐसा अन्धेर किसी के राज्य में न होगा। ऐसी-ऐसी बातों को सिवाय जंगलियों के दूसरा कौन मानेगा? ।।१४८।।
१४९-निश्चय उत्पन्न किया तुम को कई प्रकार से।। क्या नहीं देखा तुम ने कैसे उत्पन्न किया अल्लाह ने सात आसमानों को ऊपर तले।। और किया चांद को बीच उन के प्रकाशक और किया सूर्य को दीपक।।
-मंन ७। सि० २९। सू० ७१। आ० १४। १५। १६।।
(समीक्षक) यदि जीवों को खुदा ने उत्पन्न किया है तो वे नित्य अमर कभी नहीं रह सकते? फिर बहिश्त में सदा क्योंकर रह सकेंगे? जो उत्पन्न होता है वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाता है। आसमान को ऊपर तले कैसे बना सकता है? क्योंकि वह निराकार और विभु पदार्थ है। यदि दूसरी चीज का नाम आकाश रखते हो तो भी उस का आकाश नाम रखना व्यर्थ है। यदि ऊपर तले आसमानों को बनाया है तो उन सब के बीच में चांद सूर्य्य कभी नहीं रह सकते। जो बीच में रक्खा जाय तो एक ऊपर और एक नीचे का पदार्थ प्रकाशित हो दूसरे से लेकर सब में अन्धकार रहना चाहिये। ऐसा नहीं दीखता, इस लिये यह बात सर्वथा मिथ्या है।।१४९।।
१५०-यह कि मसजिदें वास्ते अल्लाह के हैं, बस मत पुकारो साथ अल्लाह के किसी को।। -मंन ७। सि० २९। सू० ७२। आ० १८।।
(समीक्षक) यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग 'लाइलाह इल्लिलाः मुहम्मदर्रसूलल्लाः' इस कलमे में खुदा के साथ मुहम्मद साहेब को क्यों पुकारते हैं? यह बात कुरान से विरुद्ध है और जो विरुद्ध नहीं करते तो इस कुरान की बात को भफ़ूठ करते हैं। जब मसजिदें खुदा के घर हैं तो मुसलमान महाबुत्परस्त हुए। क्योंकि जैसे पुराणी, जैनी छोटी सी मूर्त्ति को ईश्वर का घर मानने से बुत्परस्त ठहरते हैं; ये लोग क्यों नहीं? ।।१५०।।
१५१-इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चांद।।
-मंन ७। सि० २९। सू० ७५। आ० ९।।
(समीक्षक) भला सूर्य्य चांद कभी इकट्ठे हो सकते हैं ? देखिये! यह कितनी बेसमझ की बात है। और सूर्य्य चन्द्र ही के इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन था? अन्य सब लोकों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है? ऐसी-ऐसी असम्भव बातें

परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं? बिना अविद्वानों के अन्य किसी की भी नहीं होतीं।।१४९।।

१५२-और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले, जब देखेगा तू उन को, अनुमान करेगा तू उन को मोती बिखरे हुए।। और पहनाये जावेंगे कंगन चाँदी के और पिलावेगा उन को रब उन का शराब पवित्र।।

-मंन ७। सि० २९। सू० ७६। आ० १९। २१।।

(समीक्षक) क्यों जी मोती के वर्ण से लड़के किस लिये वहाँ रक्खे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा वा स्त्री जन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्ट जन करते हैं उस का मूल यही कुरान का वचन हो ! और बहिश्त में स्वामी सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से दुःख तथा पक्षपात क्यों है? और जब खुदा ही उनको मद्य पिलावेगा तो वह भी उन का सेवकवत् ठहरेगा, फिर खुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहाँ बहिश्त में स्त्री पुरुष का समागम और गर्भस्थिति और लड़केबाले भी होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उन का विषयसेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये? और विना खुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उन को बिना ईमान लाने और खुदा की भक्ति करने से बहिश्त मुफ्त मिल गया। किन्हीं बिचारों को ईमान लाने और किन्हीं को विना धर्म के सुख मिल जाय इस से दूसरा बड़ा अन्याय कौन सा होगा? ।।१५२।।

१५३-बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार।। और प्याले हैं भरे हुए ।। जिस दिन खड़े होंगे रूह और फरिश्ते सफ बांध कर।।

-मंन ७। सि० ३०। सू० ७८। आ० २६। ३४। ३८।।

(समीक्षक) यदि कर्मानुसार फल दिया जाता तो सदा बहिश्त में रहने वाले हूरें फरिश्ते और मोती के सदृश लड़कों को कौन कर्म के अनुसार सदा के लिये बहिश्त मिला? जब प्याले भर-भर शराब पीयेंगे तो मस्त हो कर क्यों न लड़ेंगे? रूह नाम यहां एक फरिश्ते का है जो सब फरिश्तों से बड़ा है! क्या खुदा रूह तथा अन्य फरिश्तों को पंक्तिबद्ध खड़े कर के पलटन बांधेगा? क्या पलटन से सब जीवों को सजा दिलावेगा? और खुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा? यदि कयामत तक खुदा अपनी सब पलटन एकत्र करके शैतान को पकड़ ले तो उस का राज्य निष्कण्टक हो जाय। इस का नाम खुदाई है।।१५३।।

१५४-जब कि सूर्य लपेटा जावे।। और जब कि तारे गदले हो जावें।। और जब कि पहाड़ चलाये जावें।। और जब आसमान की खाल उतारी जावे।।

-मंन ७। सि० ३०। सू० ८१। आ० १। २। ३। ११।।
(समीक्षक) यह बड़ी बेसमभफ़ की बात है कि गोल सूर्यलोक लपेटा जावेगा? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे? और पहाड़ जड़ होने से कैसे चलेंगे? और आकाश को क्या पशु समभफ़ा कि उस की खाल निकाली जावेगी? यह बड़ी बेसमभफ़ और जंगलीपन की बात है।।१५४।।
१५५-और जब कि आसमान फट जावे।। और जब तारे भफ़ड़ जावें।। और जब दर्या चीरे जावें।। और जब कबरें जिला कर उठाई जावें।।
-मंन ७। सि० ३०। सू० ८२। आ० १। २। ३। ४।।
(समीक्षक) वाह जी कुरान के बनाने वाले फिलासफर! आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा? और तारों को कैसे भफ़ाड़ सकेगा? और दर्या क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा? और कबरें क्या मुरदे हैं जो जिला सकेगा? ये सब बातें लड़कों के सदृश हैं।।१५५।।
१५६-कसम है आसमान बुर्जों वाले की।। किन्तु वह कुरान है बड़ा।। बीच लौह महफूज के (अर्थात् सुरक्षित तख्ती पर लिखा हुआ) ।।
-मंन ७। सि० ३०। सू० ८५। आ० १। २१। २२।।
(समीक्षक) इस कुरान के बनाने वाले ने भूगोल खगोल कुछ भी नहीं पढ़ा था। नहीं तो आकाश को किले के समान बुर्जों वाला क्यों कहता? यदि मेषादि राशियों को बुर्ज कहता है तो अन्य बुर्ज क्यों नहीं? इसलिये ये बुर्ज नहीं हैं किन्तु सब तारे लोक हैं। क्या वह कुरान खुदा के पास है? यदि यह कुरान उस का किया है तो वह भी विद्या और युक्ति से विरुद्ध अविद्या से अधिक भरा होगा।।१५६।।
१५७-निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर।। और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर।। -मंन ७। सि० ३०। सू० ८६। आ० १६।१७।।
(समीक्षक) मकर कहते हैं ठगपन को, क्या खुदा भी ठग है? और क्या चोरी का जवाब चोरी और भफ़ूठ का जवाब भफ़ूठ है? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे तो क्या भले आदमी को चाहिए कि उस के घर में जा के चोरी करे! वाह! वाह जी!! कुरान के बनाने वाले।।१५७।।
१५८-और जब आवेगा मालिक तेरा और फरिश्ते पंक्ति बांध के ।। और लाया जावेगा उस दिन दोजख को।। -मंन ७। सि० ३०। सू० ८९। आ० २१। २२।।
(समीक्षक) कहो जी! जैसे कोटवाल वा सेनाध्यक्ष अपनी सेना को लेकर पंक्ति बांध फिरा करे वैसा ही इन का खुदा है? क्या दोजख को घड़ा सा समभफ़ा है

कि जिस को उठा के जहाँ चाहे वहाँ ले जावे! यदि इतना छोटा सा है तो असंख्य कैदी उस में कैसे समा सकेंगे? ।।१५८।।

१५९-बस कहा था वास्ते उन के पैगम्बर खुदा के ने, रक्षा करो ऊंटनी खुदा की को, और पानी पिलाना उस के को।। बस भफ़ुठलाया उस को, बस पांव काटे उस के, बस मरी डाली ऊपर उन के, रब उन के ने।। -मंन ७। सि० ३०। सू० ९१। आ० १३। १४।।
(समीक्षक) क्या खुदा भी ऊंटनी पर चढ़ के सैल किया करता है? नहीं तो किस लिये रक्खी? और विना कयामत के अपना नियम तोड़ उन पर मरी रोग क्यों डाला? यदि डाला तो उन को दण्ड किया, फिर कयामत की रात में न्याय और उस रात का होना भफ़ूठ समभफ़ा जायगा? फिर इस ऊंटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊंट, ऊंटनी के सिवाय दूसरी सवारी कम होती है। इस से सिद्ध होता है कि किसी अरब देशी ने कुरान बनाया है।।१५९।।
१६०-यों जो न रुकेगा अवश्य घसीटेंगे उस को हम साथ बालों माथे के।। वह माथा कि भफ़ूठा है और अपराधी।। हम बुलावेंगे फरिश्ते दोजख के को।। -मंन ७। सि० ३०। सू० ९६। आ० १५। १६। १८।।
(समीक्षक) इस नीच चपरासियों के काम घसीटने से भी खुदा न बचा। भला माथा भी कभी भफ़ूठा और अपराधी हो सकता है? सिवाय जीव के, भला यह कभी खुदा हो सकता है कि जैसे जेलखाने के दरोगा को बुलावा भेजे।।१६०।।
१६१-निश्चय उतारा हम ने कुरान को बीच रात -कदर के।। और क्या जाने तू क्या है रात -कदर की? ।। उतरते हैं फरिश्ते और पवित्रत्मा बीच उस के, साथ आज्ञा मालिक अपने के वास्ते हर काम के।।
-मंन ७। सि० ३०। सू० ९७। आ० १। २। ४।।
(समीक्षक) यदि एक ही रात में कुरान उतारा तो वह आयत अर्थात् उस समय में उतरी और धीरे-धीरे उतारा यह बात सत्य क्योंकर हो सकेगी? और रात्री अन्धेरी है इस में क्या पूछना है? हम लिख आये हैं ऊपर नीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फरिश्ते और पवित्रत्मा खुदा के हुक्म से संसार का प्रबन्ध करने के लिये आते हैं। इस से स्पष्ट हुआ कि खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। अब तक देखा था कि खुदा फरिश्ते और पैगम्बर तीन की कथा है । अब एक पवित्रत्मा चौथा निकल पड़ा! अब न जाने यह चौथा पवित्रत्मा क्या है? यह तो ईसाइयों के मत अर्थात् पिता पुत्र और पवित्रत्मा तीन के मानने से चौथा भी बढ़ गया। यदि कहो कि हम इन तीनों को खुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो,

परन्तु जब पवित्रत्मा पृथक्‌ है तो खुदा फरिश्ते और पैगम्बर को पवित्रत्मा कहना चाहिये वा नहीं? यदि पवित्रत्मा है तो एक ही का नाम पवित्रत्मा क्यों? और घोड़े आदि जानवर, रात दिन और कुरान आदि की खुदा कसमें खाता है। कसमें खाना भले लोगों का काम नहीं।।१६१।।

अब इस कुरान के विषय को लिख के बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूँ कि यह पुस्तक कैसा है? मुझ से पूछो तो यह किताब न ईश्वर, न विद्वान् की बनाई और न विद्या की हो सकती है। यह तो बहुत थोड़ा सा दोष प्रकट किया इसलिये कि लोग धोखे में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें। जो कुछ इस में थोड़ा सा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझ को ग्राह्य है वैसे अन्य भी मजहब के हठ और पक्षपातरहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है । इस के विना जो कुछ इस में है सब अविद्या भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर शान्तिभंग करा के उपद्रव मचा मनुष्यों में विद्रोह फैला परस्पर दुःखोन्नति करने वाला विषय है। और पुनरुक्त दोष का तो कुरान जानो भण्डार ही है। परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब से सब प्रीति परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपात रहित होकर प्रकाशित करता हूँ। इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर आनन्द में एकमत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो। यह थोड़ा सा कुरान के विषय में लिखा। इस को बुद्धिमान् धार्मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ, लाभ लेवें। यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उस को शुद्ध कर लेवें। अब एक बात यह शेष है कि बहुत से मुसलमान ऐसा कहा करते और लिखा वा छपवाया करते हैं कि हमारे मजहब की बात अथर्ववेद में लिखी है। इस का यह उत्तर है कि अथर्ववेद में इस बात का नाम निशान भी नहीं है।

(प्रश्न) क्या तुम ने सब अथर्ववेद देखा है ? यदि देखा है तो अल्लोपनिषद् देखो। यह साक्षात् उसमें लिखी है। फिर क्यों कहते हो कि अथर्ववेद में मुसलमानों का नाम निशान भी नहीं है।

अथाल्लोपनिषदं व्याख्यास्यामः

अस्मांल्लां इल्ले मित्रवरुणा दिव्यानि धत्ते।
इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्द्दुदु ।
ह या मित्रे इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्काम ।।१।।

होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्रा।
अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्।।२।।
अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम्।।३।।
आदल्लाबूकमेककम्।। अल्लाबूक निखातकम्।।४।।
अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्यचन्द्रसर्वनक्षत्र ।।५।।
अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्याँ इन्द्राय पूर्वं माया परममन्तरिक्षा ।।६।।
अल्ल पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम्।।७।।
इल्लां कबर इल्लां कबर इल्लाँ इल्लल्लेति इल्लल्ला ।।८।।
ओम् अल्ला इल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणा श्यामा हुं ह्रीं जनानपशूनसिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्।।९।।
असुरसंहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूलमहमदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्ला ।।१०।।
इत्यल्लोपनिषत् समाप्ता।।

जो इस में प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब रसूल लिखा है इस से सिद्ध होता है कि मुसलमानों का मत वेदमूलक है।

(उत्तर) यदि तुम ने अथर्ववेद न देखा हो तो हमारे पास आओ आदि से पूर्त्ति तक देखो। अथवा जिस किसी अथर्ववेदी के पास बीस काण्डयुक्त मन्त्रसंहिता अथर्ववेद को देख लो। कहीं तुम्हारे पैगम्बर साहब का नाम वा मत का निशान न देखोगे। और जो यह अल्लोपनिषद् है वह न अथर्ववेद में, न उस के गोपथ ब्राह्मण वा किसी शाखा में है। यह तो अकबरशाह के समय में अनुमान है कि किसी ने बनाई है। इस का बनाने वाला कुछ अर्बी और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है क्योंकि इस में अरबी और संस्कृत के पद लिखे हुए दीखते हैं। देखो! **(अस्माल्लां इल्ले मित्रवरुणा दिव्यानि धत्ते)** इत्यादि में जो कि दश अंक में लिखा है, जैसे-इस में **(अस्माल्लां और इल्ले)** अर्बी और **(मित्रवरुणा दिव्यानि धत्ते)** यह संस्कृत पद लिखे हैं वैसे ही सर्वत्र देखने में आने से किसी संस्कृत और अर्बी के पढ़े हुए ने बनाई है। यदि इस का अर्थ देखा जाता है तो यह कृत्रिम अयुक्त वेद और व्याकरण रीति से विरुद्ध है। जैसी यह उपनिषद् बनाई है, वैसी बहुत सी उपनिषदें मतमतान्तर वाले पक्षपातियों ने बना ली हैं। जैसी कि स्वरोपनिषद्, नृसिहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी बहुत सी बना ली हैं।

(प्रश्न) आज तक किसी ने ऐसा नहीं कहा अब तुम कहते हो। हम तुम्हारी बात कैसे मानें?

(उत्तर) तुम्हारे मानने वा न मानने से हमारी बात भफ़ूठ नहीं हो सकती है। जिस प्रकार से मैंने इस को अयुक्त ठहराई है उसी प्रकार से जब तुम अथर्ववेद, गोपथ वा इस की शाखाओं से प्राचीन लिखित पुस्तकों में जैसे का तैसा लेख दिखलाओ और अर्थसंगति से भी शुद्ध करो तब तो सप्रमाण हो सकता है।
(प्रश्न) देखो! हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिस में सब प्रकार का सुख और अन्त में मुक्ति होती है ।
(उत्तर)-ऐसे ही अपने-अपने मत वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है, बाकी सब बुरे। विना हमारे मत के दूसरे मत में मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बात को सच्ची मानें वा उन की? हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभ गुण सब मतों में अच्छे हैं और बाकी वाद, विवाद, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुम को सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो।
इसके आगे स्वमन्तव्यामन्तव्य का प्रकाश संक्षेप से लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते यवनमतविषये
चतुर्दशसमुल्लासः सम्पूर्णः।।१४।।

ओ३म्

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी। इसीलिये उस को सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिस का विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें वा मानें उस का स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिस को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारी, परोपकारक; पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। **अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से ले कर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिन को मैं भी मानता हूँ;** सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।

मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि **जो तीन काल में सब को एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है** किन्तु जो सत्य है उस को मानना, मनवाना और जो असत्य है उस को छोड़ना और छुड़वाना मुभफ़ को अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उस का स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है।

मनुष्य उसी को कहना कि-**मननशील हो कर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दु ख और हानि-लाभ को समभफ़े। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं-कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों-उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्त्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दु ख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक्फ़ कभी न होवे।** इस में श्रीमान् महाराजा भर्तृहरि जी आदि ने श्लोक कहे हैं उन का लिखना उपयुक्त समभफ़ कर लिखता हूँ-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणम् अस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पदं न धीरा ।।१।। -भर्तृहरिः।।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतो ।
धर्मो नित्य सुखदु खे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्य ।।२।।
-महाभारते श्लो० ११, १२।।
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति य ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।३।। मनु०।।
सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयान ।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।।४।।
न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
न हि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत्।।५।। -उपनिषदि।।
इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सब को निश्चय रखना योग्य है। अब मैं जिन-जिन पदार्थों को जैसा-जैसा मानता हूँ उन-उन का वर्णन संक्षेप से यहाँ करता हूँ कि जिन का विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने-अपने प्रकरण में कर दिया है। इन में से-
१-प्रथम **'ईश्वर'** कि जिस के ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिस के गुण, कर्म, स्वाभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है; उसी को परमेश्वर मानता हूँ।
२-चारों **'वेदों'** (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानता हूँ। वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिन के प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उन को परतःप्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ।

३-जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा, वेदों से अविरुद्ध है उस को **'धर्म'** और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग, वेदविरुद्ध है उस को **'अधर्म'** मानता हूँ।
४-जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को **'जीव'** मानता हूँ।
५-जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्यव्यापक और सावमर्म्य से अभिन्न है अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ।
६-**'अनादि पदार्थ'** तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उन के गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।
७-**'प्रवाह से अनादि'** जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिस से प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उन में अनादि है और उस से पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ।
८-**'सृष्टि'** उस को कहते हैं जो पृथक़् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना।
९-**'सृष्टि का प्रयोजन'** यही है कि जिस में ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं? उस ने कहा देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी।
१०-**'सृष्टि सकर्तृक'** है। इस का कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है। क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का **'कर्त्ता'** अवश्य है।
११-**'बन्ध'** सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है। जो-जो पाप कर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसी लिये यह **'बन्ध'** है कि जिस की इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।

१२-**'मुक्ति'** अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उस की सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।
१३-**'मुक्ति के साधन'** ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।
१४-**'अर्थ'** वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उस को **'अनर्थ'** कहते हैं।
१५-**'काम'** वह है जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय। १६-**'वर्णाश्रम'** गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ।
१७-**'राजा'** उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उन को पुत्रवत् मान के उन की उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।
१८-**'प्रजा'** उस को कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण कर के पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोहरहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते।
१९-जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हठावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो **'न्यायकारी'** है; उस को मैं भी ठीक मानता हूँ।
२०-**'देव'** विद्वानों को और अविद्वानों को **'असुर'** पापियों को **'राक्षस'** अनाचारियों को **'पिशाच'** मानता हूँ।
२१-उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना **'देवपूजा'** कहाती है। इस से विपरीत अदेवपूजा, इन की मूर्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़ मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समभफ़ता हूँ।
२२-**'शिक्षा'** जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं।
२३-**'पुराण'** जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ।

२४-**'तीर्थ'** जिस से दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म है उसी को **तीर्थ** समझता हूँ; इतर जलस्थलादि को नहीं।

२५-**'पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा'** इसलिये है कि जिस से सञ्चित प्रारब्ध बनते जिस के सुधरने से सब सुधरते और जिस के बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा **पुरुषार्थ** बड़ा है।

२६-**'मनुष्य'** को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ; अन्यथा वर्त्तना बुरा समभफ़ता हूँ।

२७-**'संस्कार'** उनको कहते हैं कि जिस से शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इस को कर्त्तव्य समभफ़ता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये।

२८-**'यज्ञ'** उस को कहते हैं कि जिस में विद्वानों का सत्कार यथायोग्य **शिल्प** अर्थात् **रसायन** जो कि पदार्थविद्या उस से उपयोग और **विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रदि** जिन से वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है; उस को उत्तम समभफ़ता हूँ।

२९-जैसे **'आर्य्य' श्रेष्ठ** और **'दस्यु'** दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूँ।

३०-**'आर्य्यावर्त्त'** देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इस में आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं परन्तु इस की अवधि उत्तर में **हिमालय**, दक्षिण में **विन्ध्याचल,** पश्चिम में **अटक** और पूर्व में **ब्रह्मपुत्र** नदी है। इन चारों के बीच में जितना प्रदेश है उस को **'आर्य्यावर्त्त'** कहते और जो इस में सदा रहते हैं उन को भी **आर्य** कहते हैं।

३१-जो सांगोपांग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह **'आचार्य'** कहाता है।

३२-**'शिष्य'** उस को कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य्य का प्रिय करने वाला है।

३३-**'गुरु'** माता पिता और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी **'गुरु'** कहाता है।

३४-**'पुरोहित'** जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे।

३५-**'उपाध्याय'** जो वेदों का एकदेश वा अंगों को पढ़ाता हो।

३६-**‘शिष्टाचार’** जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इस को करता है वह **‘शिष्ट’** कहाता है।
३७-प्रत्यक्षादि आठ **‘प्रमाणों’** को भी मानता हूँ।
३८-**‘आप्त’** जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसी को **आप्त** कहता हूँ।
३९-**‘परीक्षा’** पांच प्रकार की है। इस में से **प्रथम** जो **ईश्वर** उस के गुण, कर्म, स्वभाव और **वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि** आठ प्रमाण, **तीसरी सृष्टि- क्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार** और पांचवीं **अपने आत्मा की पवित्रता, विद्या,** इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये।
४०-**‘परोपकार’** जिस से सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उस के करने को परोपकार कहता हूँ।
४१-**‘स्वतन्त्र’ ‘परतन्त्र’** जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है।
४२-**‘स्वर्ग’** नाम सुख विशेष भोग और उस की सामग्री की प्राप्ति का है।
४३-**‘नरक’** जो दुःख विशेष भोग और उस की साम्रगी को प्राप्त होना है।
४४-**‘जन्म’** जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ।
४५-शरीर के संयोग का नाम **‘जन्म’** और वियोग मात्र को **‘मृत्यु’** कहते हैं।
४६-**‘विवाह’** जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा कर के पाणिग्रहण करना वह **‘विवाह’** कहाता है।
४७-**‘नियोग’** विवाह के पश्चात् पति वा पत्नी के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना।
४८-**‘स्तुति’** गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना, इस का फल प्रीति आदि होते हैं।
४९-**‘प्रार्थना’** अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उन के लिये ईश्वर से याचना करना और इस का फल निरभिमान आदि होता है।

५०-**'उपासना'** जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय **योगाभ्यास से साक्षात् करना** उपासना कहाती है, इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

५१-**'सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना'** जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उन से युक्त और जो जो गुण नहीं हैं उन से पृथक् मान कर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उस के और उस की आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना कहाती है। ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी **'सत्यार्थप्रकाश'** के प्रकरण-प्रकरण में है तथा **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो-जो बात सब के सामने माननीय है उस को मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ। और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उन को मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सब से सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से **'यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे'** जिस से सब लोग सहज से धर्म्मार्थ काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें। यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ।

ओम् शन्नो मित्र शं वरुण शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पति शन्नो विष्णुरुरुक्रम ।।
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् ।
तन्मामवीत् तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् ।
ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति ।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां
श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण
श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित स्वमन्तव्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वित
सुप्रमाणयुक्त सुभाषाविभूषित सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थ सम्पूर्तिमगमत्।।